विद्याष्टकम्

"गुरु चरणों में समर्पित एक कृति"

प्रकाशक

प्रदीप कटपीस

अशोक नगर म० प्र०

☎ (२२४६२२, २२७४६)

मुनिश्री नियम सागर जी विरचित काव्य

विद्याष्टकम्

(स्वोपज्ञ-संस्कृत-टीका, हिन्दी-टीका,
स्वनिर्मित-चित्र, हिन्दी-पद्यानुवाद,
प्रस्तावना, चित्र बन्ध पढ़ने की विधि, पारिभाषिक-शब्द एवं
दिगम्बर मुनि और उनका आचार)

पद्यानुवाद कर्ता

ऐलक श्री सम्यक्त्व सागर

सम्पादक

डॉ. प्रभाकर नारायण कवठेकर

(पूर्व कुलपति विक्रम विश्व विद्यालय उज्जैन, पूर्वाध्यक्ष, सेन्ट्रल बोर्ड भारत सरकार नई दिल्ली, प्रधान अध्यक्ष, अ भा प्राच्य विद्या परिषद पुणे, राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित)

१९९४

विद्याष्टकम्

मुनिश्री नियम सागर जी

मूल्य १०० ००

प्रथम सस्करण १९९४

आवृत्ति १०००

प्राप्ति स्थान १ श्री प्रदीप जैन
प्रदीप कटपीस
अशोक नगर (PH 22462 22746)
२ श्री राधे लालजी जैन
सिघई किराना भडार
सुभाषगज अशोक नगर (PH 22537)

मुद्रण
पर्ल प्रिन्टर्स, शहजादा बाग, नई दिल्ली, दूरभाष 5435981

कम्पोजिग
ज्योति ग्राफिक्स दिल्ली

आचार्य श्री विद्या सागर मुनि

समर्पण
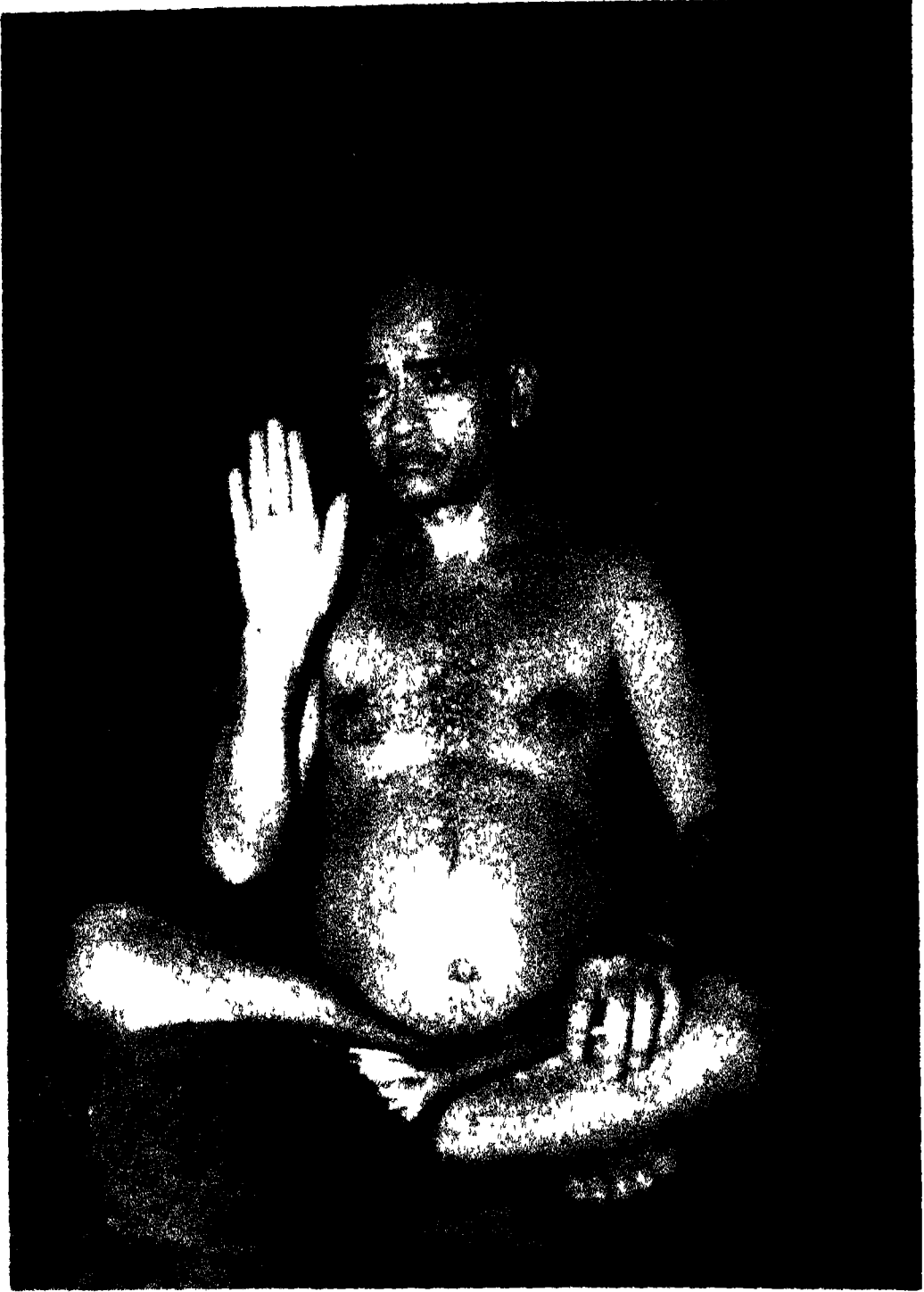
हे गुरुवर !
शान्त सरोवर !!
करुणाकर !!

तुम महावीर की शकल को
नकल कर निकाले हो . अपने मे

हे शुद्धात्मा के जागरुक प्रहरी !
भव पीडा से आकुल/विकल
'इसे' भी नकल कर- ..निकल जाने दो

मुझे भीतर जाने दो
मुझे भी तर जाने दो

'**विद्याष्टकं**' की
यह कृति
करती मम मति
अर्पित/समर्पित
'**सीदा**' से प्रतिलोम हो

जो पाई थी
तुम से
तुम्हे लौटाती
हर्षित/उल्लसित हो,
अभय हस्त तव
मृदुल कर कमलो मे.. ..

□□□

सम्पादकीय

मुझे पता नही क्या कारण है कि मुझ पर देश के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध महात्माओ और साधुओ की प्रसन्नता के साथ कृपा रही है, जो उनके परिप्रेक्ष्य मे निरपेक्ष भाव से ही रही है। यह अवश्य है कि इन साधु महात्माओ की कोई सेवा मुझसे नही हो पाती है, फिर भी मुझे देखकर उनका मुखमण्डल खिल उठता रहा है । बहुत कम बार मिलने पर भी लगता है कि वे मेरे बहुत पुराने कृपावान है, या तो कुछ सयोग ऐसे है जो साधुयोग दिखाते हो या वे अन्तर्यामी गुरु है जो मुझे अज्ञात, मेरे ही पूर्व जन्म के सम्बन्ध को समझ जाते हो ।

एक बार सन् १९९३ के जुलाई माह मे इन्दौर के कुछ युवा मित्रो ने मुझसे कहा, यहा एक दिगम्बर जैन मुनि महाराज पधारे है "मुनि श्री नियम सागरजी महाराज"– वे आपसे भेट करके प्रसन्न होगे । जब यह सुना कि मुनि महाराज सस्कृत के महान् विद्वान् है तो मैने तुरत हॉ भर दी । मित्र लोग मुझे छत्रपति नगर मे स्थित एक धर्मशाला मे ले गये, जिसमे साधु निवास था ।

*मैने देखा मुनि श्री नियम सागरजी महाराज पधारे एक दिगम्बर साधु । शमी वृक्षो मे अग्नि का वास रहता है, उसी प्रकार एक युवा काया मे तेजोबल के दर्शन हुए । दिगम्बरत्व के कारण शरीर का अस्तित्त्व न्यून होता चला गया था । कृश काया को निहारता हुआ विचारमग्न था, और उनके **"विद्याष्टकम्"** नामक नये सस्कृत काव्य की चर्चा चल पड़ी । एक प्रतिभा के धनी वीतराग मुनि से घटे भर तक चर्चा हुई और उनकी इच्छा को आदेश मानकर उस ग्रन्थ का सम्पादन करना मैने स्वीकार कर लिया । पुनर्दर्शन की कामना से निकला तो हाथ मे **"विद्याष्टकम्"** की हस्तलिखित प्रति थी । पढ़ने पर ज्ञात हुआ कि मुनिश्री युवा कवि है, सस्कृत काव्य की सबसे कठिन रचनाधर्मिता के भी धनी है । यह रचनाकौशल, अनेकार्थ देने वाले एक पद्य की रचना कर उन्होने प्रकट किया है । न केवल रचनाकौशल ही दृष्टव्य है, अपितु मुनिश्री स्वय अच्छे चित्रकार भी है । सस्कृत काव्य के चित्रकाव्य की धारा मे सर्वतो-भद्र-बन्ध, मुरज-बन्ध आदि की रचनाए प्रसिद्ध हुई है । अपने इस काव्य पद्यो के लिए मुनिश्री ने स्वय चित्रकारी की है । शब्दो का यह पाण्डित्य और चित्रकला का सौन्दर्य इन दोनो का अद्भुत सगम इस काव्य मे हुआ है।*

यदि केवल शब्द-चमत्कार ही इसमे होता तो अनेक काव्यो मे से एक श्रेणी मे यह ग्रन्थ आ जाता। किन्तु यह एक अलौकिक गुरु के प्रति मुनिश्री की भक्ति की अभिव्यक्ति है । **मुनि श्री नियमसागरजी** के गुरु **आचार्य विद्यासागरजी महाराज** के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक होकर की गई यह स्तुति आठ पद्यो मे समाविष्ट है, और उपसहार दो पद्यो मे किया गया है । एक-एक शब्द सार्थक है, और हर पद्य के विभिन्न अर्थ निकलते है । यह गुरु भक्ति से ओत-प्रोत काव्य है ।

एक विशेष उल्लेख करना आवश्यक है कि **"विद्याष्टकम्"** के सस्कृत पद्यो का हिन्दी मे पद्यानुवाद (भावानुवाद) प्रसिद्ध साहित्यकार, कवि, आचार्य विद्यासागर जी महाराज के ही परम शिष्य पूज्य **ऐलक १०५ श्री सम्यक्त्व सागर जी महाराज** ने किया हे । भावानुवाद भी उनके नाम के अनुरूप ही सम्यक् एव समीचीन रूप से उतरा है ।

यह एक सुन्दर आधुनिक काल मे रचित चित्र-बन्ध काव्य है, जिसकी रचना मात्र एक अष्टाक्षरी काव्य मे उद्धृत करके की गई है । आश्रय लिया है, स्वरचित ग्रन्थ **"रत्नत्रय-स्तुति-शतक"** (अप्रकाशित) के यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक १०२ न के श्लोक का उक्त "रत्नत्रय स्तुति-शतक" ग्रन्थ जो अप्रकाशित है, और उसकी रचना मुनिश्री ने लगभग आठ वर्ष पूर्व की थी । इस ग्रन्थ मे ४५ चित्र बन्ध, स्वोपज्ञ- हिन्दी सस्कृत टीका एव पद्यानुवाद सहित रत्नत्रय अर्थात् सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की स्तुति की गई है ।

आजकल इस प्रकार की रचना नही हो रही है, और वह भी कवि के चित्रो मे समाविष्ट हो । सर्वोपरि है गुरु-भक्ति । कवि यहा इस काव्य से कोई भौतिक प्राप्ति की अपेक्षा नही रखते है । यह मेरा सौभाग्य है कि मुनिश्री का विशेष अनुराग मुझे प्राप्त हुआ हे । चित्रो मे **भारत-देश-बध, कलश-बध, श्रीफल-बध, स्वस्तिक-बध, चतुरक्षर-कोष्टक-बन्ध** के साथ आधुनिक यन्त्र **टेपरिकार्डर-बन्ध** भी है । **मुरज (पखावज)** आदि के साथ गुरुवर आचार्य श्री के जन्म दिनाक **१० अक्टूबर १९४६** आदि को भी अग्रेजी अको मे चित्रित किया है ।

इन चित्रो मे निहित **"वाराधारर"** आदि पद्यो को पढ़ने की विधि भी पाठको के लिए दी गई है। यह रचना-कौशल और गुरु भक्ति का सौरभ सोने मे सुहागा कहावत चरितार्थ करती

*है । प्रेरणा ली गई है **स्वामी समन्तभद्राचार्य** द्वारा रचित चित्र-बन्ध काव्य-"**स्तुति-विद्या**"[1] से जिस मे मुरज बन्ध आदि की रचना समाविष्ट है । इस ग्रन्थ मे अनेक चित्रालकार है जिनका विवरण प्रसिद्ध विद्वान् कविवर श्री जुगल किशोर जी मुख्तार द्वारा प्रस्तुत किया गया है । इससे प्रभावित मुनिश्री नियम सागर जी महाराज ने अपने गुरु आचार्य विद्यासागर जी महाराज के प्रति स्तुति रूप भक्ति व्यक्त की है । इसमे नये चित्र-बन्ध भी समाविष्ट है । श्लेष और यमक के अतिरिक्त चित्र के अक्षरो को क्रम से पढ़ने की विधि भी इस ग्रन्थ मे स्पष्ट की है, जिसे आप विभिन्न चित्रो के साथ पाएगे । इससे पद्य को चित्र मे पढ़ने मे पाठको को सुविधा होगी ।*

– प्रशस्ति-पर्व –

मुनिश्री नियम सागर जी महाराज ने स्वय स्फूर्ति से अपने गुरु आचार्य विद्यासागर महाराज के प्रति समर्पित इस अष्टक कृति के अत मे प्रशस्ति-पर्व के अन्तर्गत सत्रह श्लोको को समाविष्ट किया है । जहा एक ओर **विश्व-चक्र-बन्ध** के अन्तर्गत उक्त सम्पूर्ण श्लोक सहित अन्य सामग्री को समाहित किया है (जिसका विवेचन चित्र के साथ है) वही दूसरी ओर अपने अनूठे चिन्तन एव आश्चर्यपूर्ण कलात्मक चित्र शैली के निखार को भी उतारा है । विभिन्न छ भाषाओ के उल्लेख के साथ कृतिकार और अपने गुर्वादि के नामो को भी अग्रेजी वर्णमाला से साकेतिक अक्षरो मे समाहित किया है । कविवर ने स्वोपज्ञ टीका एव कमनीय रचना-कौशल को प्रकट करते हुए उक्त प्रशस्ति-पर्व मे **'अभिव्यक्ति' 'विशेषता' 'अतृप्त-धारा' 'कामना' 'दान-विवेक' 'भोजन-विवेक' 'स्वसम्बोधन' 'भगवत्कुन्दकुन्दसस्मृति 'अन्त्यमङ्गल'** और **'समय-बोध'** सबधी विवेचन किया है । साथ ही अग्रेजी वर्णमाला के अक्षरो से चिन्हित वर्णो का सग्रह कुछ अलग ही विषय सामग्री प्रदान करता है । इस प्रकार आदि से अत तक मुनिश्री नियमसागरजी ने महान काव्य-कला-कौशल, चित्रकारिता और अद्भुत चितन की अभिव्यक्ति **'विद्याष्टक'** रूपी गुलशन मे सजाकर समस्त मानव जगत् पर उपकार किया है ।

भगवान् की आराधना कई प्रकार से होती है । भारत भक्ति-प्रधान देश है । जिस प्रकार भारत के वन प्रान्तो मे बिखरे फूलो मे सौरभ और फलो मे स्वाद है, उसी प्रकार प्रत्येक भारतीय

---

१ स्वामी समन्तभद्र कृत **'स्तुति-विद्या'** । वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली १९५०

के मन मे प्रेमभाव नित्य बना रहता है । भारत की पहचान 'प्रेम' से की जा सकती है । विश्व मे अनेक देश है, किन्तु इस राष्ट्र की चेतना, राष्ट्र की अपनी प्रेम परम्परा है । फिर भी वैदिक काल के भी पूर्व से आज तक 'प्रेम' की प्रधानता के दर्शन हमे भारत मे प्रचुर रूप मे होते है। यही प्रेम जब श्रद्धा से युक्त होता है, तब वह भक्ति का रूप ग्रहण करता है । इस भक्ति के कारण न केवल अमीर अपितु गरीब से गरीब व्यक्ति भी भारत मे प्रसन्न बना रहता है । अनेक अभावो से पीड़ित होने पर भी वह अपने आपको भक्ति के कारण वैभवसम्पन्न मानता है । भगवान्, गुरु, माता-पिता आदि के प्रति उसकी भावना तीव्र होती जाती है और वह ऐहिक जीवन की समस्त कमियो को भी तुच्छ मानकर चलता है । भक्त की यह मानसिकता उसकी कमजोरी नही है । वह एक सतुलन बनाये रखने की एक विधा है । भक्त और आराध्य मे जो घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्थापित हो जाता है वह उसकी अपनी सपत्ति होती है । अपेक्षाकृत गरीब का मन अधिक निश्छलता और ऋजुता से भक्ति से अधिवास के लिए उपयुक्त होता है । दूसरो का अहित और अपकार करने वाला जीव यथार्थ मे भक्त नही हो सकता है ।

एक और भक्ति के विषय मे चितन अपेक्षित है । भक्त आराध्य से हमेशा निरपेक्ष भाव से जुड़ा रहेगा । भक्त कभी विभक्त नही हो सकता । वह सासारिक जीव होने के कारण कुछ कामना, अपेक्षा और स्वहित के लिये प्रार्थना कर सकता है । इसका कारण यही है कि उस सर्व शक्तिमान् से ही वह कुछ माग रहा है । सात्विकता की दृष्टि से यह स्थिति उच्च कोटि की नही होती । फिर भी ऋग्वेद के ऋषियो ने देवताओं से जिस कामना को प्रार्थना या स्तुति मे प्रकट किया है वह शुभ, मङ्गल और स्वस्थ जीवन के लिये उपादेय है । भक्त आराध्य के प्रति यदि निरपेक्ष भाव से समर्पण करता है तो वह भक्ति सात्विक रूप धारण करती है ।

भक्ति पर जब अधिक चिन्तन होता है तो प्रबुद्ध व्यक्ति को इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ज्ञात करना होता है कि प्रेम का यह उदात्तीकरण कैसा होता है ? उसमे तीव्रता कितनी होती है ?

एक प्रश्न अवश्य यहा पृष्टव्य है, भक्त और आराध्य मे जो अटूट सम्बन्ध है वह क्या समर्पणात्मक है या दोनो ओर से पुष्ट है । दोनो ओर का मतलब है- भक्त और आराध्य, इन दोनो मे आदान प्रदान होता हो तो । भक्त ने भक्ति की, क्या उसे भगवान् ने स्वीकार कर लिया ? भौतिक रूप मे कभी यह स्वीकृति दिखाई नही दी है । आध्यात्मिक रूप से यदि सोचे

तो वह ज्ञातव्य है कि भक्त और आराध्य मे द्वैत कैसा ? भक्ति मे तो एकाकार होना ही अपेक्षित है । आदान प्रदान द्वैत भाव का लक्षण है तो फिर भक्त को भी अपनी ओर से भक्ति करने की कोई आवश्यकता नही रह जायेगी । यह आपत्ति स्वय विरोध उत्पन्न करती है । याने भक्त तो भक्ति कर रहा है, हमारे भगवान् उस भक्ति को स्वीकार कर रहे है या नही इसकी कोई पुष्टि नही है । अर्थात् क्या यह भक्ति एकागी कही जायेगी । इस एकागीपन का रूप अद्वैत वेदात के ब्रह्मत्व से भिन्न है या वह एक ही रूप मे है ।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार तो भक्ति ही खतरे मे पड़ जायेगी । भक्ति एक भावना है जो भक्त के हृदय मे बसती है । भावना याने चित्तवृत्ति । अद्वैत तत्त्व ब्रह्म की प्राप्ति के समय चित्तवृत्ति का भी निरसन हो जाता है । चित्तवृत्ति जड़ है । वह भक्त की भावना है किन्तु भावविश्व की सीमाओ से वह भावना घिरी अवश्य रहेगी । भाव क्षणभगुर होते हैं । आत्म साक्षी है आत्मा नही । भाव अनुभव से भौतिक सुखदुख के कारक होते है । इसलिए भक्त और आराध्य मे द्वैतता बनी रहती है । एक निरपेक्ष भाव से भक्त कहता है कि मुझे मोक्ष नही चाहिए क्योकि यदि मै भक्त हूँ और भगवान् से सायुज्यता प्राप्त कर लूगा तो भक्ति से वञ्चित हो जाऊँगा। भक्ति का आनन्द ब्रह्मानन्द से भी ऊँचा है । इसपर हमे इतना ही कहना है कि, जनसाधारण के लिए ब्रह्म का ज्ञान होना एक दुष्कर कार्य है, किन्तु भक्ति से वह अवश्य ही भगवान् के निकट पहुँच सकता है । कम से कम वह इतना अवश्य अनुभव करता है ।

सच्चे भक्त को माया मे रहकर ही यदि भगवान् मिलने का सुख मिलता है तो वह सन्तुष्ट है । सम्भवत इसीलिए योगिराज पतञ्जलि ने दो सूत्र दिये है । उनके अनुसार एक मे तो 'स्वावस्थान' के लिए अर्थात् आत्मा को अपने आप मे स्थिर करने का निर्देश है तथा दूसरा 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' । यह विकल्प क्यो ? क्या दूसरा सूत्र भक्त की भक्ति की पुष्टि करता है ? यहाँ 'स्वावस्थान' के साथ एक विकल्प भक्ति का भी है जिसके आधार पर भक्त परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है ।

इसका अर्थ यह हुआ कि, जनसाधारण के लिए यह भक्ति मार्ग उपादेय है और सात्त्विक रूप भी है । यदि भक्त ने कोई माग ही भगवान् के सम्मुख नही रखी तो उसका अपना पक्ष यह है कि, मैं सायुज्यता प्राप्त करूँगा । यदि मेरी भक्ति इस प्रकार से फल प्राप्त करने की अपेक्षा न रखती हो तो सात्त्विक भक्ति ही फिर सायुज्यता मे परिणत हो सकती है । भक्त कभी भगवान्

से अपने आपको पारमार्थिक रूप मे अलग नही मानता है, तो स्पष्ट है कि, भक्त और भगवान् एकाकार हो जायेगे ।

इस अर्थ मे भक्त की यह अपेक्षा भी नही कि भगवान् उसकी भक्ति की कोई स्वीकृति प्रत्युत्तर मे भक्त को दे । वह तो स्वीकृति भी नही चाहता है । अब तो यह एकागिता सायुज्यता मे परिणत मान ले तो प्रश्न का समाधान हो सकता है । फिर भी भक्त की प्रत्यभिज्ञा (intvition) के आधार पर अज्ञात परमात्मतत्त्व की अनुभूति व्यक्तिगत होगी। हमारे दर्शन मे अधिकारी वही है जो व्यक्ति है । सामूहिक विवाह या खेती हो सकती है किन्तु क्या सामूह्कि मोक्ष हो सकता है ? तपस्या से प्राप्त मोक्ष अधिकारी की एकान्त साधना है । कहा है– एक–स्तप ।

तपस्या एक के द्वारा होती है । एकाग्रता तभी सम्भव है । इतना अवश्य है कि आराध्य की ओर से श्रद्धा-सुमन की स्वीकृति का प्रश्न तीव्र भक्ति योग मे उठता ही नही है । 'श्रद्धावॉल्लुभते ज्ञानम्' (भगवद् गीता) श्रद्धावान् को ज्ञान प्राप्त होता है । यह ज्ञान कौन सा है ? उस परमात्म तत्त्व का ज्ञान सच्चा ज्ञान है । स्तुतिकर्ता भक्त आराध्य की स्तुति करता है जिससे वह आराध्य के प्रति गुण समुच्चय के ध्यान से पाप-मुक्त हो जाता है । आचार्य समन्तभद्र स्वामी द्वारा रचित 'स्तुति-विद्या' (जिनशतक) की प्रस्तावना मे पण्डित श्री 'जुगल किशोरजी मुख्तार' ने कल्याण मदिर स्तोत्र के आठवे श्लोक का उल्लेख करते हुए लिखा है– 'तीर्थङ्करो की स्तुति करने से पाप दूर भाग जाते है । उनके चिन्तन और आराधना से अथवा हृदय-मन्दिर मे उनके प्रतिष्ठित होने से पाप खड़े नही रह सकते। पापो के दृढ़ बन्धन उसी प्रकार ढीले पड़ जाते है जिस प्रकार कि चन्दन के वृक्ष पर मोर के आने से उससे लिप्टे हुए साप ढीले पड़ जाते है और वे अपने विजेता से घबराकर कही भाग निकलने की सोचने लगते है ।'[1]

अर्थात् भक्ति एक पक्षीय अवश्य है, भगवान से भक्त के प्रति वासल्य या दया भाव की प्राप्ति नियम से अनिश्चित ही है परन्तु ऐसी स्थिति मे भक्त की भक्ति मे तीव्रता उतनी हो सकती

---

१ स्तुति विद्या– प्रस्तावना पृष्ठ ६ –
हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिली भवन्ति
जन्तो क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धा ।
सद्यो भुजगममया इव मध्यभाग–
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥
–कल्याण मदिर स्तोत्र

है क्या ? जितनी दो मित्रो या गुरु-शिष्यो के बीच हुआ करती है । किन्तु भक्त तो एक पक्षीय समर्पण मे ही विश्वास रखता है । वह उसके फलस्वरूप भगवान् से कुछ भी अपेक्षा नही रखता है तो इस समर्पण मे ही उसे सन्तोष प्राप्त होता है । उसका एक पक्षीय समर्पण है वही उसका अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने का अधिकार है, जिसे वह चरितार्थ करना चाहता है ।

प्रसिद्ध विद्वान् और ग्रन्थ 'स्तुति-विद्या' की प्रस्तावना के लेखक श्री जुगल किशोरजी मुख्तार द्वारा प्रतिपादित विचार इस सन्दर्भ मे सराहनीय है । उनके अनुसार भगवान के उस शुद्ध स्वरूप के सामने आते ही अपनी उस भूली हुई निधि का स्मरण हो उठता है, उसकी प्राप्ति के लिए प्रेम तथा अनुराग जागृत हो जाता है और पाप-परिणति सहज ही छूट जाती है । उदाहरण है– ''जिस तरह तैलादिक से सुसज्जित बत्ती दीपक की उपासना करती हुई उसके चरणो मे जब तन्मयता की दृष्टि से अपना मस्तक रखती है तो तद्रूप हो जाती है ।''[1]

किसी रूपक के तत्त्व को समझ लेना पर्याप्त होता है । यह भक्ति-योग का लौकिक दृष्टान्त है । यह भी पूछा जा सकता है कि बत्ती स्वय का समर्पण ज्योति के लिए करती है, किन्तु ज्योति के द्वारा उसकी स्वीकृति कहा तक हो गई है ? क्या भक्त को यह प्रश्न पड़ा है ? नही । ज्योति स्वरूप हो जाना ही बत्ती का समर्पण है । ज्योति के विषय मे कोई आशकित भले ही हो, भक्त नही है ।

अद्वैत वेदान्त मे भी अधिकारी साधक साधना करता है और योगी अपने ही स्वतन्त्र अस्तित्व को छोड़ देता है इसीलिए कहा गया है– **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।'** योगी स्वय ब्रह्म भी बनेगा जब वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को समर्पित कर दे । उस ब्रह्म मे जो नित्य, शुद्ध, सत्, चित् आनन्द स्वरूप है । अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म मे अथवा साख्य दर्शन के पुरुष मे त्रैगुण्य (सत्व, रज और तमस्) नही है । अर्थात् उसकी स्तुति भी कैसे की जाए उस स्तुति से क्या वह प्रसन्न होगा ? प्रसन्नावस्था तो चित्तवृत्ति की होगी। चित्तवृत्ति ही नही रहेगी तो स्तुति की प्रेरक शक्ति 'भक्ति' कहा होगी ?

यहॉ कुछ समन्वय-दृष्टि की आवश्यकता है । भक्ति भी योग है । इसीलिए पतञ्जलि के अनुसार इसे **'ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।'** इस सूत्र मे मान्यता दी गई है । भक्त, देव या गुरु के प्रति

१ स्तुति-विद्या (स्वामी समतन्भद्र) प्रस्तावना पृष्ठ ६ तथा ७

भक्ति मे तीव्रता होने पर परमात्मतत्त्व का अनुभव कर सकता है। अब भक्ति की परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के उपरान्त वह स्वय परमात्म तत्त्व हो गया, तो अब लौकिक व्यवहार मे भगवान् द्वारा उस भक्ति की स्वीकृति का प्रश्न ही नही उठता। क्या, योगियो को भी अद्वैत तत्त्व की सिद्धि हो जाने पर स्वीकृति जैसी लौकिक लेन-देन की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है ? क्या, ब्रह्म मे स्वीकृ ति देने की स्थिति उसके अद्वैत तत्त्व के अनुरूप है ? स्पष्ट है भक्ति एक योग है। भक्ति के द्वारा परम तत्त्व की प्राप्ति होती है। भक्ति से दु ख से हमेशा के लिए छुटकारा प्राप्त कर सकेगे। भक्त के लिए और क्या चाहिये।

भक्ति यदि निरपेक्ष भाव से की गई है तो वह सात्त्विक होती है। सत्‌चित् आनन्द स्वरूप परमात्म तत्व तक पहुँचने का वह प्रशस्त मार्ग है परमवीतराग देव भक्ति के ऐवज मे देगे नही क्योकि वे स्वय परमात्म तत्त्व है। सच्चिदानन्द स्वरूप है। रागादि भाव उनमे नही है। वे स्वय उदासीन इस अर्थ मे है कि, लौकिक रागद्वेषादि से वे युक्त नही है। फिर भी देव गुणो के प्रति अनुराग और भक्ति के कारण भक्त श्री विशिष्ट सौभाग्य अर्थात् ज्ञानादि लक्ष्मी के आधिपत्यरूप अभ्युदय को प्राप्त होता है और जो द्वेष करता है वह विनाश को प्राप्त होता है। यह बड़ा विचित्र है।[1]

अर्थात् स्तुत्य की स्तुति अभ्युदय देने वाली होती है।

गुरु-भक्ति–

जैन धर्म के अनुसार 'पच परमेष्ठी' होते है वे इस प्रकार है–

१ **अरहन्त परमेष्ठी**
२ **सिद्ध परमेष्ठी**
३ **आचार्य परमेष्ठी**
४ **उपाध्याय परमेष्ठी**
५ **साधु परमेष्ठी**

गुरु-भक्ति मे कुछ सुविधाजनक परिस्थितियाँ सलग्न होती है–

१ स्वामी समन्तभद्र– स्वयम्भू स्तोत्र, पद्य ६९

१ गुरु के गुणो से साक्षात् प्रभावित होने का शिष्य को अवसर मिलता है ।

२ शिष्य की सच्ची भक्ति देखकर सच्चा गुरु उसकी भक्ति को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करता है अर्थात् वह भक्ति एकपक्षीय नही होती है ।

३ सच्चे गुरु का उपदेश भी उसे जीवन मे प्राप्त हो सकता है ।

४ गुरु के आध्यात्मिक तपोबल का भी लाभ शिष्य को सान्निध्य, सम्पर्क या ध्यान से हो सकता है ।

५ सच्चे भक्त की स्तुति की यथार्थता (सत्यता) भी लोक मे प्रत्यक्ष गोचर होती है, अत एकागी न रहकर सर्वलोक मे भक्ति का प्रभाव बढ़ता है ।

६ देव, शास्त्र तथा गुरु मे सच्चेपन की पहचान गुरु भक्ति से होती है क्योकि, वर्तमान समय मे देव द्वारा अध्यापन या उपदेश सम्भव नही है , शास्त्र, बगैर उसके पालन के उपादेय नही है। किंतु सच्चे गुरु के सान्निध्य मे सच्चे शिष्य को देव और शास्त्र के प्रति श्रद्धा प्रबल होती है।

१ 'देव' वीतरागी, सर्वज्ञी हितोपदेशी और १८ दोषो से रहित होते है ।

२ 'शास्त्र', जो अरहत परमेष्ठी द्वारा कहा गया हो, इन्द्र आदि भी जिसका उल्लघन न करते हो और जो उन्मार्ग (मिथ्यामार्ग) का निराकरण करने वाले हो वे सच्चे शास्त्र है ।

३ गुरु, जो विषयो की आशा से रहित समस्त आरम्भ और परिग्रह से रहित एव ज्ञान ध्यान और तप मे अनुरक्त रहते हो वे नग्न दिगम्बर मुनि ही सच्चे गुरु है ।[1]

ऐसे सच्चे गुरु के प्रति श्रद्धाभाव से व्यक्त स्तुति सच्ची भक्ति दर्शाती है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ **'विद्याष्टकम्'** मे हमे सच्चे गुरु की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है । इसलिए न केवल शिष्य, अपितु जो भी इसका अध्ययन करेगा उसके मन मे ज्ञान का प्रकाश फैलेगा।

इस ग्रन्थ की रचना की है मुनि श्री नियम सागर जी महाराज ने । और उनके सच्चे गुरु

---

१ विशिष्ट विवरण देखिये परिशिष्ट दो मे

है– आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज । सस्कृत व हिन्दी मे अनेक स्वतन्त्र कृतियो के रचयिता एव अनेक प्राचीन प्राकृत-सस्कृत रचनाओ के मौलिक-अनुवादक,तपोनिधि आचार्य विद्यासागरजी भारतीय ऋषि-मुनियो की उसी सतत द्युतिमान-आकाश गङ्गा के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र है । वे नैष्ठिक दिगम्बर मुनि आचार के साक्षात् आदर्श है । अपने स्वर्गीय गुरुवर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के सत्यपूत तत्त्वज्ञ शिष्य है । और मोक्षगामी धर्मरथ के अश्वकी वल्गा को धारण करने वाले वास्तविक सारथी है ।

बालपने मे पूर्वसस्कारजन्य वैराग्यभावना से प्रेरित आचार्य विद्या सागरजी महाराज ने गुरुमुख से प्राप्त जैन तत्वज्ञान को अपनी असाधारण प्रज्ञा से श्रुत-महोदधि मे गहरी डुबकी लगाकर आत्मसात किया। तप, स्वाध्याय और ध्यान के त्रिविध उत्स मे से विद्या के सागर आचार्यप्रवर की सवेदनशील मेधा नित-नूतन अध्यात्म और भक्तिश्रवण काव्यसरित् प्रवाह के रूप मे बह निकली और निरन्तर नये-नये स्तोत्रो, शतको के रूप मे वर्धमान होती रही। कुन्दकुन्दादि प्राचीन आचार्यो के मूल प्राप्त आगम ग्रन्थो के सुमधुर छन्दोबद्ध हिन्दी पद्य-रूपान्तर, सस्कृत मे स्वरचित भक्ति, वैराग्य एव अध्यात्ममय शतक तथा उन शतको के स्वरचित हिन्दी भावानुवाद उनकी उसी काव्यसरित् के अगीभूत स्तोत्र है ।

गुरु स्तुत्य है । स्तुतिकर्ता केवल स्तवन करके हटनेवाले सासारिक जीव नही है । वे स्वय परिग्रह से मुक्त सन्यासी है । इस साधुत्व के साथ एक और चमत्कारी गुण उन्हे प्राप्त है– वह है कवित्व । वे कवि के रूप मे अपने आराध्य गुरु आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की स्तुति चित्र-काव्य के द्वारा कर रहे है जिसका शीर्षक है– **'विद्याष्टकम्'** ।

यह रचना सस्कृत मे है । अनेकार्थ– विधा से सम्पन्न है । इसलिए साधुत्व और कवित्व शक्ति के साथ-साथ विद्वता के भी दर्शन इस काव्य मे होते है ।

इस प्रकार के चित्रकाव्य की रचना आजकल नही होती है । इसे रचना कौशल कहे या प्रतिभाविलास जो एक सन्यासी के मन मे भी उदित होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि लौकिक काम क्रोधादि भावो का उदात्तीकरण होने के कारण ही एक सन्यासी भी काव्य-चमत्कार के माध्यम से रसान्वित हो सकता है । रस इस अर्थ मे भी ब्रह्मानन्द सहोदर है । कई सन्तो और योगियो ने काव्य की रचना की है । ज्ञानेश्वर, नामदेव, कबीर, तुलसी, सूर, रामदास, तुकाराम, कम्ब,

नरसी मेहता जैसे सन्तो की वाणी आज भी ताजा प्रभाव रखती है । स्तुतिकर्ता के गुरु आचार्य विद्यासागर महाराज एव दादागुरु आचार्य ज्ञान सागरजी महाराज ने क्रमश मूकमाटी और जयोदय जैसे अनेक महाकाव्यो की रचना की है । आचार्य मानतुङ्ग महाराज ने भी 'भक्तामर-स्तोत्र' के माध्यम से अड़तालीस सस्कृत काव्यो मे आदि पुरुष भगवान् वृषभदेव की स्तुति की है । काव्य-रचना-कौशल के द्वारा स्तुति-स्तोत्रो आदि की अनेक रचनाये दिगम्बराचार्यों द्वारा की गई है जिनका विश्लेषण यहाँ सम्भव नही है । शकराचार्य ने भी सौन्दर्य लहरी आदि काव्य-रचना मे रूचि ली है। अगर देव, शास्त्र या गुरु के प्रति भक्त की अभिव्यक्ति स्तुति के रूप मे होती है तो प्रतिभा के प्रभाव से वह अभिव्यक्ति 'दिव्य' काव्य की श्रेणी मे आ सकती है । ऐसे दिव्य काव्य मे चमत्कार रस, औचित्य, गुण, रीति, भाषा सौष्ठव आदि काव्य धर्म रहेगे ही । उसमे निहित दिव्य अनुभूति या सवित्ति के कारण भक्त गुरु भक्ति की तीव्रता से सत्य के और शिव के साथ सुन्दर तत्त्व को भी अपने स्तुति काव्य मे समाहित कर सकता है । दिव्य काव्य का मतलब यह नही है कि हम सासारिक लोगो की समझ से वह काव्य परे होता है । वास्तव मे कोई अनुभूति लौकिक हो तो सामान्य ही होती है । यदि दिव्य अनुभूति के धरातल पर कोई सन्त कवि हमे ले जाता है तो वह लौकिक मे अलौकिकता के दर्शन कराता है । अत साधु की तपस्या से परिपूर्ण उसका जीवन और मान्यताये उसकी उन्नति के लिए प्रशस्त मार्ग दिखाती है, किन्तु इस तप परिपूरित जीवन के अमूल्य क्षण मुनि श्री नियम सागर महाराजजी ने निकाल कर उन्हे रचनात्मक आयाम दिया । यह कृति साहित्य-विश्व के लिए अमूल्य निधि के रूप मे मान्यता अवश्य प्राप्त करेगी। इसका सारा श्रेय मुनि महाराज अपने आराध्य गुरु आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज को देते है, यह एक भक्ति का ही अनिवार्य रूप है। ज्ञान की परम्परा होती है । आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज जो मेधा, मनीषा, प्रतिभा और सयम के धनी महाकवि थे । वे आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे और सस्कृत वाङ्मय, जैनधर्म तथा जैनदर्शन का विधिवत् अनुशीलन-परिशीलन एव प्रचार-प्रसार करते रहे । यह आत्म कल्याणहेतु अपनी आध्यात्मिक साधना के साथ ही साथ मानव-समाज का भी कल्याण करने की कामना से साहित्यिक साधना भी अनवरत करते रहे, जिसके फलस्वरूप आज के मानवसमाज को **दयोदयचम्पू, समुद्र दत्तचरित्र, वीरोदय, जयोदय** और **सुदर्शनोदय** जैसे पाँच सस्कृत काव्य ग्रन्थ उपलब्ध हुए । महाकवि ज्ञानसागरजी ने केवल सस्कृत भाषा मे ही नही अपितु हिन्दी भाषा मे भी अपनी कल्याणी काव्यकला का कमनीय परिचय दिया है ।

मानव समाज का कल्याण करने मे **महाकवि ज्ञानसागर** की काव्यसम्पत्ति का महत्त्व है । महाकवि ज्ञानसागर ने भारतीय मनीषा प्रसूत अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक

पाचो ही सार्वभौम महाव्रतो के परिपालन की सत्प्रेरणा देने की इच्छा से एक चम्पूकाव्य और चार महाकाव्यो की सरस सर्जना करके मानव समाज को सयमपूर्वक अपना जीवन बिताने का सर्वाङ्गीण सन्देश दिया है ।

महाकवि ज्ञानसागर के काव्य समवेत रूप मे मानव समाज का समग्र कल्याण करने मे अभी तक अनुपम ही है । इसके अलावा साहित्यक दृष्टि से भी ये काव्य कालिदास, भारवि, माघ और श्री हर्ष के काव्यो की परम्परा मे आधुनिक काल की रचना प्रस्तुत करते है । कथावस्तु चरित्र चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, वर्णन विधान, परिवेश आदि की दृष्टि से भी ये काव्य अतीव सजीव और सहृदयहृदयाह्लादकारी है । इनसे सस्कृत साहित्य की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि हुई है यह कहने मे कोई अत्युक्ति नही होगी ।

आचार्य ज्ञानसागरजी से आचार्य विद्यासागरजी को ज्ञान प्राप्त हुआ, उसी की परम्परा मे इस **'विद्याष्टकम्'** नामक अनेकार्थ सम्पन्न काव्य के रूप मे सौन्दर्य के साथ वह ज्ञान प्रस्तुत हो रहा है यह सौभाग्य का विषय है ।

हमारी भारतीय सस्कृति मे गुरु का महत्त्व बहुत माना गया है । कहा है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात् परब्रह्मा तस्मै श्रीगुरवे नम ॥

काव्य और उसमें चित्रकाव्य–

काव्य की परम्परा अत्यन्त प्रचीन है । **'स्तुति-विद्या'** काव्य कला की धरोहर है । सस्कृत काव्य की परम्परा का अन्तर्भाव गीति-काव्य से होता है । अत गीतिकाव्य एव मुक्तक काव्य की समस्त विशेषताओ का समावेश काव्य मे हो जाता है । जैन सस्कृत काव्य परम्परा के आदि प्रणेता है– **आचार्य समन्तभद्र** । आप दिगम्बर जैन परम्परा के उद्भट दार्शनिक,प्रकाण्ड पण्डित, निर्भीक, एव ख्यातिलब्ध आचार्य के रूप मे मान्य है । दिगम्बर जैन सस्कृत, काव्य परम्परा के आप आदि कवि है । आपका समय ईसा की द्वितीय शताब्दी है । आपसे पूर्व का जैन सस्कृत साहित्य सूत्र रूप मे उपलब्ध है, काव्य रूप मे नही । आपके काव्य मे दार्शनिकता एव कवित्व का मञ्जुल समन्वय है । **"जिनशतकम्"** के रूप मे समन्तभद्र से लेकर आज तक सस्कृत काव्य परम्परा की धारा निरन्तर प्रवहमान है ।

वैदिक कविता मे ऋग्वेद के उष सूत्र मे काव्य– तत्त्व का सुन्दर प्राचीनतम रूप प्रकट किया गया है। ऋग्वेद के ही नासदीय सूत्र मे **"को जानाति क अद्धावेद कुत आजाता कुत इय विसृष्टि"** सृष्टि की उत्पत्ति विषयक इस जिज्ञासा से आरम्भ कर उपनिषदो का ब्रह्म व आत्म चिन्तन साख्य योग मे कैवल्य प्राप्ति की उपासना, जैन तीर्थङ्करो, मुनियो की शुद्धात्म तत्त्व की शोध, गौतम बुद्ध और उनके अनुयायियो की निर्वाण के साथ साक्षात्कार की आराधना तथा आसेतु हिमाचल, द्वारिका से पुरी पर्यन्त सम्पूर्ण भारत मे सन्तो की सगुण, निर्गुण भक्ति और भगवदाराधना, आत्मा से परमात्मा की ओर ले जाने वाले भिन्न भिन्न उपाय है, मार्ग है। **'समुद्रमाप प्रविशन्ति यद्वत्'** जिस प्रकार सभी सरिताएँ महासमुद्र मे प्रवेश कर विश्राम पाती है, उसी प्रकार सब धर्म मार्ग और आत्मशोधन की सभी अहिसात्मक साधना पद्धतियाँ उसी परमात्म पद, ब्रह्म-निर्वाण वा मोक्ष मे जाकर विलीन होती है। ऋग्वेद मे भी भक्त की प्रार्थनाए निहित है। ऋग्वेद मे अलकार भी है। **'अरकृति'** शब्द से ही आगे चलकर अलकृति का प्रयोग होने लगा है। **'रलयोरभेद'**।

भरत का नाट्यशास्त्र, अग्नि पुराण, भामह, दण्डी, वामन आदि के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ मे काव्य के धर्मो का विवेचन है। भरत का रस-विधान, अग्निपुराण की काव्य-चर्चा, भामह, दण्डी तथा वामन की अलकार चर्चा से प्राचीन काव्यशास्त्र की परम्परा दृढ़ हो गई है।

अलकार दो प्रकार के माने गये है। एक शब्दालकार और दूसरा अर्थालकार। यह सभी को विदित है कि, अनुप्रास आदि शब्दालकार है और उपमा आदि अर्थालकार।

शास्त्र का वचन है– **'प्राधान्येन व्यपदेश'**। शब्द की प्रधानता के कारण शब्दालकार और अर्थ की प्रधानता से अर्थालकार कहा जाता हैं। श्लेष ऐसा अलकार है कि, विशिष्ट शब्द के अनेक अर्थ हो सकते है। शब्द को वहा से निकाल देने पर वहा शब्दालकार नही रहेगा।

फिर भी तात्त्विक दृष्टि से शब्द और अर्थ को, पृथक् पृथक् मानना और वैज्ञानिक दृष्टि से समीचीन नही है। मै एक व्याख्यान से उदाहरण देना चाहूँगा जो कि मेरे द्वारा कालिदास अकादमी मे एक सगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए किया गया था–

"The division of word and meaning is done in the schools by the teachers to point out the शब्दार्थ. However, how can we divide both the words and meanings from each other ? In fact they are inseperable. The great Acharyas

of the Vyakarana Shastra have traced the ımportance of a word, It ıs agreeable ıf we see that without a word no meanıng auspıcıous ın or mind, bùt at the same time we see how a word ıs not alone The word exısts so long the meanıng it contains. Hence, the practice to dıvıde word from meanıng ıs not scıentıfically correct.

I give you the ıllustration from the Raghuvansha of Kalıdasa— the first verse—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ   वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगत   पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ।।[1]

According to Kalidasa वाक् and अर्थ are ınseperable as the word सम्पृक्तौ is there and not सयुक्तौ

The goddess Parvati and Shıva are also ınseperable dıetıes as they are the अर्धनारीनरेश्वर The word and the meanıng are ınseperabe, because they are अयुतसिद्ध That is, they cannot exıst ındependently The co-herence ıs the essence of the वागर्थ, and the kavya ıs the congugal love of वाक् and अर्थ

इसी परिप्रेक्ष्य मे मुझे लगता है **'विद्याष्टकम्'** जैसे शब्दालकार की काव्य-विधा को **'प्राधान्येन व्यपदेश'** से ही शब्दालकार कहेगे, किन्तु इसमे निहित अनेक अर्थ बड़े प्रासगिक और सार्थक है। अर्थ भी सार्थक होते हैं। हेमचन्द्र के अनुसार चित्रकाव्य है– **'स्वरव्यञ्जनगत्याकारनियमच्युतगूढादि चित्रम्'** ।

---

1 Kalıdasa Raghuvansha

चित्रालङ्कारों के सामान्य नियम[1]–

1. "नाऽनुस्वार-विसर्गौ च चित्रभङ्गाय संमतौ"
अनुस्वार और विसर्ग का अतर होने से चित्राऽलङ्कार भग नही होता ।

2. "यमकादौ भवेदैक्यं डलो रलो र्वबोस्तथा ।"
यमकादि अलङ्कारो मे ड-ल, र-ल और ब-व मे अभेद होता है ।

3. यमकादि चित्रालङ्कारो मे कही-कही श-ष और न-ण मे भी अभेद होता है जैसा कि निम्न सग्रह श्लोक से जाना जाता है–

"यमकादौ भवेदैक्य डलयो रलयोर्वबो ।
शषयोर्नणयोश्चान्ते सविसर्गाऽ विसर्गयो· ।
सबिन्दुकाऽबिन्दुकयो स्यादभेदप्रकल्पनम् ।।"

शब्दालंकार-परंपरा में चित्रकाव्य–

'विद्याष्टकम्' काव्य चित्रकाव्य की विधा मे आता है । चित्र मे काव्य प्रतिष्ठित होता है। **'विद्याष्टकम्'** की यह विचित्रता है कि इसमे सन्दर्भित चित्रो मे से ही सम्पूर्ण काव्य प्रस्फुटित हो रहे है। इस प्रकार के काव्य की रचना के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता रहती है । प्रत्येक पद्य मे प्रयुक्त शब्दो के अनेक अर्थ दर्शाते हुए टीकाए भी लिखी गई है ।

एक विद्वान् ने श्रीमद् भागवत के एक पद्य के सौ अर्थ दिये है । श्री हर्ष द्वारा रचित नैषधीय चरित मे **'देवपतिनैषधराजगत्या'** आदि पद्य के 13 अर्थ दिये गये है जो श्लेष द्वारा ही प्राप्त होते हैं ।[2]

नौवी शती के मध्य मे बप्पभट्ट सूरि ने एक ग्रन्थ की रचना की है जिसके एक सौ आठ अर्थ होते है । ग्यारहवी शती के श्रीपाल द्वारा शतार्थी पद्य की रचना की गई है जिसमे सिद्ध

---

१ स्तुति विद्या–परिशिष्ट पृष्ठ एक प पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

२ नै च, सर्ग १३ नारायणी टीका ।

राज (राजा) स्वर्ग, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, भवनपति, कार्तिकेय, गणेश, इन्द्र, वैश्वानर आदि के अर्थ निहित है ।[1] उसी प्रकार ११६ अर्थो को प्रकट करने वाले पद्यो की रचना वर्धमान गणि (सन् ११३२) ने की है । एक जिनालय की 'कुमार-विहार प्रशस्ति' के रूप मे रचित इस पद्य मे ब्रह्मा, वैदिक देव, गौरी, नवग्रह, चार पुरूषार्थ, तीन लोक, रत्नत्रय, चार तीर्थङ्कर आदि के साथ-साथ गुरु और कुमारपाल राजा के भी वर्णन प्राप्त होते है। श्लेषालकार से यह पद्य अद्भुत रचना का उदाहरण है ।

सोमप्रभसूरि (सन् ११६८) द्वारा रचित एक पद्य है जिसके अर्थ अनेक है । कवि ने स्वोपज्ञ वृत्ति मे २४ तीर्थङ्कर, ११ गणधर, ५ महाव्रत, ४ पुरुषार्थ, ब्रह्मदिकदेव, नवग्रह आदि के अर्थ मे पद्य दिखाये है । डॉ त्रिपाठी के ग्रन्थ मे प्रदत्त जानकारी के अनुसार सहस्रावधानी मुनि समयसुन्दर गणि ने एक अद्वितीय और वह भी पूरे पद्य की नही अपितु एक चरण **'राजा नो ददते सौख्यम्'** मात्र की कृति पर आठ लाख से अधिक अर्थो का प्रदर्शन किया है वह अद्भुत है ।[2] 'अर्थ रत्नावली' यह उक्त चरण की टीका है।

मानस सागर गणि (१७वी शती) ऐसे ही एक प्रतिभाशाली कवि हुए है जिन्होने हेमचन्द्राचार्यकृत योग शास्त्र के एक पद्य की टीका लिखी है– शतार्थ विवरण । इसमे २४ तीर्थङ्कर, जिनवाणी, शासनदेवी, पञ्चपरमेष्ठी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, ज्ञान, काम, विजयक्षीरसूरि, विजयसेन सूरि, अकबरनृपति, नवग्रह सूरि, अष्टदिक्पाल, राम, १४ स्वप्न और गुरु बुद्धि सागरका वर्णन भी मिलता है । इन अर्थो के लिए एकाक्षर कोष, स्वरभक्ति एव पदभक्ति के साथ ही अनेकार्थ कोष का भी उपयोग हुआ है ।' कवि जगन्नाथ (सन् १६४२ ई) द्वारा रचित एक पद्य के चौबीस अर्थ किये गये है । टीका का नाम है– एकार्थ प्रकाशिका। इस प्रकार अनेक चित्र-बन्धात्मक पद्य मुक्तको मे बनाये गये है ।

श्लिष्ट काव्य की परम्परा बहुत बड़ी है, उसे पूर्ण रूप से यहा प्रस्तुत नही कर सकेगे । कुछ श्लेष-यमक की रचनाए भी है । जैसे– नीति वर्मा (९वी शती) द्वारा रचित सस्कृत काव्य 'कीचकबधम्' मे श्लेष-यमक का चमत्कार है । कृष्णमाचारी लिखते है–

---

१ दृष्टव्य है– जैन परम्परानो इतिहास, प्रकरण ४१, डॉ रू दे त्रिपाठी शब्दालकार साहित्य०, अ ५

२ जैन परम्परानो इतिहास, प्रकरण ४१, डॉ रू दे त्रिपाठी शब्दालकार साहित्य०, पृष्ठ २९

"In the history of the Sabdachar in Sanskrit, it has been said that the Keechak-vadha marks an important stage of development."[1]

श्री वत्साङ्क (12 वी शती) का काव्य 'यमक रत्नाकार' उल्लेखनीय है जिसमे श्रीकृष्ण की प्रशसा है । 15 वी शती के कवि मानाङ्क और वेकटेश यमक और श्लेष के निपुण कवि थे । ऐसे ही एक कवि गोपालदास (18 वी शती) के हुए । कवि धर्मघोष, कृष्ण मोहन, कृष्ण कवीन्द्र, आनन्दतीर्थ वासुदेव,श्रीकण्ठ आदि अनेक कवि हुए । इनके अतिरिक्त द्विसन्धान–काव्य भी लिखे गये ।

बन्ध काव्य मे किसी वस्तु के अदर अक्षरो का सन्धान किया जाता है जैसे– तलवार,कमल, मुरज, रथ, सॉप, आदि के चित्र । चित्र मे विभिन्न रचना होने के कारण यह चित्र-बन्ध काव्य कहलाता है । ऐसे चित्र बन्ध के कवि है– वेकटाचार्य (कमल-मालिका स्तोत्र) वेकटेश (कङ्कण-बन्ध) आदि । एक काव्य है कङ्कण-बन्ध-रामायणम्, जो कृष्णमूर्ति कवि (19 वी शती) की रचना है । और एक कवि है– चारलु भाष्यकार शास्त्री (20 वी शती पूर्वार्द्ध) जिन्होने एक ही पद्य मे 128 अर्थ की सृष्टि की है । पद्य है–

रामानाथा भारा सारा चारावारा गोपाधारा ।
धाराधारा भीमाकारा पारावारा सीतारामा ॥

ब्रह्मीभूत स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वति महाराज का यह पद्य भी दृष्टव्य है–

साकारता तारकासा कापि सार रसापिका ।
रसायमे मेयसार तारमेय यमेरता ॥

इस सक्षिप्त विवरण से भी एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि, **'विद्याष्टकम्'** और **'प्रशस्ति-पर्व'** जैसी रचना मे गुरु भक्ति, चित्र-बन्ध रचना कौशल, स्वोपज्ञ टीका और अन्य सामग्री जिसमे पाठको की सुविधा के लिए चित्र-काव्य को पढ़ने की विधि भी दी गई है और साथ ही मुनि-चर्या का विवरण आदि से सम्पूर्ण ग्रन्थ न केवल धार्मिक जैन समाज के लिए अपितु काव्य विधा के अध्येताओ, गुरु भक्ति से अभिभूत पाठको तथा धर्म मे श्रद्धान्वित सुधि जनो के लिए भी

1 कृष्णमाचारियर हिस्टरी ऑफ क्लासिकल लिटरेचर पृष्ठ ३७०

उपादेय है। रचना मे काव्यत्व होने के कारण केवल विशिष्ट गुरु और शिष्य की यह सम्पत्ति न होकर इसे काव्य-परम्परा मे स्थान मिलेगा। जो 20 वी शती मे किये गये इस योगदान के लिए विशेष उल्लेखनीय होगा।

ग्रन्थ के प्रकाशन मे श्री प्रदीप जैन अशोक नगर एव श्री कोमल चद जैन इन्दौर ने मुक्त हस्त दान दिया है। श्री सुमत जैन एव श्री राधेलाल जी अशोक नगर का योगदान भी उल्लेखनीय है। इन्दौर के छत्रपति नगर के सेवाभावी बन्धु डॉ जिनेन्द्र जैन, वीरेन्द्रजी, जिनेशजी आदि का भी योगदान रहा जिन्होने मेरा सम्पर्क मुनिश्री के साथ करा दिया था। भाई श्री शान्तिलाल जी (कलशधर) ने चित्रो के सरल-पाठन मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

ये सभी महानुभाव आभार प्रदर्शन की अपेक्षा तो नही रखते फिर भी मै उनका आभारी अवश्य हूँ।

अन्त मे कवि, चिन्तक, तपस्वी, स्वस्थमना, स्थिरचित्त, सुव्रती, भक्त शिरोमणि, आध्यात्मिक योगी मुनि श्री नियम सागरजी महाराज के प्रति मेरा मनातन श्रद्धा भाव प्रकट करता हूँ।

महावीर जयन्ती **–डॉ प्रभाकर नारायण कवठेकर**

दि 23-4-1994
145, अनूप नगर
इन्दौर 452008
दूरभाष– 440644

A Review

The scholar - devotee Śrīniyama sāgarajī has offered his wholehearted obeisance to his guru Śrīvidyāsāgarajī Maharaja with this cute octave titled Śrīvidyāstakam

The bandhakāvya which bears the poets weird majesty over the Sanskrit language generally exhibits the full freedom of phraseology and displays ample signs of the poet's imperious depth in Sanskrit grammatical and lexicographical peculiarities Specimens of such bandhakavyas can be found in some verses in some earlier poets as Bharavi and Māgha though it has been first recognised by Dandin Much ink has been split by the ālamkārikas also who have treated such bandhakavayas with alacrity and dedication ***Albeit*** *discarded by Viśwanātha, the author of Sāhitya-darpana it has been welcomed by Ānandavardhana and Mammata, his predecessor But in spite of this stimulation and enrichment these have failed to reach the highest point of ecstasy, unsophistication and avyājamanoharatva The modern Sanskrit poets refrain themselves from performing such feats of dexterity and try to remain aloofly unsympathetic from the puerile tricks of the bandhakāvyas*

But the writer of Śrīvidyāstakam has done a singular job which is not touched by the tasteless artificiality of the unnecessary torture of the language His pedantric observation of Sanskrit grammar, deep insight into Sanskrit Kosakāvya and investigation of abstruse vocabulary are to be congratulated in the present context when overall implication prevails over artistic symbolisation and emotional approach exercises decisive influence on literary acrobatics

The young Jain poet Srimiyama sagaraji has for the first time associated himself with such types of ***citrabandha*** *as* ***bhāratadeśabandha, hospital redcross bandha*** *and* ***tape recorder bandha*** *and with a detailed elaboration of arguments has endeavoured to substantiate the conviction with as much perfection as possible The Sanskrit commentary and its minutely worked out Hindi explanation by the poet himself are unique contribution It is also gratifying to note that the sketches are drawn by the poet himself*

The present octave, in short is composed with a superb command of Sanskrit verbosity, seldom available in modern Sanskrit poems And in respect of passion and fervour, love for circumlocution, alliteration and dainty concepts the present writer may boastfully vie with the works of Bhāravi, Bhatti, Kumāradāsa and Māgha, the architects of ***bandha writings***

6 August, 1994

Dr Ashoke Chatterjee
Sanskrit Professor
A-3 Laboni State
Salt City Calcutta
(West Bengal)

विद्यासागरनामके गुरुवरे दिव्यप्रभामण्डले
भक्ति दर्शयता निरन्तरमिद विद्याष्टक शोभनम्।
काव्य चित्रमय कृत गुणवता शिष्येण प्रज्ञावता
जैनश्रीनियमेन सागरवता तद्भूतल व्याप्नुयात्॥

प्रस्तुत श्रीविद्याष्टक काव्य दिगम्बर जैनकवि मुनि श्रीनियमसागर जी की अद्‌भुत कृति है जिसे उन्होने अपने पूज्य गुरु विद्यासागर जी मुनि महाराज (जन्म–१० अक्टूबर १९४६) को केन्द्र बनाकर अपनी श्रद्धा समर्पित करने की दृष्टि से १९९२ मे सहज स्फूर्त रचना के रूप मे अभिव्यक्त किया था। आपातत निरर्थक तथा अज्ञात भाषा के अक्षर जाल के रूप मे प्रतीत होने वाले इस काव्य मे अनेक अर्थ निहित है जो सस्कृत भाषा की गम्भीरता एव चित्रात्मकता को प्रकट करते है। ये अर्थ सहज रूप से, काव्य को अनेक बार पढ़ने पर भी, प्रकट नही होते। इसीलिए इन पद्यो का अर्थावगाहन टीका-सापेक्ष है। प्रसन्नता की बात है कि कवि ने इनकी व्याख्या सस्कृत तथा हिन्दी मे भी करके काव्य को सुगम और आर्जवक *बनाने का श्लाघ्य प्रयास किया है अन्यथा यह काव्य कतिपय सीमित जनों तक ही रह जाता।*

सस्कृत चित्रकाव्य की परम्परा अपनी क्लिष्टता और दुरूहता के कारण समाप्त हो गयी है। फिर भी इस 'समयाभाव' के युग मे चित्रकाव्य को पुनरुज्जीवित करके जनता की प्रज्ञा को तीक्ष्ण करने का प्रयत्न करना किसी गणितज्ञ के दुरूह शोधकार्य से कम महत्त्व नही रखता। प्राचीन चित्रकाव्यो मे जिन भेदो का समावेश नही हो सका था, ऐसे चित्रकाव्य भी इन आठ पद्यो मे निहित एव प्रतिष्ठापित है जैसे–भारतमानचित्रबन्ध (पद्य-२), रेडक्रॉसबन्ध (पद्य-६), टेपरिकार्डरबन्ध (पद्य-७)। इन नये प्रयोगो के लिए कवि की कल्पनाशक्ति वन्दनीय है।

यह काव्य केवल आठ पद्यो का है जो सबके सब अनुष्टुप् (श्लोक) छन्द मे है। इसके प्रत्येक चरण मे आठ अक्षर होते है। इस प्रकार ८ × ४ × ८ = २५६ अक्षरो के इस लघुकाय काव्य मे मुनिश्रीनियमसागर जी ने ऐसा चमत्कार भरा है जो आज तक सस्कृत जगत् मे नही हुआ। यह सत्य है कि इन्हे समझने मे अतुलित मानस-व्यायाम की आवश्यकता है, तथापि एक बार समझ लेने पर दो लाभ अवश्य होगे। पहला तो यह कि सस्कृत-भाषा के प्रति श्रद्धा की वृद्धि हो जायेगी जिसमे इतनी क्षमता है कि वर्ण को भी निरर्थक नही होने देती, पदो तथा वाक्यो का क्या कहना? सस्कृत की इसी सामर्थ्य का प्रभाव है कि सगणक (कम्प्यूटर) की भाषा के रूप मे इसका निवेश होने ही वाला है। इसका दूसरा लाभ यह है कि जैन मुनियो की कृपाशक्ति और साधना का साक्षात्कार होता है। अनन्त-ज्ञान-सम्पन्न जैनाचार्य की कृपा का परिणाम है कि

ऐसे काव्य स्वत स्फूर्त होते है जो मानस को मथ डाले, प्रज्ञा और मेधा का विकास करे। पुन यह जैन साधना है कि ऐसे काव्य के वर्ण-वर्ण पर विचार करके अन्तर्हित सुन्दर भावो को सस्कृत व्याख्या मे, हिन्दी भाष्य मे तथा सुरुचिपूर्ण हिन्दी कविता मे भी अभिव्यक्ति दे सके। क्या यह साधना के अभाव मे सम्भव है कि —

रला लाक्ष क्षनो नोक्ष रक्ष नो नोक्षलायनो।
रला लाक्ष क्षनो नोक्ष रक्ष नो नोक्षलायनो॥४॥

जैसे पद्य को हिन्दी काव्य मे इस रूप मे परिवर्तित किया जाये?

तन भी सुन्दर, मन भी सुन्दर सुन्दरता की मूरत हो।
अमिताभा आकर्षित करती, तपो-तेज-मय सूरत हो॥
तेजोनाथ आप कहलाते, निखिल विश्व आश्रयदाता।
करुणाधारक अनाथ-नाथ हो, ज्ञानी तो हर क्षण गाता।

चित्रकाव्य के स्थापन की विधि का वर्णन करके लेखक ने सामान्य पाठको का सुतराम् उपकार किया है। इससे चित्रकाव्य की दुरूह प्रक्रिया का न केवल श्लथीकरण हुआ, अपितु पाठको की इस दिशा मे अभिरुचि बढ़ेगी–मुझे पूर्ण विश्वास है।

पुस्तक के अन्त मे जैन-धर्म-दर्शन से सम्बद्ध कठिन पारिभाषिक शब्दो की सक्षिप्त व्याख्या करके इसकी उपयोगिता की श्रीवृद्धि की गयी है। ऐसे दुरूह ग्रन्थो का सम्पादन भी अत्यन्त कठिन कार्य है। मुझे प्रसन्नता है कि इस कार्य के लिए सौभाग्यवश डॉ० प्रभाकर नारायण कवठेकर जी की सेवा ली गयी है जो न केवल सस्कृत भाषा और साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् है अपितु एक सहृदय कवि भी है। मुझे विश्वास है कि काव्य का विषय (विद्यासागरजी), कवि-व्याख्याता (नियमसागरजी) तथा सम्पादक (कवठेकर जी) के रूप मे रत्नत्रय-विभूषित यह जैन चित्रकाव्य विद्वानो तथा सहृदय रसिको से प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा।

६-६-१९९४
पटना - २०

उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'
साहित्याचार्य, एम ए, डी लिट्
प्रोफेसर सस्कृत विभाग

आन्तर्यम्

*आचार्य प्रवर श्री विद्यासागर मुनि महाराज के परम शिष्य मुनिश्री नियमसागर महाराज ने **"विद्याष्टकम्"** नाम की अद्भुत, चैतन्यपरिपूर्ण, शाश्वतसुखसागरसम्पन्न, अनुपमेय, रसरसायनयुक्त, अमृतस्तोत्रयुक्त, चित्रकाव्य की रचना की है। 'विद्याष्टकम्' आधुनिक युग मे **"विद्याष्टक-विश्वकाव्यचित्र"** के नाम से जाना जाये तो अत्युक्ति नही होगी।*

जिस प्रकार पुष्प, समस्त विश्व को अपनी सुगन्धी से सतृप्त करते है उसी प्रकार यह चित्रकाव्य सम्पूर्ण विश्व को, सम्पूर्ण जनसमुदाय को काव्यसौरभ, काव्यानन्द और काव्यचैतन्य से निरन्तर आच्छादित करेगा। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणो से आकाश को प्रकाशित करता है उसी प्रकार विद्याष्टकम् चित्रकाव्य अपनी आध्यात्मिक ज्ञान रूपी किरणो से समस्त जगत् को प्रकाशित करेगा। सूर्य तो अस्त भी हो जाता है लेकिन 'विद्याष्टकम्' का प्रकाश कभी अस्त नही हो सकता।

. मुनिश्री नियमसागरजी महाराज ने अर्न्तभावो से नि सृत गुरुभक्ति को कृति मे निहित किया है। मुनिश्री ने भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य के समान प्राकृत गाथा, भगवान् अमृतचन्द्राचार्य के समान सस्कृत टीका एव श्रीमद् सोमदेवसूरि के समान गूढ़तम ज्ञान दर्शन का बोध कराया है। द्वितीय शताब्दी के आचार्य समन्तभद्र स्वामी द्वारा रचित स्तुति-विद्या (जिनशतकम्) के समान ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है। मुनिश्री जनसपर्क न करके निरतर काव्य सुख रूपी सरोवर एव आत्म सुख रूपी जलाशय मे निवास करते रहते है जिसकी प्रत्यक्षता यह चित्रकाव्य है।

*जिस प्रकार आकाश मे इन्द्रधनुष विचित्र वर्णो से सहित होता हुआ शोभायमान होता है उसी प्रकार से विद्याष्टक के अन्तर्गत **'प्रशस्ति-पर्व'** मे लिखित सत्रह श्लोक भी शोभायमान हो रहे है। ग्रन्थ के अन्त मे पारिभाषिक शब्द और दिगम्बर मुनि की चर्या को दर्शाने वाले दो परिशिष्ट सुगम रीति से दिये गये है। विद्याष्टक चित्रकाव्य का सम्पादन कार्य प्रा प्रभाकर नारायण कवेठकरजी ने बड़े ही आकर्षक ढग से किया है जो अभिनन्दनीय है।*

ऐसे ग्रन्थ का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण एव सर्वोपयोगी कार्य है। पूज्य मुनिश्री के चरणो मे कोटिश नमन् अर्पित है।

श्री धनपाल म हाबले
(बी ए बी एड)
विश्रामबाग-सागली

दि २४-५-१९९४

भावानुभूति

(गुरुवर से अतरग आशीष वार्ता के आधार पर)

चित्रालकार से अलकारित यह कृति **"विद्याष्टक"** वर्तमान युग की एक ऐसी अनन्यतम कृति है, जिसमे न केवल शिष्य की गुरु के प्रति भक्ति प्रदर्शित है, वरन् आचार्य समन्तभद्र महाराज की परपरा को अपने आप मे सजोय हुये है । उक्त रचना क्यो बनाई गई, और ऐसी ही क्यो बनी ? तो रचयिता अर्थात् पूज्य मुनि श्री का पूर्व से कोई विचार नही था कोई योजना नही थी । यह तो एक निमित्त था, जो मिला और कार्य की सिद्धि स्वयमेव हो गई ।

बात लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व की है । मुनि श्री ने कोपरगॉव (महाराष्ट्र) मे चातुर्मास की स्थापना की। 1992 का वर्ष जो कि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की दीक्षा के 25 वर्ष पूर्ण होने पर रजत-सयमोत्सव वर्ष के रूप मे मनाया जा रहा था, वह भी एक जगह नही बल्कि पूरे भारत मे एक साथ । पूर्व मे किशनगढ़ निवासी प श्री मूलचद जी लुहाड़िया के द्वारा दी गई प्रेरणा एव अपने गुरु के प्रति गृहस्थो/श्रावको की गहन भक्ति ने मुनिश्री के अदर के भावो को सचारित कर दिया और उद्वेलित हो उठी 'गुरु गरिमा'' की तरगे । समस्या आई कहॉ से प्रारभ करे ? क्या लिखे ? कैसे प्रकट करे उन भावो को ? लेकिन हृदय से निकली वे श्रद्धा की तरगे मार्ग खोजते-खोजते मजिल पर पहुँच गई, और मुनि श्री द्वारा ही रचित पूर्व कृति **"रत्नत्रय-स्तुति-शतक"** (अप्रकाशित) के १०२ न के श्लोक का स्पर्श करने लगी । जिसमे ''यथाख्यात-चारित्र'' की स्तुति की गई है । लेकिन इसी श्लोक को आचार्य श्री की स्तुति के लिए क्यो चुना ? तो जिस चारित्र का गुणगान इस श्लोक मे किया गया है, उसका साक्षात् स्वरूप उनके गुरु मे समाहित है । उस चारित्र की कल्पना अपने गुरु विद्यासागर जी के सिवा अन्यत्र देखने को नही मिली। अत उसी श्लोक के अक्षरो को विलोम कर दिया और बना दिया एक नया श्लोक –

वाराधारर ! धारावाराक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा ।
धाला ! य ! नो नो यलाधा रक्षनो ज्ञज्ञ ! नो क्षर ॥१॥

लेकिन यह क्या ! इस अष्टाक्षरी श्लोक की रचना होते ही यह कैसा अतिशय हो गया। इस श्लोक ने तो एक के बाद एक अन्य श्लोको को कल्पवृक्ष की तरह पैदा करना प्रारभ कर दिया, और इसी प्रक्रिया ने पैदा कर दी कल्पवृक्ष के आकार की कल्पना। निर्माण हुआ प्रथम

चित्र **"सर्वतो-भद्र-कल्पद्रुम-बंध ।"** कल्पवृक्ष की कल्पना ने भोग भूमि और कर्म भूमि का स्मरण करा दिया और ससार के जन्म-मरण एव क्षण भगुरता का अहसास होते ही "ससार तो मृत्यु के कूप के समान है" अत दृश्य घूमा **'मृत्यु-कूप-बध"** का एव चित्राकन भी उसी रूप मे चित्रित हो गया । कल्पना का यह क्रम जब आगे बढ़ा तो देखा कि वास्तव मे आचार्य श्री भी उपचार से कल्पवृक्ष की तरह ही है, इसीलिये तो सपूर्ण भारत मे उन्हे पूजा जाता है । भारत ! ओह ! भरत का भारत ! भारत का कितना सुदर नक्शा है । इसी नक्शे के आकार-क्षेत्र मे आचार्य श्री विचरण करते है साधना करते है । बस दूसरा चित्र **"भारत-देश-बध'** का निर्माण हो गया। अब तीसरे श्लोक का क्रम आया तो आकृति की कल्पना भी जागी । कल्पना मे खोये हुये थे कि किसी श्रावक ने आकर कहा महाराज चर्या का समय हो गया । आहार चर्या का नाम सुनते ही विचार आया क्या, आचार्य श्री आहार के लिये हॉ हॉ चर्या । आचार्य श्री आहार के लिये जा रहे है श्रावक पड़गाहन कर रहे है पीला धोती-दुपट्टा है और सिर पर है कलश क्या ! कलश ! बस बन गया तीसरे श्लोक का आकार **लोटे** के रूप मे । लेकिन अभी कलश पूर्ण नही हुआ । कलश के लिये लोटे पर **श्रीफल** भी अनिवार्य है, अत चतुर्थ श्लोक को श्रीफल के आकार मे रख दिया । आचार्य श्री की नवधा भक्ति से पूजन होती है । **"स्वस्तिक"** बनाकर। **"स्वस्तिक-बध"** यही नाम रखा पाचवे चित्र का । आचार्य श्री प्रवचन कर रहे है। उफ ! इस ससार की व्याधि को दूर करने के लिये कैसी औषधि दे रहे है, बिल्कुल चिकित्सक की तरह। अर्थात् ये चिकित्सक ही है, और ससार रूपी व्याधि को दूर करने मे स्पेशलिस्ट है । चिकित्सा का सकेत **"रेडक्रास'** (+) छठा श्लोक इसी बध मे है । ध्यान-अवस्था मे बैठे है, बिल्कुल सिद्ध परमेष्ठी की तरह। अत इसी छठे श्लोक को रख दिया **'सिद्ध-चक्र-बन्ध'** मे। कितने सारे शिष्य है उनके । लेकिन सभी के प्रति दृष्टिकोण बिल्कुल एक समान । समान दृष्टि का कोण यानि **समकोण** । समकोण मे पॉच अक्षर यही है पच परमेष्ठी के प्रतीक । इसी समकोण के कारण वे आचार्य परमेष्ठी है और यही समकोण उन्हे पचम गति अर्थात् पाचो परमेष्ठी मे श्रेष्ठ सिद्ध-पद को प्रदान करेगा । आचार्य श्री तो उस मुरज के समान है, जो शिल्पी के हाथो का स्पर्श पाकर, बिना किसी अपेक्षा के मनमोहक स्वरो को देता है, अत वे भी मुरज है । निर्मित है– **"मुरज बध"** । ऐसी कठोर साधना करते हुये उन्हे 25 वर्ष बीत गये है अत इन सयम के प्रतीक महात्मा की दीक्षा का यह 'रजत-वर्ष' है इसीलिए यह **'रजत सयमोत्सव वर्ष'** के रूप मे है । वास्तव मे उनका जन्म तो **"10 अक्टूबर 1946"** को ही हुआ था लेकिन 25 वर्ष तो दीक्षा लिये हुये उनको हो गये है, अर्थात् उनकी दीक्षा **"10 जून 1968"** को हुई थी और आचार्य

पद **"22 नवबर 1972"** को प्राप्त किया था । इन विचारो ने इस प्रकार अनेक आकारो को जन्म दिया और बनती गई एक के बाद एक आकृतियाँ। थोड़ा ध्यान हटा तो पुन आचार्य श्री के प्रवचन का दृश्य घूमा, औषधि बाट रहे है । लेकिन क्या उनकी औषधि को श्रावक एक साथ पूर्ण रूप से ग्रहण कर रहे है । नही । उनमे इतनी क्षमता कहाँ । अत वे उस "अमृत वाणी" रूपी औषधि को आधुनिक यत्र **"टेपरिकार्डर"** के माध्यम से कैसिट मे बद कर लेते है और बार-बार "वेक्वर्ड-फारवर्ड" करके उसका पान करते है। अत सातवे श्लोक की कल्पना **"टेपरिकार्डर-बन्ध"** के आकार मे उतर गई । आठवे श्लोक की रचना होते ही सयम आड़े आ गया। मन कहने लगा– अब उस कल्पवृक्ष रूपी श्लोक से और न मागो । वह तो देता जायेगा, लेकिन सयम अनिवार्य है और अष्टक भी तो पूर्ण हो गया है । अत **"चतुरक्षरबन्ध"** बनाकर चारो कोनो मे उस आठवे श्लोक को बता दिया जो कि प्रतीक है– चार गतियो से मुक्ति का । उपसहार के माध्यम से कह भी दिया कि जो आचार्य श्री की भक्ति अन्तर भावो से करेगा वह वा-वानर, अर्थात् तिर्यञ्चगति से तिर जायेगा। रा-रात्रि, अर्थात् नरक गति मे नही जायेगा। क्ष-क्षय, अर्थात् कर्मो को क्षय करने की क्षमता रखने वाली मनुष्य गति से भी मुक्त हो जायेगा और रा-राक्षसादि देव गतियो मे भी भ्रमण नही करेगा। यानि मोक्ष को, मुक्ति को प्राप्त करेगा ।

"विद्याष्टक" को देखकर/पढ़कर सहज ही तृप्ति हो पाना असभव है । महाराज श्री ने एक जनवरी 1994 के दिन सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही कृति मे सलग्न "प्रशस्ति पर्व" उर्फ अतृप्त धारा को ऐसे अनोखे, अद्भुत एव निराले ढग से प्रस्तुत किया, जिसे देखकर व्यक्ति विशेष ही नही, वरन् जन-जन की आखो के सामने मुनि श्री का चेहरा चतुर्थ कालीन, आत्मा मे लीन रहने वाले साधुओ की तरह नाचने लगा । पूज्य मुनि श्री के उस दिन वाक्य थे– **"आज मैंने वह कर लिया जो वर्षों से करना चाहता था ।"** लेकिन वास्तव मे पूज्य गुरुदेव ने वह कार्य कर दिया जो न तो आज तक प्राचीन जैन/जैनेतर आचार्यो द्वारा वर्णित किया गया है और न ही चित्रालकार की इस परपरा मे ऐसी रचना की कोई सभावना ही लगती है ।

–संघस्थ ब्रह्मचारी

प्रकाशकीय

भक्ति के शिखर पर दैदीप्यमान कृति **'विद्याष्टक'** आधुनिक युग की एक अनन्यतम कृति है। जहाँ एक ओर इस कृति मे द्वितीय शताब्दी की प्राचीनता झलकती है वही दूसरी ओर अनूठा कला-प्रदर्शन, चितन की गहराई एव विद्वत्ता की झलकन भी मन को झकझोर देती है।

आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के तृतीय शिष्य **पूज्य मुनिश्री नियम सागर जी महाराज** ने जैन सस्कृति एव धर्म पताका को चिरजीवी करने और विश्व जगत् को दिगम्बर अवस्था की सुयोग्यता प्रदर्शित करते हुए सम्पूर्ण मानव-जगत् पर करुणा कर इस कृति की रचना की है। जब पहली नजर हमने इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति पर डाली तो अन्दर से अचानक ही निकल पड़ा 'महाराज श्री पुस्तक प्रकाशन हेतु आशीर्वाद दीजिए'। हाथ उठा, सहारा लिया सघस्थ ब्रह्मचारी भैयाजी का जिन्होने पूर्णत निर्देशित किया और कार्य को सुचारू रूप दिया श्री सुमत जैन (अखाई वाले) अशोक नगर ने।

हमारा परम सौभाग्य है जो ऐसी अनूठी कृति के प्रकाशन का योग प्राप्त हुआ। कृति के सम्पादक श्रीमान् डॉ प्रभाकर नारायण कवठेकर, जो कि एक ख्याति प्राप्त विद्वान् है, हम उनके प्रति आभारी है हम श्री ब्रह्मचारीजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए पूज्य मुनिश्री के चरणो मे कोटिश नमन् करते है। सुधिजनो की स्वाध्याय सेवा के लिए प्रस्तुत है यह कृति **'विद्याष्टकम्'**

प्रदीप जैन कौंसल (प्रदीप कटपीस) अशोक नगर

पिता– श्री केवल चद कासल | **माता– श्रीमति चन्द्रकुमारी कासल**

पत्नि– श्रीमति अजु कासल | **भाई– श्री मनोज एव सजीव जैन**

बच्ची– कु सिद्धायिनी | **व समस्त कासल परिवार**

श्रीमति भागवती बाई W/O श्री कोमल चद जैन

छत्रपति नगर इन्दौर

प्रदीप कटपीस

☎ (22462, 22476, 22768)

ग्रन्थ में प्रयुक्त सन्दर्भ संकेत

१. वि. लो. : **विश्व लोचन कोश** (श्री श्रीधरसेनाचार्य विरचित) अपरनाम (मुक्तावलीकोश)

प्रकाशक
श्री जैनग्रथ रत्नाकर
कार्यालय हरिबाग,
पो गिरगॉव-बम्बई
श्री वीर निर्वाण सवत् २४३८
जून १९१२ ईश्वी

२. सं.हि.आ. : **सस्कृत हिन्दी कोश**
(लेखक वामन शिवराम आप्टे)

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
बगला रोड, जवाहरनगर दिल्ली - ११०००७
१९८७

३. पं. चं. : **पद्मचन्द्र कोश** (श्री गणेशदत्त शास्त्री विरचित)

प्रकाशक
मेहरचन्द लक्ष्मणदास
सस्कृत पुस्तकालय
सैदमिट्ठा बाजार लाहौर
१९२५

४. आर्ष : कृति मे कृतिकार के द्वारा स्वय प्रयुक्त शब्द। अर्थात् आर्ष प्रयुक्त शब्द।

विषय-सूची

विद्याष्टकम्

वारावारव ' धारावाराक्षलाक्ष ' क्षलाक्षरा: ' ।
धाला: ' य ' नो नोऽयलाधा रक्ष नोऽज्ञज्ञ ' नोऽक्षर ॥1॥

रक्ष यक्षक्षराऽऽधार ' रक्ष नो ' नो य ' नोऽक्षर ' ।
रलाऽयक्ष ' रधालालाऽऽधार ' धाररधा ! रधा: ! ॥2॥

भारत देश बन्धः

नो ! नोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार ' नो ! य ' लाऽ क्षक्षलाय नो ।
नोनोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार ' नो ! यलाऽ क्षक्षलाय नो ॥3॥

कलश बन्धः

रलाऽ लाक्ष ' क्षनोनोऽक्ष ' रक्ष नोऽनोऽ क्षलायनो ।
रलाऽ लाक्ष ! क्षनो नोऽक्ष ' रक्ष नो ' नोऽक्षला ! यनो ॥4॥

श्रीफल बन्धः

नो ! नोऽज्ञज्ञज्ञ ' नोऽयक्ष ' नोऽज्ञनोऽ ' य यनोऽ - क्षयः ।
यक्षनोऽज्ञज्ञनो नो नो क्षयनोऽज्ञ ' ज्ञनोऽ ' क्षयः ॥5॥

स्वस्तिक बन्धः

रेड्क्रॉस बन्धः

रलालाररलालार ' रक्ष नो ज्ञज्ञ ' नोऽ ' क्षर ' ।
रलालाररलालाररक्षनो ज्ञ ' ज्ञनोऽ ' क्षर ' ॥6॥

टेपरिकार्डर बन्धः

यलाधार ' रधाऽऽलाय ' नोऽक्षलाय ' यनोऽक्षला: ।
यलाऽऽधार ' रधालायनोऽक्षलायय ' नोऽक्षला: ॥7॥

चतुरक्षर बन्ध

रावाराक्षक्षरावा राऽ - राक्षराक्षक्षराक्षरा: ।
वा रारा: क्षक्षरा रावा वाऽक्षवा: क्षक्ष ' वाक्षवा: ॥8॥

उपसंहारः

विद्यासागरश्रीदेव नित्य सस्तौति यो मुदा ।
स सम्प्राप्य सदा शुद्धिमात्मनोऽर शिव व्रजेत् ॥1॥

यावदेमि न कैवल्यं विद्याब्धि वीतरागिणाम् ।
स्तुवे भजे यजे भक्त्या नित्य "नियमपारिधिः" ॥2॥

कृति-उत्पादककाव्यम्
सर्वतोभद्र
कल्पवृक्षबन्ध:
वाराधारर! धारावा-
राक्षलाक्ष! क्षलाक्षरा:!
धाला:'य! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ! नोऽक्षर॥
-रत्नत्रयस्तुतिशतकम्-२०२-

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रबन्धप्रथमकाव्यस्य जन्मदातृ-
रत्नत्रयस्तुतिशतकस्य सर्वतोभद्रबन्धकाव्यम् । तस्य बन्धस्य प्रतिलोममेव
विद्याष्टकस्य प्रथमकाव्यम् । अत्राऽधस्ताद्रत्नत्रयस्तुतिशतकग्रंथान्तर्गतस्य
यथाख्यातसयमप्रतिपादकसर्वतोभद्रबन्धप्रथमकाव्य तत्संस्कृतटीकोपेत दीयते-

वाराधारर ! धारावाराक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ! ।
धालाः ! य ! नो नोऽ यलाधा रक्ष नोऽज्ञज्ञ! नोऽक्षर ! ॥

(रत्नत्रयस्तुति- शतकस्य काव्यम् श्लोक - क्र 102)

-अन्वयार्थः-

वाराधारर ! धारावाराक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा ! धाला ! य ! (त्व) अयलाधा नो (असि) । (अत) अज्ञज्ञ ! अक्षर !(त्व) न (अस्माक) न (पूज्य.) (असि) । (अत) न (अस्मान्) रक्ष ॥१०२॥

-संस्कृत-टीका-

वाराधाररेति-

वाराधारर ! वारस्य[1] आवरणस्य कर्मणा सवरस्य वा आधारो[2] मूलोऽसौ वाराधारस्त कर्मणामावरणमूलमसौ रो राति लाति ददातीति वाराधाररोऽर्थान्निरोधमूलस्य सवरस्य वा दाता, तत्सम्बुद्धौ हे वाराधारर ! हे सवरमूलदात ! इत्यर्थ । अथवा सवरमूलस्य दायकत्वादसौ सयम सवरमूलदाता तत्सम्बुद्धौ हे सवरमूलदात ! वाराधारर ! इति । **धारावाराक्षलाक्ष !** धारावारोऽर्थो[४-५]-न्निरन्तरक्रम इत्यर्थ अक्ष[६] व्यवहार इत्यर्थ ला दायको लायको वेत्यर्थ । अर्थात् कर्मनिर्जराया

-सन्दर्भाः-

(१) वारो व्रातेऽप्यावरणे । इति च (स हि आ)
(२) आधारस्त्वाश्रये स्तम्भे मूले सेतौ च रक्षके । इति च (स हि आ)
(४-५) धारा निरन्तरे खड्गे वारो द्वारे क्रमे क्षणे । इति च (प च)
(६) अक्षञ्चक्रे तुलादण्डे व्यवहारेन्द्रियात्मसु । इति च (प च)

निरन्तरक्रमव्यवहार योऽसौ लाति राति ददाति स निरन्तरक्रमव्यवहारला अथवा धारावाराक्षला धाराक्रमव्यवहारदायक इत्यर्थ । एव धाराक्रमव्यवहारदायक शील स्वभावोऽक्ष[८] आत्मा वा यस्य स धारावाराक्षलाक्षोऽ थवा धाराक्रमव्यवहारदायकात्मा इत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ धारावाराक्षलाक्ष ! अथवा हे धाराक्रमव्यवहारदायकात्मन्! इति । किमुक्त भवति– अर्थाज्ज्ञानावरणादिकर्मनिर्जराया धाराक्रमव्यवहारदायकात्मन् ! हे वीतरागयथाख्यातसयम ! इत्यर्थ । **क्षलाक्षरा** !–क्षलो[९] धावन प्रक्षालन वेत्यर्थ । अक्षर शून्य इत्यर्थ । आ[११] शिव इत्यर्थ । अर्थाद्यस्य समस्तमोहनीय-कर्मणा क्षलो धावन प्रक्षालन वा न विद्यतेऽर्थाच्छून्योऽस्ति स प्रक्षालनशून्योऽथवा क्षलाक्षर इत्यर्थ । तथा एव विध-विशेषणविशिष्ठप्रक्षालनशून्यत्वगुणो यस्य आत्व शिवस्वरूपत्वमेति स प्रक्षालनशून्यशिवस्वरूपोऽथवा क्षलाऽक्षरा इत्यर्थ । एतत्सम्बुद्धौ हे प्रक्षालनशून्यशिवस्वरूप ! हे वीतरागयथाख्यातसयम ! अथवा हे क्षलाक्षरा ! (क्षलाक्षर+आ = क्षलाक्षरा) इत्यर्थ । किमुक्त भवत्येतत् । अर्थाद्धे समस्तविधमोहनीयकर्म-प्रक्षालनशून्यशिवस्वरूपवीतरागयथाख्यातसयम ! अथवा क्षलाक्षरा ! इत्यर्थ । श्लोकेऽस्मिन्प्रयुक्तनवतरशब्दा सर्वे विश्वलोचन-पद्मचन्द्र-सस्कृत-हिन्दी आदर्शहिन्दीसस्कृतकोशोदिता । **हे धाला** ! ब्रह्मत्व शिवत्व वा राति लाति ददातीति धाला ! तत्सम्बुद्धौ **हे धाला** हे परमात्मपददात ! इत्यर्थ । **हे य** ! हे सयम ! **(त्व) अयलाधा नो (असि)** -अर्थादयोऽसयमो ल[१२] इन्द्र स्वामी वार्थ । आधा परिधाता आश्रयदाता वार्थ, नोऽसि त्व नाऽसि । अर्थादयस्य ल अयलोऽ बोध (अज्ञान) इत्यतस्तस्य अयलस्य आधा अयलाधा अर्थादसयमेन्द्राश्रयदाता अर्थादज्ञानधाता इत्यर्थ । किमुक्त भवति हे सयम ! त्व अज्ञानपरिधाता न असि इत्यर्थ । **हे अज्ञज्ञ** [१४-१५]। अज्ञ आत्मा सरागत्वात्स्वाऽ ज्ञत्वस्य जडस्य सवेदको भवति पर ज्ञत्वस्य वीतरागस्य वा केवलो ज्ञाता तिष्ठति किन्तु हे सयम ! (यथाख्यातसयम !) त्व वीतरागत्वात्परेषामात्मनामेव भूतकालापेक्षया स्वस्याऽऽत्मनोऽज्ञत्व जडत्व ज्ञत्वरूपेण केवलो विजानासि न च तस्य

–सन्दर्भाः

(८) अक्ष आत्मनि वा शीले स्वभावे वाऽपि वेदने । इति च (स हि आ)

(९) क्षल प्रक्षालने वापि प्रलयेपि च धावने । चेत्यार्ष

(११) तुल्याभावयोरा पितामहे (शिवे) । इति च (वि लो)

(१२) लस्तु चेन्द्रे स्वामिनि स्याद् । इति च (वि लो)

(१४-१५) अज्ञ शठे ज्ञान शून्येऽपि ज्ञो ज्ञायकज्ञानिनो । इति च (प च)

(जडत्वस्य) सवेदक सतिष्ठसे । अतस्त्व अज्ञाना जडानामपि ज्ञाताऽसि तत्सम्बुद्धौ हे अज्ञज्ञ ! जडाना ज्ञायक ! हे अज्ञाना ज्ञात ! वेति। **(अत·) हे अक्षर ! (त्व) न· (अस्माक) न· पूज्य (असि)** अत हे अक्षर ! त्वमस्माक पूज्योऽसि । यस्मिन् प्राप्ते सति न क्षर स अक्षर [१६]। अन्तिमगुणस्थानत्रयस्य यथाख्यातसयमोऽक्षरो विनाशरहितो वर्तते तत्सम्बुद्धौ हे अक्षर ! हे विनाशरहितयथाख्यातसयम ! इति । किन्त्वेकादशतम-गुणस्थानस्य यथाख्यातसयम क्षरस्वरूपो वर्ततेऽर्थात्प्रतिपातिस्वभावत्वेन क्षरस्वरूपत्वाद्विनाशस्वरूपत्वाद्वा क्षर इति । किन्तु गुणस्थानत्रयस्याऽन्तिमस्य वीतरागसयमोऽ प्रतिपातिस्वभावत्वेनाऽ विनाशस्वरूपत्वादक्षररूपो वर्तते । **न** अस्माक । **न** [१७] पूज्य असि इत्यर्थ । **(अत·) न (अस्मान्) रक्ष** अतस्त्वमस्मान्रक्ष पाहि वेत्यर्थ । एतावता किमुक्त भवति हे कर्मणा सवरमूलदात ! हे कर्मनिर्जराया धाराक्रमव्यवहारदायकात्मन् ! हे समस्तमोहनीयकर्मप्रक्षालन-शून्यशिवस्वरूपवीतरागयथाख्यातसयम ! हे परमात्मदात ! हे सयम ! असयमस्येन्द्रोऽ सयमेन्द्रस्तस्याऽ र्थादबोधस्याऽऽश्रयदाता परिधाता वा त्व नाऽसि। हे सयम ! अज्ञ आत्मा सरागत्वात्स्वाज्ञत्वस्य जडस्य वा सवेदको भवति पर ज्ञत्वस्य वीतरागस्य वा केवल स ज्ञाता तिष्ठति किन्तु हे यथाख्यात-सयम ! त्व वीतरागत्वात्परेषामात्मनामेव भूतकालापेक्षया स्वस्याऽऽत्मनोऽज्ञत्व जडत्व वा त केवलो विजानासि न च तस्य (जडत्वस्य) सवेदक सतिष्ठसे। अतस्त्वमज्ञानामपि ज्ञाताऽसि । अतस्त्वमज्ञज्ञविशेषणविशिष्ठस्तिष्ठसे। यस्मिन् प्राप्ते सति क्षरो विनाशो वा न सोऽक्षर । हे सयम ! त्वमक्षरोऽस्यतस्त्वमस्माक पूज्योऽ स्यर्थादन्तिमगुणस्थानत्रयेषु त्वमक्षररूपोऽ विनाशरूपोऽर्थादप्रतिपातिरूपो वाऽसि किन्त्वेकादशतमगुणस्थानस्य यथाख्यातसयम क्षररूपो वर्ततेऽर्थात्प्रतिपातिस्वभावत्वेन क्षररूपत्वाद्विनाशरूपत्वाद्वा क्षरो विनाशशीलो वा वर्ततेऽत कारणात्तस्मादपि त्वमेवपूज्यत्व यास्यतस्त्वमेवास्माक श्रमणानामारक्षकस्तिष्ठस्यतोऽ स्मानारक्ष पाहि वेत्यर्थ ॥ १०२॥

□□

सन्दर्भाः

(१६) अक्षरस्तु स्थिरेऽनाशे चेति (स हि आ)

(१७) नकारो जिनपूज्ययो इति च (वि लो)

हिन्दी-टीका

जिनेन्द्र देव ने कर्म[1] को पाप-पुण्य[2] के भेद से दो प्रकार का कहा है । कर्मका सवरण करने के लिए यथाख्यात-सयम[3] ही सर्वथा मूलाधार है। अत हे यथाख्यात-संयम ! तुम सवर-तत्त्व[4] के सर्वोत्कृष्ट-मूल-आधार हो । इस कारण कर्म-निरोध के मूल स्वरूप-सवर-तत्त्व के दाता तुम ही हो । हे सर्वोत्कृष्ट-संयम ! तुम कर्म निर्जरा के निरन्तर-क्रम-व्यवहार को लाते हो अत गुणश्रेणी-निर्जरा[5] के उत्कृष्ट-दाता तुम ही हो अर्थात् निरन्तर-क्रम से गुण-श्रेणी -निर्जरा के व्यवहार को देना ही तुम्हारा स्वभाव है । अत तुम 'धारावाराक्षलाक्ष' अर्थात् निरन्तर-क्रम से गुणश्रेणी-कर्मनिर्जरा-दायक-स्वभावी हो । हे क्षीण-मोह[6] स्वरूप-यथाख्यात-संयम ! तुमने मोहनीय-कर्म[7] की समस्त अठ्ठाईस प्रकृतियो[8] को धो डाला है । अत तुम मोहनीय कर्म से सर्वथा शून्य हो और अन्तर्मुहूर्त[9] के भीतर ही ज्ञानावरणीय,[10] दर्शनावरणीय[11] और अन्तरायकर्म[12] को भी शीघ्र नाश करके साक्षात् शिवत्व को अर्थात् जिन-स्वरूपता को प्राप्त होने वाले हो अत तुम मोहनीय-कर्म-प्रक्षालन-शून्य-शिवस्वरूप हो। हे सर्वोत्कृष्ट-वीतराग[13] परम-उपेक्षा-सयम[14] ! तुम साक्षात् शिवत्व के प्रदायक हो । अत परमात्म-पद[15] प्रदाता केवल तुम ही हो । हे परमार्थभूत-संयम[16-17] ! हे आत्म-हित के परमधाम ! असयम[18] का इन्द्र, अज्ञान होता है और वही अज्ञान असंयमेन्द्र कहलाता है उस असयमेन्द्र के अर्थात् अज्ञान के आश्रय-दाता परिरक्षक, तुम नहीं हो सकते क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के उपरान्त नियम से तुम केवल-ज्ञान[19] को प्राप्त करने वाले हो अत तुम अज्ञान के विनाशक हो । हे परम-वीतराग[20] ! हे ज्ञाता-द्रष्टा[21] ! अज्ञानी-आत्मा सराग होने से अर्थात् राग[22]-द्वेष[23] से सहित होने से अज्ञान दशा मे अज्ञानता का अर्थात् जड़ता का ही अनुभव करता है और वीतरागता का या निर्विकल्प-ज्ञान-दशा[24] का केवल ज्ञाता ही रहता है । परन्तु हे परम-समाधि स्वरूप-सयम[25] ! तुम सर्वथा वीतरागी[26] होने से परद्रव्य[27] स्वरूप परात्माओ की और भूतकाल की अपेक्षा से अपनी स्वद्रव्य स्वरूप निजात्मा की अज्ञानता को अर्थात् अज्ञान-स्वरूप उस विगत-पर्याय को केवल ज्ञाता द्रष्टा होकर ज्ञान-गुण[28] के द्वारा सिर्फ उसे जानते ही हो पर, उस पर्याय[29] का सवेदन[30] नही करते । इसीलिए तुम अज्ञानता के अर्थात् जड़ता के केवल ज्ञायक[31] ही हो सवेदक[32] नही क्योंकि सवेदना वर्तमान-पर्याय की ही होती है, भूत-पर्याय की नही। यहाँ भूत-पर्याये असद्रूप[33] होने से उनके सवेदक तुम नही हो सकते और परात्माओ की त्रैकालिक-सराग[34]- पर्यायो के भी तुम केवल ज्ञायक ही हो सवेदक नहीं क्योंकि वे परात्माएँ[35]

पर-द्रव्य हैं और पर-द्रव्य[३६] की सराग-पर्यायो[३७] के भी तुम केवल ज्ञायक ही हो सवेदक नही। इस प्रकार से हे **यथाख्यात-संयम** ! तुम स्व और पर-द्रव्य की सराग-पर्यायो के परोक्ष रूप से केवल ज्ञायक ही हो और निजीय-वर्तमान-वीतराग-पर्याय[३८] के सवेदक[३९] ही हो, इस तरह ऐसा तुम्हारा स्वभाव ही है । हे **विनाश-रहित-संयम**[४०] ! तुम अन्तिम-गुणस्थानत्रय[४१] मे विनाश रहित हो अत तुम अक्षर हो/अविनश्वर हो/अच्युत[४४] हो किन्तु ग्यारहवे गुणस्थान[४२] का वह यथाख्यात-सयम क्षरस्वरूप है/विनश्वर है इसलिए कि वह सयम, प्रतिपाति-स्वभाव-स्वरूप[४५] होने से पतनशील-स्वभावी है किन्तु तुम बारहवे गुणस्थान[४६] के सयम हो, अक्षर[४३]-रूप हो, इसीलिए विनाश से रहित हो, अप्रतिपाति-स्वभाव-स्वरूप[४७] हो एव पतनशील-स्वभाव से रहित हो । हे **संयम** ! तुम इस लोक मे सर्वश्रेष्ठ हो, पूज्य हो एव सर्व-जन आराध्य हो, अत श्रमण-जन तुम्हारी ही सस्तुति करने मे अपना समय लगाते है । अत हे **संयम** ! तुम शीघ्र ही हम सबकी रक्षा करो ।।102।।

❁ ❁ ❁

विद्याष्टकम्

मङ्गलाचरणम्

(शार्दूलविक्रीडित-छन्द)

विद्यासागरविश्ववन्द्यश्रमणं चित्राष्टकैः संस्तुवे
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्
ज्ञानध्यानतपोऽभिरक्तमुनिपं विश्वस्य विश्वाश्रयम्
साकारं श्रमणं विशाल-हृदयं 'सत्यं शिवं सुन्दरम'

2
3
4
5
7
I
II
III
IV
V
VI
VII
22 NOV
1972
30 JUN
1968
10 OCT
1946

भारतदेश बन्ध
कलशबन्ध
मृत्युकूपबन्ध
स्वस्तिक बन्ध
रेडक्रॉसबन्ध
टेपरिकॉर्डरबन्ध
चतुरक्षर बन्ध
— उपसंहार — I.
— उपसंहार — II

चित्र.क्र. 1.

चित्र.क्र.2
(B)

यथाख्यातचारित्रसस्तुतिकाव्यम्

वाराधारर ! धारावा -
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ।।
धालाः ! य ! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर !

विद्याष्टकस्य प्रथमकाव्यम्

वाराधारर ! धारावा
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ।
धालाः ! य ! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर !

अनेकविधचित्रजन्मदायकसप्तकाव्यगर्भित
सर्वतोभद्रकल्पद्रुमबन्धे

विद्याष्टकम्

रत्नत्रयस्तुतिशतकग्रन्थान्तर्गतस्य यथाख्यातचारित्रस्तुत्यर्थप्रदायि सर्वतोभद्रनीचैरुक्तचित्रकाव्यस्य चतुष्पादानां प्रत्यागतार्थैव विद्याष्टकस्य विभिन्नचित्रकाव्यसमन्वित सर्वतोभद्रकल्पद्रुमप्रथमकाव्यम्। ते द्वेऽप्यधस्तादुल्लेखिते। तत्र प्रथम रत्नत्रयस्तुतिशतककाव्यम्। द्वितीय विद्याष्टकस्यप्रथमकाव्यम्।

यथाख्यात चारित्रसस्तुतिकाव्यम्	विद्याष्टकस्य प्रथमकाव्यम्
वाराधाररर। धारावा	वाराधाररर। धारावा
राक्षलाक्ष। क्षलाक्षराः।।	राक्षलाक्ष। क्षलाक्षराः।
धालाः। य। नो नोऽयलाधा	धालाः। य। नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ। नोऽक्षर।	रक्ष नोऽज्ञज्ञ। नोऽक्षर।

विद्याष्टकम् चित्रबोध

संक्षिप्त

"विद्याष्टकं" की रचना आठ श्लोको से की गई है। इन आठो श्लोको को 'अनुष्टुप्' छन्द मे लिखा गया है। अन्त मे दो श्लोक (अनुष्टुप् छन्द) उपसहार के रूप मे पृथक् रूप से रखे गये हैं। इनका चित्र बधो से कोई सम्बन्ध नही है।

कृति की उत्पत्ति

"विद्याष्टक" नामक इस अष्टककृति की उत्पत्ति पूज्य मुनि श्री (नियमसागरजी) द्वारा स्वरचित पूर्वकृति **"रत्नत्रय-स्तुति-शतक"** (अप्रकाशित) के 'यथाख्यात-चारित्र' को प्रतिपादित करने वाले श्लोक क्रमाक एक-सौ-दो (१०२) से हुई है। उस श्लोक को उक्त ग्रथ मे मुनिश्री ने "सर्वतो–भद्र-बध" की सज्ञा दी है, जिसका आशय यह है कि– 'चारो दिशाओ से (ऊपर-नीचे, दाये-बाये से) पढ़नेपर मूल-श्लोक का उच्चारण होता है।'

"रत्नत्रय-स्तुति-शतक" से लिये गये इस श्लोक के प्रत्येक चरण को सीधे क्रम अर्थात् बायी से दायी ओर पढ़ने पर 'यथाख्यात-चारित्र' की स्तुति प्रकट होती है लेकिन इसी श्लोक को विपरीत-क्रम अर्थात् दायी से बायी ओर पढ़ने से **"विद्याष्टक"** के प्रथम श्लोक का निर्माण होकर, उसके अदर से **'आचार्य श्री विद्यासागर महाराज'** की स्तुति प्रस्फुटित होती है। यथा –

बायी से दायीं ओर

वाराधारर । धारावा
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा ।।
धाला । य । नो नोऽयलाधा,
रक्ष नोऽझझ । नो ऽ क्षर ! ॥

रत्नत्रय-स्तुतिशतक का श्लोक क्रं १०२

दायी से बायी ओर

वाराधारर । धारावा
राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा !।
धाला । य । नो नोऽयलाधा,
रक्ष नो ऽ झझ ! नो ऽ क्षर । ॥

'विद्याष्टक' का प्रथम श्लोक

उपरोक्त दोनो ही श्लोक 'सर्वतो-भद्र-बध' से विभूषित है । रचित प्रथम-श्लोक मे केवल आठ वर्णाक्षरो का प्रयोग किया गया है और उन आठो वर्णो से सम्पूर्ण **'विद्याष्टक'** की रचना हुई है । यद्यपि आठ श्लोक होने से कृति को **विद्याष्टक** सज्ञा प्रदान की गई है तथापि अष्ट वर्णों से रचित यह कृति 'अष्टाक्षरी-विद्याष्टक' के नाम से भी जानी जा सकती है ।

उक्त प्रथम श्लोक को 'कल्प-वृक्ष-बध' मे दर्शाया गया है । पाठको की विभिन्न शकाओ/ जिज्ञासाओ का निराकरण करते हुये मुनिश्री ने हेतु दिया है कि ''जिस प्रकार भोग-भूमि मे कल्प वृक्षो से इच्छा मात्र करने पर मनुष्यो को इच्छित वस्तु स्वयमेव प्राप्त हो जाती थी उसी प्रकार इस प्रथम अष्टाक्षरी-श्लोक से समस्त श्लोको की उत्पत्ति स्वयमेव हो गई है ।''

शेष सातो श्लोको की उत्पत्ति प्रथम श्लोक से किस प्रकार होगी ? इसका हल देने के लिये मुनिश्री ने अपनी अद्भुत-चित्र-कला का उपयोग करते हुये, प्रत्येक श्लोक को चित्रालकार के रूप मे प्रस्तुत किया है, एव प्रत्येक श्लोक के लिये विभिन्न बन्धो के आधार पर पृथक्-पृथक् सज्ञा दी है ।

चित्र क्रमाक एक मे सम्पूर्ण **'विद्याष्टक'** के चित्रो को सामूहिक रूप से दर्शाते हुये बताया गया है कि उक्त प्रथम श्लोक मे क्रमश 'भारत-देश-बध', 'कलश-बध', श्रीफल-बध,' 'स्वस्तिक-बध,' 'रेडक्रॉस-बध' 'टेपरिकार्डर-बध', एव 'चतुरक्षर-बध' को स्थापित कर दिया जाये तो बन्धाकार के अनुसार दूसरे से लेकर आठवे श्लोक तक की रचना स्वयमेव होती जाती है । जैसे– प्रथम चित्रक्रमाकानुसार–

एक वर्गाकार आकृति बनाई जाये, उसमे प्रथम-श्लोक के चारो पदो को एक के नीचे एक क्रम से यथावत् लिख दिया जाये । पुन विपरीत पद श्रृखला अर्थात् चार-तीन-दो एक के पद-क्रम से इसी श्लोक को लिखा जाये । यथा –

चित्र क्रमांक एक में स्थित मूल-श्लोक

वा	रा	धा	र	र	धा	रा	वा	
रा	क्ष	ला	क्ष	क्ष	ला	क्ष	रा	— यथावत्-पद-क्रम
धा	ला	य	नो	नो	य	ला	धा	
र	क्ष	नो	ज्ञ	ज्ञ	नो	क्ष	र	
र	क्ष	नो	ज्ञ	ज्ञ	नो	क्ष	र	
धा	ला	य	नो	नो	य	ला	धा	— विपरीत-पद-क्रम
रा	क्ष	ला	क्ष	क्ष	ला	क्ष	रा	
वा	रा	धा	र	र	धा	रा	वा	

सर्वतोभद्र- बंध

अब यह चारो दिशाओ से यथावत् रूप से पढ़ा जा सकता है । तदुपरात इसमे भारत के नक्शे की आकृति बनाते हुये उसकी सीमा पर आने वाले अक्षरो को अलग लिखते जाइये । चित्रालकार के नियमानुसार उक्त अक्षरो को डबल एव गतागत क्रम से पढ़ने पर आपको **'विद्याष्टक'** का द्वितीय-श्लोक प्राप्त हो जायेगा । इसे विस्तृत रूप से मूल चित्र (भारत-देश-बध) के माध्यम से समझने मे सरलता हो सकती है।

इसी प्रकार अन्य चित्रो की आकृति उक्त वर्गाकार के इन चौसठ अक्षरो पर निकालने से क्रमश आगे-आगे के श्लोको की रचना स्वयमेव होती जायेगी ।

चित्र क्रमाक एक मे इन शेष सात श्लोको को पहचानने के लिये पूज्य मुनि श्री ने प्रत्येक श्लोक एव बध को सकेत चिन्हो के माध्यम से दर्शाया है । जैसे– 'भारत-देश-बध' लहरदार रेखा (﹏ ﹏)के अनुसार प्रकट होगा एव इसी के अनुसार द्वितीय-श्लोक भी प्राप्त हो जायेगा । इसी प्रकार प्रत्येक श्लोक एव बध के लिये नियुक्त किये सकेत-चिन्हो से अन्य श्लोको को जानना चाहिये ।

पाठको की सुविधा को ध्यान मे रखकर प्रथम-चित्र मे समाहित अन्य चित्रो की सक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत कर रहा हूँ । पढ़ने की विधि का विस्तार आगे चित्र के साथ है ।

'सर्वतो-भद्र-बन्ध' को पढ़ने का क्रम–

ऊपर दर्शायी गई 'सर्वतोभद्रबन्ध' की प्रक्रिया को देखे ।

'भारत-देश-बन्ध' को पढ़ने का क्रम–

ऊपर दर्शाये हुए चित्र क्रमाक एक मे यदि साकेतिक लहरदार (ᨓ ᨓ) रेखा से भारत के नक्शे के आकार के अनुसार घूमते हुए ऊपर से नीचे एव पुन ऊपर की ओर बढ़ने पर सीमा-स्थित अक्षरो को सग्रहित करने से द्वितीय-श्लोक अर्थात्-**'रक्ष यक्षक्षराऽऽधार ! रक्ष नो ! नो य ! नोऽक्षर । रलाऽयक्ष ! रधालालाऽऽधार ! धाररधा ! रधा ॥ २॥"** प्राप्त होगा, साथ ही **'भारत-देश-बध'** भी प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार 'सर्वतो-भद्र-बध' मे से **'भारत-देश-बध'** निकला ।

'कलश-बंध' को पढ़ने का क्रम–

ऊपर दर्शाये गये प्रथम चित्र मे 'बाण-चिन्ह-रेखा' (↔↔) के आधार पर कलश के आकार के अनुसार घूमते हुए उसकी सीमा पर आने वाले अक्षरो को पूर्ववत् सग्रहित करने पर तृतीय श्लोक अर्थात् "**नो ! नो ऽ क्षधा ऽ क्षला ऽऽ धार ! नो ! य ! ला ऽ क्षक्षलाय नो । नोनोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! नो ! यलाऽ क्षक्षलाय नो ॥ ३॥** " प्राप्त होगा साथ ही **'कलश-बध'** भी प्राप्त हो जायेगा । इस प्रकार 'सर्वतो-भद्र-बध' मे से तीसरा **'कलश बंध'** भी प्राप्त होगा ।

"श्रीफल-बन्ध" को पढ़ने का क्रम–

ऊपर दर्शाये गये प्रथम चित्र मे यदि एक जजीरदार(°°°°°°°°°) रेखा को श्रीफल के आकार से घुमाकर, उसकी सीमा पर आने वाले अक्षरो को क्रम से सग्रहित किया जाये तो चतुर्थ श्लोक अर्थात् "**रला ऽ लाक्ष ! क्षनोनोऽक्ष ! रक्ष नो ऽ नो ऽ क्षलायनो । रला ऽ लाक्ष ! क्षनो नोऽक्ष ! रक्ष नो ! नोऽक्षला ! यनो ॥४॥**" प्राप्त होगा एव **'श्रीफल-**

बध' भी प्राप्त हो जायेगा । इस प्रकार 'सर्वतो-भद्र-बध,' चौथे, **'श्रीफल-बध'** को भी प्रदान करेगा ।

स्वस्तिक-बन्ध को पढ़ने का क्रम–

इसी प्रकार 'सर्वतो-भद्र-बध' मे यदि एक 'गुणक-चिन्ह-रेखा' (xxx) के माध्यम से स्वस्तिक के समान घुमावदार आकृति बनाई जाए तो उसमे से 'स्वस्तिक-बध' और उसकी सीमा के अक्षरो का सग्रह बनाने पर– **'नो । नोऽज्ञज्ञज्ञ । नोऽयक्ष । नोऽज्ञनो** ऽ । **य यनोऽ । क्षय** । **यक्षनोऽज्ञज्ञनो नो नो, क्षयनोऽज्ञ । ज्ञनो** ऽ । **क्षय** ॥ ५ ॥'' प्राप्त होगा । इस **'स्वस्तिक-बध'** को भी उसी प्रथम श्लोक से ग्रहण करेगे ।

रेडक्रॉस-बध को पढ़ने का क्रम–

प्रथम चित्र मे प्रदर्शित 'भग्न-रेखा-चिन्ह' (-----) को आधार रखकर यदि रेडक्रॉस के चिन्ह के अनुसार अक्षरो को घूमते हुए पढ़ेगे तो 'रेडक्रॉस-बध' के साथ **''रलालाररलालार । रक्ष नो ज्ञज्ञ । नो** ऽ **क्षर । रलालाररलालाररक्षनो ज्ञ । ज्ञनो** ऽ ! **क्षर** । ॥६॥' श्लोक भी प्राप्त होगा । इस प्रकार इसी 'सर्वतो-भद्र-बध' से छठवाँ अर्थात् **'रेडक्रॉस-बध'** भी प्राप्त हो जायेगा ।

टेपरिकॉर्डर-बन्ध को पढ़ने का क्रम–

सातवे बन्ध के रूप मे मुनिश्री ने **'टेपरिकॉर्डर-बन्ध'** को प्रदर्शित किया है । इसमे आधुनिक शैली को प्रदर्शित किया गया है । चित्र की उत्तर दिशा मे स्थित इस बध को 'बिन्दु-रेखा-चिन्ह' (   ) के द्वारा प्रदर्शित किया गया है । इस सकेत के आधार से 'टेपरिकार्डर-बन्ध' प्राप्त होगा । टेपरिकार्डर मे जिस प्रकार कैसेट को 'बेकवर्ड' एव 'फॉरवर्ड' किया जाता है, उसी क्रिया का स्मरण करके 'बेकवर्ड' करने पर श्लोक के प्रथम दो चरण एव 'फॉरवर्ड' करने पर अन्तिम दो चरणो की रचना होगी और इसी प्रकार प्रथम-चित्र से यह बध भी प्राप्त हो जायेगा । श्लोक निम्न प्रकार है– **''यलाधार । रधाऽऽलाय । नोऽक्षलाय । यनोऽक्षला । यलाऽऽधार । रधालायनोऽक्षलायय । नोऽक्षला** ॥७॥''

चतुरक्षर-बन्ध को पढ़ने का क्रम–

इसी प्रथम चित्र के बायी ओर के ऊपरी कोने मे **'चतुरक्षर-बध'** को बिन्दु-रेखा-चिन्ह ( ) से प्रदर्शित किया है । इस प्रकार बध तो स्पष्ट रूप से चित्रित है । श्लोक प्राप्त करने के लिए उन चारो अक्षरो को आधार बनाकर, उन्ही मे विभिन्न प्रकार से घूमकर विधिवत् अक्षरो को सग्रहित करने पर उसी 'सर्वतो-भद्र-बध' मे से आठवाँ श्लोक भी प्राप्त हो जायेगा । श्लोक निम्न प्रकार है– **"रावाराक्षक्षरावा रा ऽराक्षराक्षक्षराक्षरा· । वा रारा क्षक्षरा रावा वाऽक्षवाः क्षक्ष । वाक्षवा ॥ ८ ॥"**

नोट –सभी चित्रो को पढ़ने की विस्तृत विधी को कृति मे आगे चित्रो के साथ दर्शाया गया है । जिससे इन श्लोको एव चित्रो को आसानी से समझा जा सकता है। प्रत्येक बध के श्लोको को निम्न चित्र क्रमाको की विधि मे देखे–

१	**सर्वतो-भद्र-बध** (आठो चित्रो सहित)	चित्र क्रमाक **एक**	श्लोक क्रमाक **एक**
२	**भारत देश-बध**	चित्र क्रमाक **चार**	श्लोक क्रमाक **दो**
३	**कलश-बध**	चित्र क्रमाक **पाच**	श्लोक क्रमाक **तीन**
४	**श्रीफल-बंध**	चित्र क्रमाक **छह**	श्लोक क्रमाक **चार**
५	**स्वस्तिक-बध**	चित्र क्रमाक **सात**	श्लोक क्रमाक **पाँच**
६.	**रेडक्रॉस-बध**	चित्र क्रमाक **आठ**	श्लोक क्रमाक **छह**
७	**टेपरिकार्डर-बध**	चित्र क्रमाक **सोलह**	श्लोक क्रमाक **सात**
८	**चतुरक्षर-बध**	चित्र क्रमाक **सत्रह**	श्लोक क्रमाक **आठ**

शेष जो अन्य चित्र कृति मे विद्यमान है (चित्र क्र २,३,९,१०,११,१२,१३,१४,१५) इन सभी को पढ़ने की विधि चित्रो के साथ विस्तृत रूप से निहित है । सक्षिप्त जानकारी यहाँ प्रस्तुत है–

"अन्य चित्रों की संक्षिप्त जानकारी"-

उपरोक्त न के चित्रो मे ये ही आठ श्लोक वर्णित है अर्थात् पृथक् श्लोको की रचना न होकर उन्ही श्लोको के द्वारा भावो के परिवर्तित स्वरूप को विभिन्न चित्रो मे ढाला गया है । श्लोक न एक, छह एव आठ को ही एक से अधिक चित्रो से प्रदर्शित किया गया है । इन चित्रो मे आचार्यश्री के जन्म दिनाँक आदि को दर्शाया गया है ।

'सर्वतो-भद्र कल्पद्रुम-बंध' मे निहित भाव-

चित्र क्रमाक दो अर्थात् 'सर्वतो-भद्र-कल्पद्रुम-बध' प्रथम-चित्र के स्वरूप को ही धारण कर रहा है। चित्र मे प्रदर्शित मुनिराज श्लोक रूपी कल्पवृक्ष से शेष सात श्लोको की पूर्णता हेतु याचना करते हुए से प्रतीत हो रहे है, तदनुसार ही एक शिष्य ने अपने गुरु की अन्तर भावो से स्तुति, एक स्वरचित श्लोक के माध्यम से की तो उस अतिशय युक्त भक्ति के प्रभाव से वह श्लोक भी कल्प-वृक्ष बन गया और एक के बाद एक कल्पित भक्ति के आकारो एव श्लोको को सहज रूप से प्रदान करने लगा । लेकिन अष्टक पूर्ण होते ही शिष्य ने सयम को प्रदर्शित करते हुए इच्छाओ पर अकुश लगा दिया और आन्तरिक मनोभावो से गुरु चरणो की भक्ति मे निहित शक्ति का जो अनुभव किया वही **'विद्याष्टक'** के रूप मे प्रस्तुत हो गया । इन्ही भावो को उक्त चित्र मे प्रदर्शित किया गया है ।

'मृत्यु-कूप-बंध को पढ़ने की विधि'-

तृतीय-चित्र को 'मृत्यु-कूप -बध' की सज्ञा दी गई है । इसकी कल्पना सर्कस मे दिखाये जाने वाले 'मौत का कुँआ' खेल से की गई है । विशेषता मात्र यह है कि इस नारगी के सदृश आकार मे सामने के भाग मे दिखाई देने वाले मोटे अक्षरो मे **'विद्याष्टक'** का प्रथम श्लोक विद्यमान है और पृष्ठ भाग मे दिखाई देने वाले छोटे अक्षरो मे 'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक' श्लोक विद्यमान है । सर्कस के उस दृश्य का स्मरण करते हुए इस बन्ध के सामने के एव पृष्ठ भाग को युगपत रूप से पढ़ने पर **'विद्याष्टक'** का प्रथम, तथा

'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक' श्लोक का क्रमश एक-एक पद, युगपत् रूप से ही प्राप्त होता जायेगा जो कि सम्पूर्ण रचना का मूलाधार है ।

सिद्धचक्र-बंध को पढ़ने की विधि–

चित्र क्रमाक नौ मे **'सिद्धचक्र-बध'** को दर्शाया गया है । 'रेडक्रॉस-बध' मे रखे गये छठवे श्लोक को आधार मानकर इस चित्र की रचना की गई है । इस श्लोक के प्रत्येक चरण के प्रारम्भ एव अन्त मे **'र'** अक्षर आता है । अत चित्र के मध्य मे स्थित **'र'** से प्रत्येक चरण प्रारम्भ करके अत भी उसी **'र'** पर करना पड़ेगा । ऐसा करने पर त्रिकोण आकार से गमन होगा । दो किरणो एव उनके मध्य मडल-सीमा पर स्थित, अक्षरो के सग्रह से प्रत्येक-प्रत्येक चरण की प्राप्ति होगी । **'र'** को केन्द्र तथा सम्पूर्ण चित्र को वृत्त मानकर अक्षरो वाले त्रिकोण मे भ्रमण करने पर, प्रत्येक त्रिकोण से एक-एक पद की प्राप्ति होगी इसे दायी एव बायी दोनो दिशाओ से पढ़ा जा सकता है ।

समकोण बन्ध को पढ़ने की विधि–

समकोण के माध्यम से अग्रेजी भाषा के अक्षर 'एल्' (L) मे छठवे श्लोक को ही पाच अक्षरो मे समाहित किया गया है । 'र' से प्रारम्भ करके आड़े क्रम से पढ़ने पर प्रथम एव तृतीय चरण तथा खड़े क्रम से पढ़ने पर द्वितीय एव चतुर्थ चरण प्राप्त होता है।

मुरज बन्ध को पढ़ने की विधि–

चित्र क्रमाक दस मे सर्वप्रथम, श्लोक के चारो चरणो को क्रम से लिखा गया है। 'मुरज-बध' की विशेष प्रक्रिया को दर्शाने के लिए प्रथम चरण के अक्षरो का सम्बध तृतीय चरण से और द्वितीय चरण के अक्षरो का सम्बन्ध चतुर्थ चरण से किया गया है । प्रथम और द्वितीय चरण पढ़ने के लिए 'बिन्दु-रेखा-चिन्ह' तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण पढ़ने के लिए 'बाण-रेखा-चिन्ह' को दर्शाया गया है । विस्तृत जानकारी आगे चित्र के साथ प्रस्तुत की गई है । इसको गत प्रत्यागत क्रम से भी पढ़ा जा सकता है ।

'रजत संयमोत्सव-वर्षांक-बन्ध' पढ़ने की विधि–

प्रथम चित्र क्रमाकानुसार वर्गाकार कृति मे पूर्ववत् प्रथम-श्लोक को चौसठ अक्षरो के रूप मे लिखकर उसमे 'पच्चीसवे' अक का चित्र निकाला गया है । उस चित्र के अदर आने वाले अक्षरो को क्रम से पढ़ने पर छठवॉ श्लोक प्राप्त होता है ।

जन्म-दिनॉंक-बन्ध को पढ़ने की विधि–

इस श्लोक मे कुछ विशेषता प्रदर्शित करते हुए **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक और **'विद्याष्टक'** के प्रथमं श्लोक को दो विभिन्न वर्गाकार आकृति मे चौसठ-चौसठ अक्षरो के रूप मे रखकर पुन उन दोनो वर्गाकार आकृतियो को आपस मे जोड़ दिया गया है । उस वर्गाकार आकृति के भीतर आचार्यश्री के जन्म दिनाक **"(10 OCT 1946 जन्म)"** को अक चित्र के रूप मे दर्शाया गया है । **'10 OCT जन्म'** इन अक एव अक्षर चित्रो को उनके आकारो से विस्तृत विधि के अनुसार पढ़ने पर कृति का आठवाँ श्लोक पॉच बार और **"1946"** को विधिवत् पढ़ने पर छठवॉ श्लोक चार बार प्राप्त होगा ।

"दीक्षा-दिनांक-बन्ध" को पढ़ने की विधि–

इस चित्र मे आचार्यश्री के 'दीक्षा-दिनाक' के चित्र को दर्शाते हुए पूर्व-चित्र के अनुसार ही प्रथम-श्लोक से सहित दो वर्गो को एक बनाया गया है । **"30 JUN दीक्षा"** इन अक एव अक्षर चित्रो को उसके आकारो से विस्तृत विधि के अनुसार पढ़ने पर आठवाँ श्लोक पाँच बार, और **"1968"** इस अक चित्र को विधिवत् पढ़ने पर छठवाँ श्लोक चार बार प्राप्त होगा ।

"पद-प्राप्ति-दिनांक-बन्ध" को पढ़ने की विधि–

इस चित्र मे भी पूर्ववत प्रक्रिया को अपनाते हुए आचार्यश्री के 'आचार्य-पद' के दिनाक को चित्रित किया गया है । **"22 NOV पद'** इन अक एव अक्षर चित्रो को उनके

आकार के अनुसार विधिवत् पढ़ने पर आठवाँ श्लोक, पाँच बार, तथा **"1972"** इस अक चित्र को विधिवत् पढ़ने पर छठवाँ श्लोक, चार बार प्राप्त होगा।

॥ इस प्रकार चित्रो को पढ़ने की संक्षिप्त विधि समाप्त हुई ॥

1
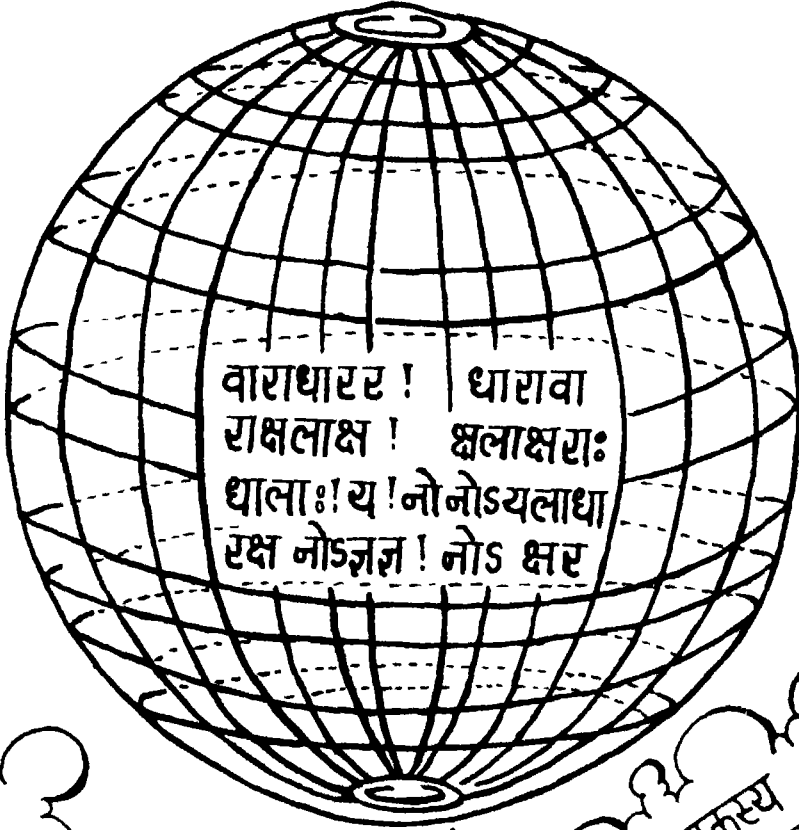
वाराधारर ! धारावा
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः
धालाः ! य ! नोनोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽ क्षर

विद्याष्टकस्य
प्रथमकाव्यम्_

*अथाधुनेह **'रत्नत्रयस्तुतिशतकस्य'** तदेव "यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक–' पूर्वोक्तकाव्य यत्सर्वतोभद्रसञ्ज्ञक तत्काव्य प्रतिलोमक्रमेणा ऽऽलिख्य पश्चाल्लिखितनूतनाभिधेयेन तत्काव्येन विद्याष्टकस्य प्रथमाख्येन वा तेन सर्वतोभद्रसञ्ज्ञकेनाऽथवा समस्तविद्याष्टकसमाहितेन वा पूर्वोत्तरकाव्यद्वयस्वरूपमृत्युकूपबन्धेन चैतत्काव्येन विश्वमङ्गलकारिण वात्सल्यधुराधारिण सर्वोत्कृष्टसयमगुणप्रधानञ्चैन श्रीगुरुवर विद्यासागराचार्यदेव तेनाऽऽदौ स्तोतुमाह–*

वाराधारर ! धारावाराक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ! ।
धाला ! य ! नो नोऽयलाधा रक्ष नोऽङ्गङ्ग ! नोऽक्षर ! ॥१॥

–अन्वयार्थः -

वाराधारर ! धारावाराक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा ! धाला ! य ! (त्व) अयलाधा नो (असि) । अङ्गङ्ग ! अक्षर ! (त्व) न (अस्माक) न. (पूज्य) (असि) । (अत) न (अस्मान्) रक्ष ॥१॥

–संस्कृत-टीका–

वाराधारेति–

हे वाराधारर ! (समयाधारदात !) वार[१] समय इत्यर्थ । आधार[२] आश्रय इत्यर्थ । र दाता दायक इत्यर्थ । अर्थात् समयस्य सम्प्रति पञ्चम– कालस्याऽस्माक विश्वजीवानामाधार समयाधारस्त निजीयस्य समयाधारत्व दीयते विश्व प्रति वितीर्यते वाऽनेनेति समयाधारर समयाधारदानेत्यर्थ । अर्थात् स्वकीय– समयाधारत्वगुणेन विशोभयन् (अय श्रीगुरुर्विद्यासागर) समस्त विश्व प्रति वितीर्यतेऽस्य गुणस्य महोपकारो येनाऽसौ समया-धाररोऽथवा वाराधारर इत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे समयाधारर ! अथवा हे वाराधारर ! इत्यर्थ ।

–सन्दर्भाः

(१) 'वार सूर्यादि दिवसे द्वारेऽप्यवसरे हरे" इति च **पद्मचन्द्रकोष** (प गणेशदत्तशास्त्रिविरचित)
(१) "वार समयसमुदायौ" इति च **संस्कृत-हिन्दी-कोष** (वामन शिवराम आप्टे विरचित)
(२) "स्यादाधारोऽधिकरणे" इति च **विश्वलोचनकोश** (श्री श्रीधरसेनाचार्यविरचित) (अथवा " "आधारस्त्वास्पदे" इति च (प च)

हे धारावाराक्षलाक्ष ! (हि धर्माङ्गीकारकसार्वमङ्गलपरिपूर्णवात्सल्यधुराधारकात्मन् !) धो धर्म सत्यधर्म इत्यर्थ । आरोऽङ्गीकारक । आव सार्वमाङ्गलिक । आर [७] परिपूर्णवात्सल्य । अक्षो[८] धुरा ध्रवो वेत्यर्थ । ला धारक । अक्ष [१०] स्वभाव शीलो वा । किमुक्तमेतत् । सत्यधर्माङ्गीकारकाणा भव्यजीवाना कृते सार्वमङ्गलपरिपूर्णवात्सल्यधुराधारणमेव यस्य शील स्वभाव आत्मा वाऽ सौ धर्माङ्गीकारक– सार्वमङ्गलपरिपूर्णवात्सल्यधुराधारकात्मेति । अथवा धारावाराक्षलाक्ष इत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे धर्माङ्गीकारकसार्वमङ्गलपरिपूर्णवात्सल्यधुराधारकात्मन् ! अथवा हे धारावाराक्षलाक्ष ! इत्यर्थ ।

हे क्षलाक्षरा ! (हि प्रलयान्तकारिन् !) क्षल [११] प्रलय । अक्षो[१२]ऽन्त । रा विधायक कारको वेत्यर्थ । क्षलस्याऽक्षरा क्षलाक्षरा अर्थात् प्रलयान्तविधायीत्यर्थ । अथवा प्रलयान्तकारी प्रलयान्तको वेत्यर्थ । अर्थात् तृतीयमहासमरविभिषिकया मानवकुलमात्रस्य प्रलयसभावनाया अस्य विज्ञानयुगस्य सकटग्रस्तवर्तमानकालस्य वाऽध्यात्मविद्यादानेनाऽ क्षरा अर्थात् योऽसौ प्रलयकालनिग्रहसामर्थ्यसक्षमोऽन्तकर स प्रलयान्तकारी अथवा प्रलयान्तकारको वेत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे प्रलयान्तकारिन् ! हे प्रलयकालनिग्रहगुणविधायकात्मन् ! हे क्षलाक्षरा ! वेत्यर्थ ।

हे धाला ! (हि साक्षाज्जिनस्वरूप ! अथवा हे पुण्यमूर्त्ते !) ध [१४] शिव जिनो वेत्यर्थ । आला विधायक सधारकात्मा वा । अर्थात् परिशुद्धरत्नत्रयस्वरूपनिजगुणैर्यो ऽसौ साक्षाच्छिवत्व जिनत्वमेव लाति राति दधाति स धाला । अथवा ध धन पुण्यधन आला आदधाति लाति समाराति वाऽसाविति धाला अर्थाज्जिनसन्निभ पुण्य सम्प्रति यस्य प्रतिभाति बिलसति वासाविति धाला अर्थात् साक्षात्पुण्यमूर्त्तिरित्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे धाला ! अथवा हे साक्षाज्जिनस्वरूपधर ! हे पुण्यधर ! पुण्यमूर्त्ते इत्यर्थ ।

–सन्दर्भाः–

७ "रोऽग्नौगतावुष्णताया वात्सल्ये प्रेम्णि वा मत । इति च (स हि आ)
८ "अक्षो धूरात्मनोर्ज्ञाने तौलदण्डेऽपि पन्नगे । इति च (स हि आ)
१० "अक्ष शीलात्मनोरपि । इति च (स हि आ)
११ "क्षलस्तु प्रलयेऽपि स्यात् । इति चार्षप्रयुक्त ।
१२ "अक्षोऽन्तेऽप्यार्ष ।
१४ धो धर्मे ब्रह्मणि-(जिने-शिवे) । इति च (वि लो)

हे य ! (हि सयममूर्त्ते !) य[16] अर्थात् सयम सकलसयम इत्यात्रऽभिप्राय । अर्थादेष सद्गुरू सप्रति सर्वोत्कृष्टसकलसयमविधायकत्वात्सयममूर्त्तिस्तत्सम्बुद्धौ हे य ! अथवा हे सर्वोत्कृष्टसकलसयमविधायकात्मन् ! इत्यर्थ ।

(त्व) अयलाधा नो (असि)– अयो[17]ऽसयम । ल[18] इन्द्र ईश्वरोऽधिपतिर्वा । आधा धारक परिधाता परिपोषको वार्थ । किमुक्तमेतत् । अयस्य असयमस्य ल इन्द्रोऽयलोऽर्थादसयमस्वामी तस्याधिपतिर्मोह इत्यर्थ । तस्य मोहस्य अयलस्य वा आधा आविधाता परिधाता परिपोषको वा त्व नो असि अर्थात्त्व नासीत्यर्थ । अर्थात्किमुक्तमेतत् । अर्थाद्धे श्रीगुरूवर ! त्व समस्ताऽसयमभावविरहितत्वान्निर्ममोऽसि ।

हे अज्ञज्ञ ! अक्षर ! (हि बुद्धिविरहितजनविज्ञायक ! अनाश /सुदृढ !) अज्ञज्ञो[20] बुद्धिविरहितमतिजनो जडजनो वार्थ । ज्ञो ज्ञाता । अर्थाद्धे गुरो ! अज्ञैर्बुद्धिविरहितमतिजनैर्जडजनै र्वा तैरुपसर्गादिष्वागतेषु सत्सु तस्मिन्काले तेषु विजयी भवस्त्व ज्ञत्वभावेनाऽर्थात्केवलज्ञातृदृष्ट्रत्वभावेन सतिष्ठसेऽतस्त्वमज्ञज्ञोऽस्यर्थात्तेषा जडाना केवलो ज्ञायकोऽ सीत्यर्थ । क्षर[21] च्युतोऽक्षरोऽच्युतोऽ नाश सुदृढो वार्थ । अतोऽये हे गुरो ! त्व ज्ञातृदृष्ट्रत्वभावत्वेनाऽच्युतत्वादनाशोऽसि । एतत्सम्बुद्धौ हे अज्ञज्ञ ! हे अक्षर ! हे अज्ञानिना ज्ञात ! हे अनाश/सुदृढ ! वेत्यर्थ ।

(त्वं) न (अस्माकं) न पूज्य· (असि) (हे गुरो ! त्व अस्माक पूज्य आराध्योऽसि) न इति सर्वनामपद । न[22] उपास्य पूज्य आराध्यो वार्थ । असि सन्तिष्ठस इत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । हे गुरो विद्यावारिधे ! इत्यध्याहार्य्य । अत कारणादिति च पुनरध्याहार्य्य । त्वमस्माकमर्थादस्माक सर्वेषा जनानामुपास्य पूज्य आराध्यो वा सतिष्ठसे वेत्यर्थ ।

(अत) न (अस्मान्) रक्ष (अतोऽस्मान् ! जनानारक्ष) अत कारणादर्थात्पूज्यत्वात्त्वमिति यावत् । न अस्मान्, अस्मान्सर्वभव्यजनानिति । रक्ष आरक्ष पाहि वेत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । अतस्त्वमस्मान्सर्वभव्यजनानारक्ष पाहि वेत्यर्थ ॥१॥

सन्दर्भाः–

१६ योऽनिले सयमे गतौ । इति च (प च)
१७ न य अय असयम इत्यर्थ । यस्तु यज्ञेऽनिले चापि गतौ यशसि सयमे । इति च (प च)
१८ ल इन्द्रे ला तु दाने स्यात् । इति च (वि लो)
२० अज्ञ शठे ज्ञानशून्येऽपि ज्ञो ज्ञायक ज्ञानिनि (प च)
२१ अक्षरस्तु स्थिरेऽनाशे दृढे विष्णौ शिवेऽपि च । इति (स हि आ)
२२ नकारो जिनपूज्ययो । इति च (वि लो)

—हिन्दी-टीका—

ओ गुरुवर ! आप पचम-काल[८] के समस्त भव्य जीवो के परम हितकारी हैं अत वर्तमान समय में आप सबके समयाधार हैं अर्थात् इस समय मे हम लोगो के लिए आप ही आधार हैं, कल्याण के परम धाम हैं । अथवा सकटग्रस्त, विषम-विश्व के जीवो के लिए आप इस समय के आधार है । अत आप हम सब की रक्षा करो । ओ गुरुवर ! आप इस लोक मे मङ्गलमय-सर्वोत्कृष्ट वात्सल्य[९] धुरा को धारण करने वाले महात्मा हैं इसलिए सत्य धर्म के स्वरूप को जानकर उसे स्वीकार करने वाले भव्य जीवो के प्रति आप स्वभावत प्रेम के भाजन बन जाते है । अत आपका वात्सल्य गुण अत्यन्त ही मङ्गल एव सर्वोत्कृष्ट है । हे वात्सल्यधाता ! तुम शीघ्र ही हम सबकी रक्षा करो । हे विश्व प्रेम के निधान ! आप वास्तव मे विनाशो का अन्त करने वाले हैं तृतीय महा-समर के कारण सभावित होने वाले अणुसमर विनाश को रोकने मे आप समर्थ है । अर्थात् आप की आध्यात्मिक विद्या उस सकट से बचाने के लिए नैमित्तिक-सामर्थ्य को धारण कर रही है, अत इस समय मे जगत के सकट त्राता आप ही है । हे योगीश्वर[१०] ! आप इस विपरीत-ज्ञान-विज्ञान युग को समस्त सकटो से बचाने के लिए और उसे वास्तविक सुख प्रदान करने के लिए एक अवतरित महान आत्मा है अर्थात् आप जैसे महायोगीश्वर ही इन भयानक विनाशो से विश्व को बचा सकते हैं । हे साक्षाज्जिन स्वरूप[१२] ! आप साक्षाज्जिन स्वरूप ही हैं क्योंकि आपकी शरीरिक-सपत्ति जिन[११] जैसी है अर्थात् आपको देखने से जिनको देखने जैसा आभास होता है, और आप परिशुद्ध रत्नत्रयकी[१३] साक्षात् मूर्ति है । हे पुण्यमूर्त्ते ! आप पुण्य की भी साक्षात् मूर्ति है क्योंकि आप जैसा पुण्य अन्यत्र देखा नही जाता । हे सयममूर्त्ते ! आप सप्रति पचम काल मे भी उत्कृष्ट-सकल-सयम[१४] को धारण करने वाले यतीश्वर[१५] हैं अत आप सयम की भी साक्षात् मूर्ति है। हे गुरुवर ! आप अत्यधिक निर्मम[१६] है क्योंकि आप सदा ही उन समस्त असयमभावो[१७] से रहित है जो ममत्व भावो को अधिक बढ़ाने वाले हैं । हे प्रभो ! आप अज्ञानीजनो के केवल ज्ञायक ही हैं क्योंकि उनके द्वारा आने वाले या होने वाले उपसर्गादियो[१८] मे आप सदा ही विजयी रहते है । आपके कदम सदा अडिग रहते हैं इसलिए आप अच्युत है । हे सद्गुरो ! आप सर्व-जन-आराध्य[१९] हैं अत हम सबके आप ही रक्षक है ॥१॥

❁ ❁

(१)
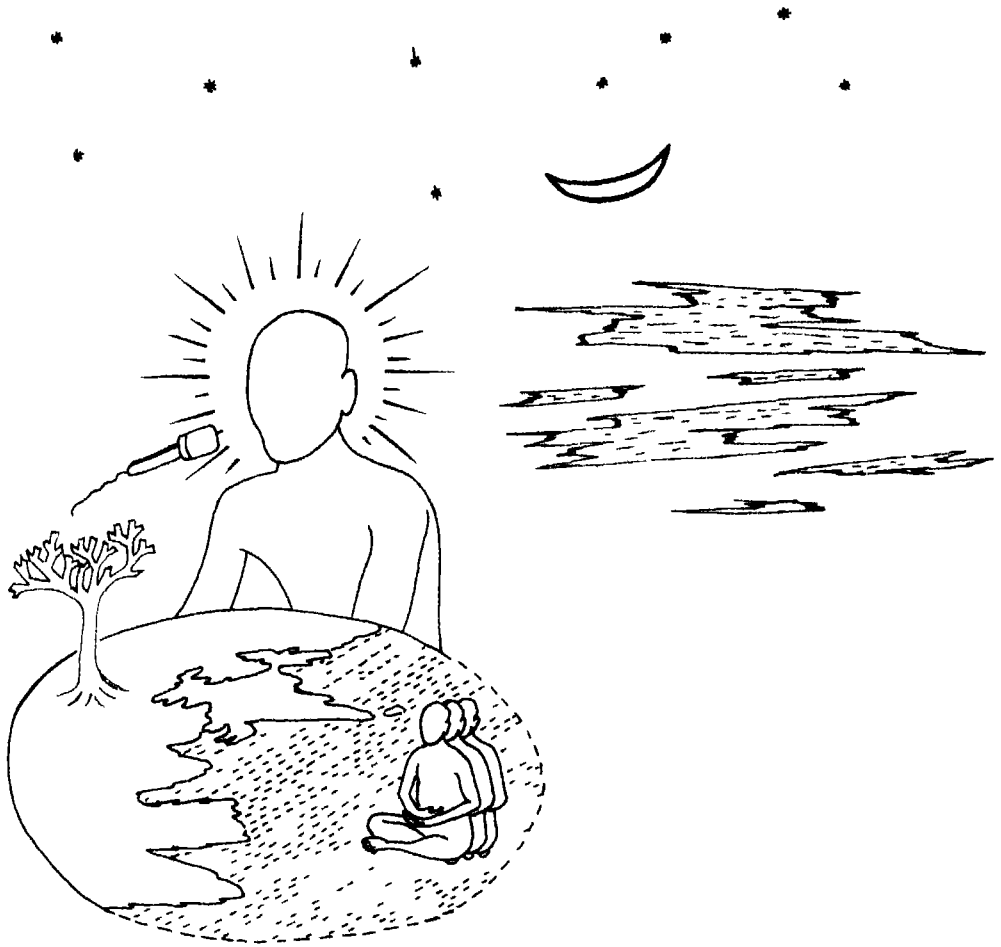
गुरुवर विद्यासागरजी हो, पंचम युग में हितकारी।
संकट में जो विषम विश्व के, जीवों के मङ्गलकारी॥
प्रेम सुधा मकरन्द लुटाते, सबके मन को हरते हो।
आज समय में समयधार बन, समय-सार को वरते हो॥

(२)

धुराधार वात्सल्यमयी तुम, हम सबका परित्राण करो
महासमर को क्षण मे रोको, सत्य धर्म जय नाद करो।।
उपदेशों से गुरुवर तेरे, विश्व नाश से बच सकता।
जिनवर जैसी सूरत लखकर, युग प्रकाश में आ सकता।।

(३)

पुण्यवान वसुधा पर तुम हो, तुम बिन पुण्य कहाँ रहता।
संयमधारी पंचम युग में, तुम सा यतिवर कब मिलता॥
धीर वीर उपसर्ग विजेता, ज्ञानी हो तुम ज्ञायक हो।
अडिग अकम्प अचूक अच्युत हो, हम सबके भी तारकहो॥
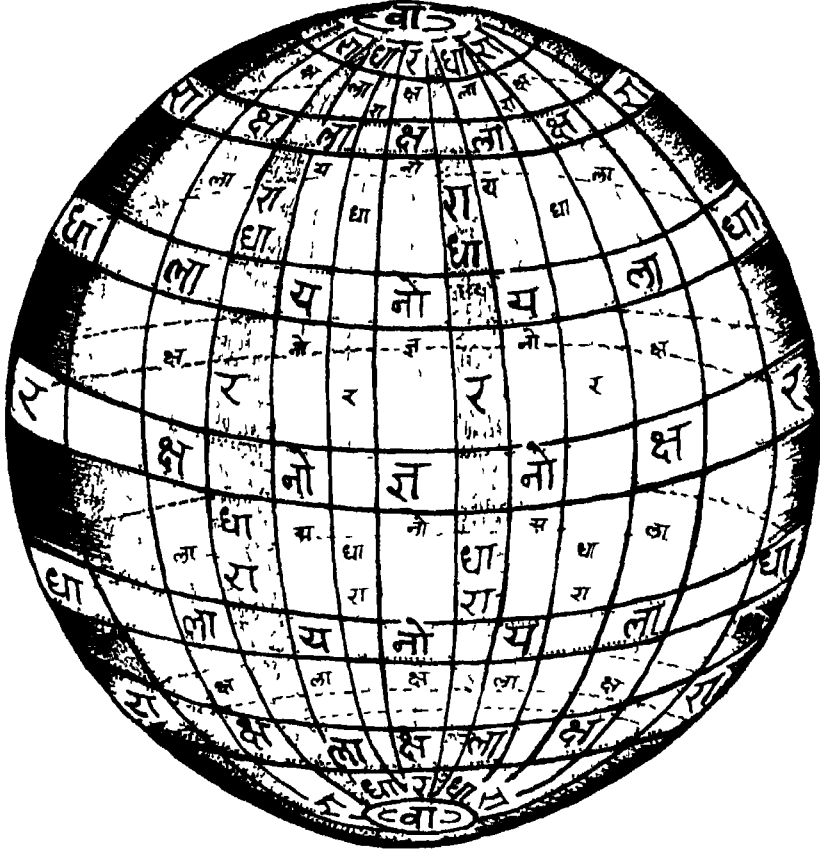
चित्रक्रमाङ्क 3

मृत्युकूपबन्धो विद्याष्टकम्

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रबन्ध-प्रथमकाव्यस्य जन्मदातृ रत्नत्रयस्तुतिशतकस्य सर्वतोभद्रबन्धकाव्यम् तस्य बन्धस्य प्रतिलोममेव विद्याष्टकस्य प्रथमकाव्यम् ते द्वे ऽप्यपारे चित्रबन्धे बन्धिते। ताभ्या द्वाभ्यामेव विनिर्मितोऽयं सर्वतोभद्रमृत्युकूपबन्धः। अस्य बन्धस्य पृष्ठभागे यथाख्यात-चारित्रार्थप्रतिपादकसर्वतोभद्रबन्धकाव्यं तद्विरुद्धाऽभिमुखभागे विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्र-बन्धकाव्यमथवा विद्याष्टकस्य प्रथमकाव्यमुभयतो विकल्पितेऽपि मृत्युकूपाकारो जायते। एव विधेनाऽपि पठितुं शक्यते सर्वतोऽयमित्यप्यत्र विज्ञेयः।

यथाख्यातचारित्रप्रतिपादककाव्यम्	अस्य प्रतिलोमम्	विद्याष्टकस्य प्रथमकाव्यम्
वाराधारर । धारावा- ।		वाराधारर । धारावा - ।
राक्षलाक्ष । क्षलाक्षराः ॥		राक्षलाक्ष । क्षलाक्षराः॥
धालाः । य । नो नोऽयलाधा ।		धालाः । य । नो नोऽयलाधा ।
रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।॥		रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर । 1

यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक एक सौ दूसरा एव
'विद्याष्टक' का प्रथम श्लोक
(चित्रक्रमाक-३) को

पढ़ने की विधि

परिचय–

चित्र क्रमाक तीन को **'मृत्यु-कूप-बन्ध'** की सज्ञा देते हुये इसके अतर्गत 'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक' **'रत्नत्रय-स्तुति-शतक'** का एक सौ दो (१०२) नबरका श्लोक एव **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक को सम्मिलित-रूप से रखा गया है। इस चित्र को गोले के समान आकार प्रदान किया गया है। अत सामने वाले भाग मे **'विद्याष्टक'** का प्रथम-श्लोक विद्यमान है तो पृष्ठ भाग मे 'यथाख्यात-चारित्र प्रतिपादक' श्लोक स्थित है। इन्हे क्रमश मोटे और छोटे अक्षरो से प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र की कल्पना सर्कस मे दिखाये जाने वाले **'मौत का कुँआ'** नामक खेल से की गई है। उक्त खेल मे जिस प्रकार 'मोटर-साईकिल-चालक' लकड़ी से निर्मित कृत्रिम कुए मे अपनी कला का जौहर दिखाते हुए आड़ा और खड़ा घूमता है उसी प्रकार इस चित्र मे भी आड़े और खड़े क्रम से गमन करने पर **''वाराधारर धारावा'** इस प्रकार उक्त श्लोक का एक-एक चरण क्रम से प्राप्त होता जायेगा। चित्रित रेखाओ को अक्षान्तर एव देशान्तर रेखाये मानकर इसे उनकी गति के अनुसार भी पढ़ा जा सकता है। चित्र की विधि को सरलता से समझने के लिए चित्र की चारो दिशाओ को क्रमश उत्तरी गोलार्ध, पश्चिमि गोलार्ध, दक्षिणी गोलार्ध और पूर्वी गोलार्ध से नामाकित किया गया है। इन नामो का उल्लेख चित्र पढ़ने की विधि के अन्तर्गत किया गया है। यह गोल होने के कारण इसे 'नारगी' की सज्ञा भी दी जा सकती है।

चित्र पढ़ने की विधि प्रदर्शित चित्र मे दो श्लोक निहित है। दोनो श्लोको को सामने के भाग एव पृष्ठ भाग से एक साथ या अलग-अलग पढ़ा जा सकता है। चित्र को

श्लोक मे पूर्णत प्राप्त करने के लिए उसमे लिखित प्रत्येक चौथे अक्षर(मोटा और छोटा) को डबल बार उच्चारण करते हुए पढ़ना होगा। प्रत्येक चरण को प्राप्त करने की विधि निम्न प्रकार है–

१ प्रथम चरण को पढ़ने का क्रम–

चित्र के उत्तरी गोलार्ध के शीर्ष पर अकित **'वा'** अक्षर से पढ़ने का क्रम प्रारभ करते हुए बायी ओर की प्रथम कली मे, चौथे अक्षर को दो बार पढ़ते हुए, ऊपर से नीचे गोल घूमते हुए, नीचे दक्षिणी गोलार्ध के तल भाग मे लिखित 'वा' अक्षर पर समाप्त करने पर श्लोक का प्रथम चरण **"वाराधारर धारावा"** प्राप्त होगा । इसी दक्षिण के 'वा' अक्षर से दायी ओर से पूर्वी गोलार्ध की प्रथम कली मे लिखित अक्षरो को पढ़ते हुए, मध्य मे स्थित **'र'** अक्षर को दो बार उच्चारण करते हुए, पुन उत्तरी गोलार्ध के **'वा'** अक्षर तक जाने पर फिर से वही चरण प्राप्त होगा । इसी प्रकार इसे विपरीत क्रम अर्थात् उत्तरीगोलार्ध के **'वा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर दायी ओर से– गोल-घूमते हुए दक्षिण मे स्थित **'वा'** अक्षर को पढ़ते हुए, उत्तरी गोलार्ध मे स्थित **'वा'** अक्षर तक जाने पर इस प्रथम कली मे **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का प्रथम-चरण और **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का प्रथम चरण **'वाराधाररधारावा'** प्राप्त होगा ।

प्रथम चरण को चित्र की अन्य कलियो मे भी रखा गया है । चित्र की दोनो ओर की (दायी-बायीं) चौथे नम्बर की कलियो मे भी यह चरण निहित है । नारगी के अदर खड़े क्रम मे बायी से दायी ओर चौथी कली मे स्थित मोटे अक्षरो को शीर्ष के **'वा'** अक्षर से प्रारभ करके, ऊपर से नीचे की ओर, चौथे अक्षर को दो बार उच्चारण करते हुए दक्षिणी गोलार्ध के तल मे स्थित **'वा'** अक्षर पर पढ़ना समाप्त करने से 'विद्याष्टक' के प्रथम श्लोक का प्रथम चरण **'वाराधाररधारावा'** प्राप्त होगा । इसी **'वा'** अक्षर से दक्षिणी गोलार्ध के दाहिनी ओर चौथी कली मे स्थित छोटे अक्षरो को पढ़ते हुए उत्तरी गोलार्ध के शीर्ष के **'वा'** अक्षर पर समाप्त करने पर उन छोटे अक्षरो मे **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का प्रथम चरण **'वाराधाररधारावा'** प्राप्त होगा यथावत् प्रक्रिया को विपरीत क्रम से पढ़ने पर क्रमश **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक और **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का वही प्रथम चरण प्राप्त होगा ।

इसी चरण को छठवी कलियो मे भी रखा गया है। शीर्षस्थ **'वा'** अक्षर से प्रारभ करते हुए, दायी ओर की छठवी कली मे स्थित मोटे अक्षर **'रा' 'धा, 'र'** (**'र'** को दो बार पढ़ते हुये) **'धा', 'र'** और **'वा'** अक्षर तक पढ़ने पर **'विद्याष्टक'** का प्रथम चरण प्राप्त होगा और इसी दक्षिणी **'वा'** से पढ़ना प्रारभ करते हुये बायी ओर से छठवी कली मे स्थित छोटे अक्षर **'रा' 'धा' 'र'** (**'र'** को दो बार उच्चारण करते हुए) **'धा' 'रा'** और उत्तर मे स्थित **'वा'** अक्षर तक आने पर **'यथाख्यात- चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का प्रथम चरण प्राप्त होगा। इसी प्रकार इसे विपरीत क्रम अर्थात् उत्तरी गोलार्ध के **'वा'** अक्षर से प्रारभ कर बायी ओर से गोल घूमते हुए 'बिन्दु-रेखा' पर लिखे हुए छोटे अक्षरो को पढ़ते हुए, दक्षिण मे स्थित **'वा'** अक्षर तक जाने पर और इसी **'वा'** से दायी ओर की छठवी कली मे स्थित मोटे अक्षरो को पढ़ते हुए उत्तर के **'वा'** अक्षर तक जाने पर पहले 'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक' श्लोक का प्रथम चरण और बाद मे **'विद्याष्टक'** के प्रथम-श्लोक का प्रथम-चरण प्राप्त होगा।

इसी चरण को इस नारगी सदृश आकार मे आड़े क्रम से भी लिखा गया है। उत्तरी गोलार्ध मे स्थित **'वा'** अक्षर से आड़े क्रम मे प्रथम कली के अक्षरो मे गोल घूमते हुए बायी से दायी दिशा मे गमन करते हुए पढ़ने पर **'विद्याष्टक'** के प्रथम-श्लोक का प्रथम चरण **'वाराधारर धारावा'** और इस के विपरीत दायी से बायी दिशा मे घूम कर गमन करने पर 'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक' श्लोक का प्रथम चरण **'वाराधाररधारावा'** प्राप्त होगा।

इसी प्रकार नारगी के तल भाग मे स्थित **'वा'** अक्षर के ऊपर अर्ध गोलाकार मे लिखित अक्षरो मे गोल घूमते हुए दायी से बायी दिशा मे गमन करने पर **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का प्रथम चरण, **''वाराधाररधारावा''** प्राप्त होगा तथा इसके विपरीत बायी से दायी दिशा मे घूमकर पढ़ने पर यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक श्लोक का प्रथम चरण **'वाराधाररधारावा'** प्राप्त होगा।

द्वितीय-चरण पढ़ने का क्रम :

चित्र मे निहित दूसरा चरण है– **''राक्षलाक्ष। क्षलाक्षरा''**। अत इस चरण को पढ़ते समय शीर्ष एव तल मे स्थित **'वा'** अक्षर का प्रयोग नही होगा अर्थात् अब आगे के

चरणो को पढ़ते समय **'वा'** अक्षर को नही पढ़ा जायेगा । नारगी के बायी ओर खड़े क्रम से तीसरी कली मे स्थित मोटे अक्षरो को **'रा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कीजिए, चौथे अक्षर को दो बार उच्चारण करके दक्षिणी गोलार्ध मे स्थित **'रा'** अक्षर पर पढ़ना समाप्त करने से **'विद्याष्टकं'** के प्रथम श्लोक का द्वितीय चरण- **''राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा'** प्राप्त होगा इसी दक्षिणी **'रा'** से प्रारभ करके, दक्षिणी गोलार्ध के दाहिनी ओर की तीसरी कली मे स्थित् छोटे अक्षरो को पढ़ते हुये उत्तरी गोलार्ध के **'रा'** अक्षर पर समाप्त करने से **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का द्वितीय चरण– **''राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा''** प्राप्त होगा । इसमे विशेष ध्यान यह रखना होगा कि प्रारभ और अत के **'रा'** अक्षर को मोटे एव छोटे दोनो अक्षरो के साथ प्रयोग करना होगा । यह प्रक्रिया उत्तरी गोलार्ध मे बायी से दायी ओर गोल आकार बनाते हुए घूमने के लिए हुई, लेकिन इसके विपरीत यदि उत्तरी गोलार्ध के बायी ओर न जाकर, दायी ओर से बायी ओर गोलाकार क्रम से पढ़ा जाये तो पुन मोटे अक्षरो मे **''विद्याष्टक''** और छोटे अक्षरो मे **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का द्वितीय चरण प्राप्त होगा ।

अब आड़े क्रम से भी द्वितीय चरण को प्राप्त कीजिए । उत्तरी गोलार्ध से आड़े क्रम मे नीचे की ओर बढ़ने पर बायी ओर की द्वितीय नम्बरकी कली मे स्थित मोटे अक्षरो को 'र' से प्रारभ करके आड़े क्रम मे नीचे से दायी ओर घूमते हुए पूर्व के अतिम अक्षर **'रा'** पर समाप्त करने पर **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का द्वितीय-चरण **''राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा''** प्राप्त होगा और इसी क्रमको आगे बढ़ाकर, इसी **'रा'** से प्रारभ करके ऊपर की ओर स्थित अक्षरो के साथ गोलाकार बनाते हुये पुन बायी ओर के **'रा'** पर समाप्त करने पर उन छोटे अक्षरो मे **(जिन्हे खण्डित-रेखा (- - - -) चिन्ह से दर्शाया गया है) 'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का द्वितीय-चरण प्राप्त होगा । ठीक इसके विपरीत प्रक्रिया अपनाते हुये अर्थात् उत्तरी-गोलार्ध की उसी द्वितीय कली के बायी ओर स्थित **'रा'** अक्षर को ऊपर की ओर लिखित छोटे अक्षरो के साथ ऊपर से दायी ओर गोल घूमकर पढ़ने पर उन छोटे अक्षरो मे **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का द्वितीय चरण और मोटे अक्षरो मे **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का द्वितीय चरण प्राप्त होगा ।

इसी द्वितीय चरण को आड़े क्रम मे सबसे नीचे छठवी कली मे भी रखा गया है। इस कली मे बायी ओर लिखित मोटे **'रा'** अक्षर से प्रारभ करते हुए मोटे अक्षरो को

बायी ओर पढ़ते हुए, अतिम अक्षर **'रा'** पर समाप्त करने पर **'विद्याष्टक'** का द्वितीय चरण प्राप्त होगा । और इसी **'रा'** से 'खण्डित-रेखा' पर लिखित छोटे अक्षरो को पढ़ते हुये दायी से बायी ओर **'रा'** अक्षर तक जाने पर **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का द्वितीय चरण प्राप्त होगा । इसके विपरीत अब **'रा'** अक्षर को 'बिन्दु-रेखा' पर स्थित छोटे अक्षरो के साथ बायी से दायी ओर पढ़ते हुये **'रा'** अक्षर तक जाने पर और **'रा'** से पुन मोटे अक्षरो मे गमन करते हुये **'रा'** अक्षर पर आने से फिर से उक्त दोनो श्लोको के द्वितीय-चरण प्राप्त होगे ।

तृतीय चरण को पढ़ने का क्रम

तृतीय चरण को पढ़ते समय भी शीर्ष एव तल मे स्थित **'वा'** अक्षर का प्रयोग नही होगा । नारगी के बायी ओर खड़े क्रम से पाचवी कली मे स्थित मोटे अक्षरो को ऊपर से नीचे की ओर **'धा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कीजिए चौथे अक्षर को दो बार उच्चारण करके दक्षिणी गोलार्ध मे स्थित **'धा'** अक्षर पर पढ़ना समाप्त करने से **'विद्याष्टक'** के प्रथम-श्लोक का तृतीय चरण **'धाला ! य ! नो नोऽयलाधा'** प्राप्त होगा । इसी क्रम को जारी रखते हुये दक्षिणी गोलार्ध के दाहिनी ओर की पाचवी कली मे स्थित छोटे अक्षरो को **'धा'** अक्षर से प्रारभ करके, पढ़ते हुये उत्तरी गोलार्ध के **'धा'** अक्षर पर समाप्त करने से **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का तृतीय चरण **"धाला ! य ! नो नोऽयलाधा"** प्राप्त होगा । इसमे भी **'धा'** अक्षर को मोटे एव छोटे दोनो अक्षरो के साथ पढ़ना होगा। अब इस प्रक्रिया के विपरीत उत्तरी गोलार्ध के दायी ओर से बायी ओर गोलाकार क्रम से मोटे अक्षरो से प्रारम्भ करके नीचे आकर एव पुन ऊपर की ओर छोटे अक्षरो को पढ़ने पर मोटे अक्षरो मे **'विद्याष्टक'** और छोटे अक्षरो से **'यथाख्यात-चारित्र- प्रतिपादक'** श्लोक का तृतीय चरण **'धाला ! य ! नो नोऽयलाधा '** प्राप्त होगा ।

इस चरण को भी चित्र मे आड़े क्रम से प्राप्त किया जा सकता है । उत्तरी गोलार्ध से नीचे की ओर बढ़ने पर तृतीय नम्बर की आड़ी कली मे स्थित मोटे अक्षरो को **'धा'** अक्षर से प्रारभ करके बायी से दायी ओर घूमते हुये, चतुर्थ अक्षरको दो बार उच्चारण करते हुए, पूर्वी गोलार्ध के **'धा'** अक्षर पर समाप्त करने से **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक

का तृतीय चरण **"धाला । य । नो नोऽयलाधा"** प्राप्त होगा । इसी क्रम को जारी रखते हुए यही से **'धा'** अक्षर को छोटे अक्षरो के साथ जोड़ते हुये, ऊपर की ओर दायी से बायी दिशा मे, चतुर्थ अक्षर को दो बार उच्चारण करते हुए, गोल घूमने पर **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का तृतीय चरण **"धाला । य । नो नोऽयलाधा"** प्राप्त होगा । इसके विपरीत प्रक्रिया अपनाते हुए उत्तरी गोलार्ध की उसी तृतीय कली के बायी ओर स्थित **'धा'** अक्षर के ऊपर की ओर स्थित छोटे अक्षरो के साथ ऊपर से दायी ओर गोल घूमते हए पढ़ने पर उन छोटे अक्षरो मे **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** और मोटे अक्षरो मे **'विद्याष्टक** के प्रथम श्लोक का वही तृतीय चरण प्राप्त होगा ।

इसी चरण को आड़े क्रम मे भी लिखा गया है । पाचवे नम्बरकी अथवा नीचे से दूसरे नम्बर की कली मे लिखित मोटे अक्षर **'धा'** से प्रारभ करते हुए मोटे अक्षरो को बायी से दायी ओर पढ़ते हुए **'धा'** अक्षर पर समाप्त करने पर **'विद्याष्टक'** का तृतीय चरण प्राप्त होगा और इसी **'धा'** से बिन्दु-रेखा पर लिखित छोटे अक्षरो को पढ़ते हुए, दायी से बायी ओर **'धा'** अक्षर तक जाने पर **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का तृतीय चरण प्राप्त होगा । इसके विपरीत अब **'धा'** अक्षर को 'बिन्दु-रेखा' पर स्थित छोटे अक्षरो के साथ बायी से दायी ओर पढ़ते हुए **'धा'** अक्षर तक जाने पर और **'धा'** से पुन मोटे अक्षरो मे गमन करते हुए बायी ओर के **'धा'** अक्षर पर आने से फिर से उक्त दोनो श्लोको के तृतीय चरण प्राप्त होगे ।

चतुर्थ चरण को पढ़ने का क्रम

चित्र के उत्तरी गोलार्ध पर सातवी मध्य की कली मे स्थित **'र'** अक्षर से प्रारभ करके केवल मोटे अक्षरो को पढ़ते हुए और चौथे अक्षर को डबल बार उच्चारण करते हुये दक्षिणी गोलार्ध के **'र'** अक्षर तक जाने पर उन मोटे अक्षरो से **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का चतुर्थ-चरण **"रक्षनोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।"** प्राप्त होगा । इसी कली मे दक्षिण मे स्थित इसी **'र'** अक्षर से पढ़ते हुये 'बिन्दु-रेखा' पर लिखित छोटे अक्षरो मे गमन करने पर, चतुर्थ अक्षर को दो बार पढ़ते हुये उत्तरी गोलार्ध के **'र'** अक्षर तक जाने पर **'यथाख्यात-चारित्र प्रतिपादक'** श्लोक का चतुर्थ चरण– **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।"** प्राप्त होगा ।

इसी क्रम को उलटते हुए 'बिन्दु-रेखा' पर स्थित छोटे अक्षरो को पढ़ते हुये उत्तर मे स्थित **'र'** से दक्षिण के **'र'** तक जाने पर **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का चतुर्थ चरण एव दक्षिण के 'र' से प्रारभ कर मोटे अक्षरो मे गमन करते हुये पुन उत्तर के 'र' तक जाने पर उन मोटे अक्षरो मे **'विद्याष्टक'** का चतुर्थ चरण प्राप्त होगा।

आड़े क्रम मे भी ठीक मध्य की कली मे इस चरण को रखा गया है । आड़े क्रम की चौथी अर्थात् मध्य की कली मे पश्चिमी गोलार्ध मे स्थित **'र'** अक्षर से प्रारभ करके, चौथे अक्षर को डबल बार उच्चारण करते हुये, मोटे अक्षरो मे पूर्वी गोलार्ध के 'र' तक जाने पर उन मोटे अक्षरो मे **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का चतुर्थ चरण **'रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।'** प्राप्त होगा । इसी पूर्वी गोलार्ध के मोटे अक्षर **'र'** से ऊपर की ओर छोटे अक्षरो के साथ 'खण्डित-रेखा' से जाते हुये पुन पश्चिमी गोलार्ध के 'र' अक्षर तक आने पर उन छोटे अक्षरो मे **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का चतुर्थ चरण **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।"** प्राप्त होगा । पुन पश्चिमी-गोलार्ध के **'र'** अक्षर से ऊपर की ओर 'खण्डित-रेखा' पर स्थित छोटे अक्षरो के साथ गोल आकार बनाकर पूर्वी गोलार्ध के **'र'** तक आने पर उन छोटे अक्षरो मे **"यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** श्लोक का चतुर्थ चरण प्राप्त होगा । उसी पूर्वी गोलार्ध के **'र'** से पुन पश्चिमी गोलार्ध के **'र'** तक मोटे अक्षरो के साथ गोल आकार बनाकर आने से **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का चतुर्थ-चरण प्राप्त होगा।

इस प्रकार **'रत्नत्रय-स्तुति-शतक'** के अन्तर्गत **'यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक'** १०२ नम्बर का श्लोक और इसी श्लोक से प्रत्यागत रूप से उत्पन्न होने वाला **'विद्याष्टक'** के प्रथम-श्लोक सहित **'मृत्युकूप-बन्ध'** पढ़ने की विधि सम्पन्न हुई ।

2
भारतदेश
बन्धः
रक्ष यक्षक्षरा ऽऽ धार !
रक्ष नो ! नो य ! नोऽक्षर !
रलाऽयक्ष ! रधालालाऽऽ
धार ! धाररधा ! रधाः
विद्याष्टकस्य
द्वितीयकाव्यम्

अथेह यथाख्यातचारित्रप्रतिपादकपूर्वोक्तसर्वतोभद्रबन्धकाव्यात्प्रत्यागतरूपेण यत्समायात विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रबन्धप्रथमकाव्य तस्य काव्यस्य चतुष्पादाश्चतु षष्टीकोष्टकोपेतवर्गाकारमध्ये गतप्रत्यागतपादक्रमेण सस्थाप्य तस्मिन्नेव वर्गाकारमध्ये भारतदेशस्य चित्रमपि सस्थाप्य पुनस्तस्य चित्राकारसीमागतस्याऽक्षरानेव केवलान् सम्प्राप्नुवन् श्रमणसस्कृतिपरिरक्षक श्रमणशिरोमणि भव्यजनभवाम्बुधिसतारकञ्चैन श्रीगुरुवर भारतदेशबन्धस्वरूपद्वितीयकाव्येनाऽधुना स्तोतुमाह–

रक्ष यक्षक्षराऽऽधार ! रक्ष नो । नो य ! नोऽक्षर ! ।
रलाऽ यक्ष ! रधालाला ऽऽधार ! धाररधा । रधा । ॥२॥

–अन्वयार्थः–

हे यक्षक्षराऽऽधार । न । नो (अस्माक) य । नो अक्षर । रल । अयक्ष । रधालालाऽऽधार । न (अस्माक) धाररधा । रधा न (अस्मान्)रक्ष रक्ष ॥२॥

–संस्कृत-टीका–

हे यक्षक्षरेति–

हे यक्षक्षराऽऽधार । वय मुनयस्तु यक्षा [1] सेवका उपासका अस्माक क्षरो[2] विनाशोऽर्थान्मुनिपरम्पराया नाशस्तस्याऽऽधार [3] सरक्षणनिमित्तस्त्वमेवाऽसि । तत्सम्बुद्धौ हे यक्षक्षराऽऽधार । हे श्रमणपरम्पराया सरक्षक । इत्यर्थ ।

हे न [4] । (हि महापुरुष !)

–सन्दर्भाः–

(१) यक्षोऽर्चके सेवके वोपासके पूजके पि च । इत्यार्ष ।
(२) क्षरो देहे नीरदे वा विनाशे नश्वरेऽपि च । इति च (स हि आ)
(३) आधारस्त्वास्पदे स्तम्भे मूले सेतौ च रक्षके । इति च (स हि आ)
(४) ऋकारान्तो नृशब्दस्तत्सम्बुद्धौ हे न । इति च । मानवे महापुरुषे महामानवे चैवमर्थे प्रयुक्त शब्द ।

हे नो (अस्माक) य[५] ! (हि अस्माक यशोमूर्ते !)

हे नो अक्षर ! (हि अस्माक तुलायन्त्रदण्डदात ! अर्थात् न्यायविधात ! हे न्यायाधीश ! हे अस्माकं समीचीनश्रमणमार्गनिर्देशक ! हे न्यायाधीश !) अक्ष[६] तुलायन्त्रदण्ड । रो दाता विधाता वार्थ । अक्षस्यऽर्थात्तुलायन्त्रदण्डस्य तस्य रो विधाता तुलायन्त्रदण्डविधाता अथवाऽक्षर इति । अथवा यस्य धार्मिकन्यायस्तुलायन्त्रदण्ड राति विदधात्यसाविति तुलायन्त्रदण्डविधाता तत्सम्बुद्धौ हे तुलायन्त्रदण्डविधात ! हे अक्षर ! सत्यधर्मन्यायविधात ! वेत्यर्थ ।

हे रल ! अयक्ष ! (हि दानेश्वर ! हे असेवक !) रो[८] दान इत्यर्थ । ल[९] इन्द्र इत्यर्थ । रस्य दानस्य योऽ सौ ल स्वामी ईश्वरो वा स रलोऽथवा दानेश्वर इत्यर्थ । चतुर्विधदानेषु गुरुरात्मज्ञानदाता । तस्य स्वामित्व तस्मायेव विशेषरूपेणाऽनुतिष्ठति । अस्याऽपेक्षया दानेश्वरो गुरुस्तत्सम्बद्धौ हे दानेश्वर ! हे रल ! इत्यर्थ । अयक्षो[१०] न यक्षो ऽयक्षोऽर्थादसेवकोऽधिपति स्वामी वेत्यर्थ । यक्षा अर्थात्सेवका इत्यर्थ । अत्र मुनय एव यक्षास्तेषा यक्षानामधिपतिरयक्ष इति च विज्ञेय । अयक्षोऽर्थात् श्रमणाना हे स्वामिन् ! हे अधिपते ! हे ईश्वर ! ईश ! वेत्यर्थ । अर्थादस्माक मुनीना त्वमेव स्वामीत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे अयक्ष ! इत्यर्थ ।

हे रधालालाऽऽधार ! (अज्ञानाऽनाथशरण !) रो[११] ऽर्थादिच्छेत्यर्थ । धा[१२] अर्थादुत्पादको जनक इत्यर्थ । अर्थाद् रस्य इच्छाया धा उत्पादक, इति रधा अथवा इच्छोत्पादक इत्यर्थोऽर्थान्मोह इत्यर्थ । तस्य रध (षष्ठी विभक्ति) मोहस्य वा योऽसौ ल[१३] इन्द्र स्वामी वा स रधालोऽर्थान्मोहस्वामी मोहेन्द्रोऽ र्थादज्ञानमबोधो वार्थ । एव तेन रधालेन द्वारेणाऽज्ञानद्वारेणाऽर्थाज्ज्ञानाभावत्वेन वा योऽ

—सन्दर्भाः—

५ यस्तु यज्ञेऽनिले चापि गतौ यशसि सयमे । । इति च (प च)
६ अक्षञ्चक्रे तुलादण्डे । इति च (प च)
८ रो दातरि सधारके दाने वाऽपि ।
९ लस्त्वीश्वरेऽधिपे चेशेऽप्रधाने । इति च (विलो)
१० अयक्षस्त्वसेवके । इत्यार्ष ।
११ रोऽग्नौ गतावुष्णतायामिच्छाया प्रेम्णि वा मत । इति च (स हि आ)
१२ धाश्चावधारणे सृष्टौ सकल्पे जनकेऽपि स्यात् । इति च (स हि आ)
१३ ल स्वामिनीश्वरे चन्द्रे । इति च (वि लो)

सौ अलोऽ[१४] स्वामी अनाथ स रधालाल । तेषा रधालालानामबोधाऽनाथाना अज्ञानाऽनाथाना वा आधार[१५] आस्पद आलयो वाऽसाविति रधालालाधारोऽर्थादज्ञानाऽनाथशरणस्तत्सम्बुद्धौ हे रधालालाधार ! हे अज्ञानानाथशरण ! वेत्यर्थ ।

न (अस्माक) हे धाररधा ! (अस्माक मुनीना मुनिधर्मस्य वा मर्यादापरित्रात ! अथवा मर्यादापरिविधात !) न अस्माक मुनीना मुनिधर्मस्य वेत्यर्थ । धारर[१६] सीमा मर्यादा वेत्यर्थ । त धाररमस्माक पञ्चमकालोपहास्यमानमुनिधर्ममर्यादा धारयति परित्राययति वेति धाररधा । अर्थादस्माक मुनिधर्ममर्यादाया हे परित्रात ! परिविधात ! वेत्यर्थ ।

हे रधा. न (अस्मान्) रक्ष रक्ष– (हे वात्सल्यधात ! अस्मान् पाहि पाहि) र[१८] वात्सल्य । धा धारक इत्यर्थ । न. अस्मानर्थादस्मान्मुनीनित्यर्थ । रक्ष रक्ष पाहि पाहीत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । अर्थाद्धे वात्सल्यधात ! गुरो ! अस्मान्मुनीन्रक्ष रक्ष पाहि पाहि वेत्यर्थ ॥२॥

हिन्दी-टीका

हे भगवन्[६०] ! हम श्रमण[६१] आपके उपासक[६२] हैं इन उपासको को विनाश के इस समय मे आपने ही बचाया है अर्थात् शैथिल्य[६३] से श्रमणता[६४] का विनाश होता है, आपने श्रमण-सस्कृति[६५] मे समागत शैथिल्य का परिहार कर हमे उस यथार्थ परपरा[६६] मे स्थिर किया है, जिसमे श्रामण्यता की यथार्थ उपलब्धि है । अत आप इस समय की गिरती हुई परपरा के समयाधार हैं । हे महापुरुष ! सचमुच मे आप पुरुषो मे महापुरुष है क्योकि आपके निमित्त से यश की उपलब्धि हमे होती है तथापि इसका तात्पर्य यह नही है कि हम यशो-मूर्ति है बल्कि यशो-मूर्ति आप ही है । हे सत्य-धर्म[६७-६८] के न्याय विधाता ! आप ही हमारे न्यायाधीश है क्योंकि आपका धार्मिक न्याय, तुलायन्त्रदण्डभाव[६९] को परिप्राप्त है, अर्थात् जिस प्रकार तुलायन्त्रवाला वह दण्ड यथार्थता का विधायक

—सन्दर्भाः—

१४ अलोऽनाथेऽप्यनीश्वरे । इति चार्ष ।
१५ आधारस्त्वास्पदे स्तम्भे । इति च (स हि आ)
१६ धाररस्तु मत सीमायामृणेऽपि हिमेऽपि स्यात् । इति च (स हि आ)
१८ रोग्नौ गतावुष्णताया वात्सल्ये प्रेम्णि वा मत । इति च (स हि आ)

है उसी प्रकार आपकी धार्मिकता के न्याय-वचन[७०] समीचीन मोक्ष-मार्ग[७१] के विधायक[७२] हैं । अत. आप समीचीन[७३] श्रमण-मार्ग[७४] के निर्देशक-नेता स्वरुप महापुरुष[७५] हैं, न्यायाधीश[७६] हैं । अथवा सदोष-श्रमणों[७७] के दोष-परिहार[७८] के लिए समुचित दण्ड के आप विधायक हैं क्योंकि उनके प्रति प्रायश्चित्त[८३] अर्थात् दण्ड-विधेयता[८०] की समुचित-पात्रता[८१] आप मे विद्यमान है । अत आप परमार्थ-क्षेत्र[८२] के सफल न्याय-विधाता हैं । ओ गुरुवर ! यथार्थ विचारो मे आप दानेश्वर[८५] भी हैं क्योंकि चतुर्विधदानो[८६] मे शाश्वत सन्तुष्टि दायक जो अभयदान[८७] और ज्ञानदान[८८] हैं उनके आप ही स्वामी हैं जिनके कि करने पर अन्य-दान स्वय किये गये होते है। हे श्रमणेश[८९] ! आप श्रमणो मे श्रमणोत्तम-श्रमण है अत लौकिक[९१] जन भी आपको श्रमणेश्वर या सन्तशिरोमणि[९०] कहते दिखाई देते हैं । हे अज्ञानियों के तारण-तरण[९२] ! हे अनाथो के परमशरण ! इस ससार मे इच्छा का उत्पादक मोह है और मोह[९४] का स्वामी अज्ञान है, इस अज्ञान के कारण से अनाथ[९३] होते हुये, दर दर भटकते हुए ससारी[९५] दुखी प्राणियो के लिए आप ही तारण-तरण हैं । अत इस काल मे उनमे परमार्थ-ज्ञान[९६] जगाकर उनके परम कल्याण के लिए आप ही परम शरण है । हे वात्सल्याधिपते[९७] ! हे स्वामिन् ! वास्तव मे आप-स्वय वात्सल्य मे अत्यधिक परिपूर्ण है क्योंकि विषमता के इस पचम-काल (कलियुग) मे उपहास होती हुई इस मुनि-धर्म[९८] की मर्यादा को आपने अपनी स्वय की चर्या[९९] से एव शिष्यो मे यथार्थ-सस्कारिता[८४] के माध्यम से बचाया है । अत आप मे मुनि-धर्म के प्रति एव परम्परा के प्रति अटूट वात्सल्य विद्यमान है । अत आप महान गुरु होकर इस भारत वसुधा पर सदा ही हम सबकी रक्षा करो ओ गुरुवर ! रक्षा करो हम सबकी रक्षा करो ॥२॥

(१)
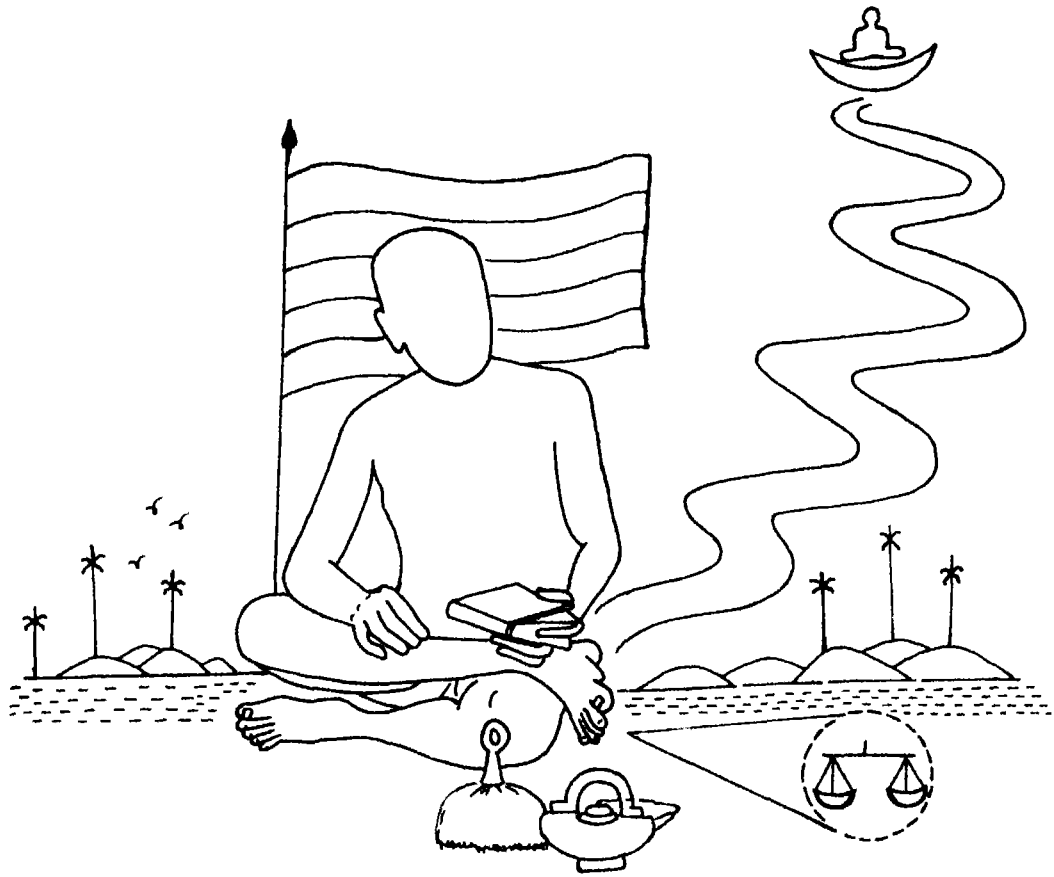
आप रहे शैथिल्य निवारक, और उपास्य हमारे हो।
पुरुषोत्तम हो यशोमूर्त्ति हो, यश आधार हमारे हो।।
जिस विध तुला यन्त्र कहलाता, दण्ड विधेता जगती मे।
उस विध न्याय विधेता तुम हो, नेता शिव के जगती में।।
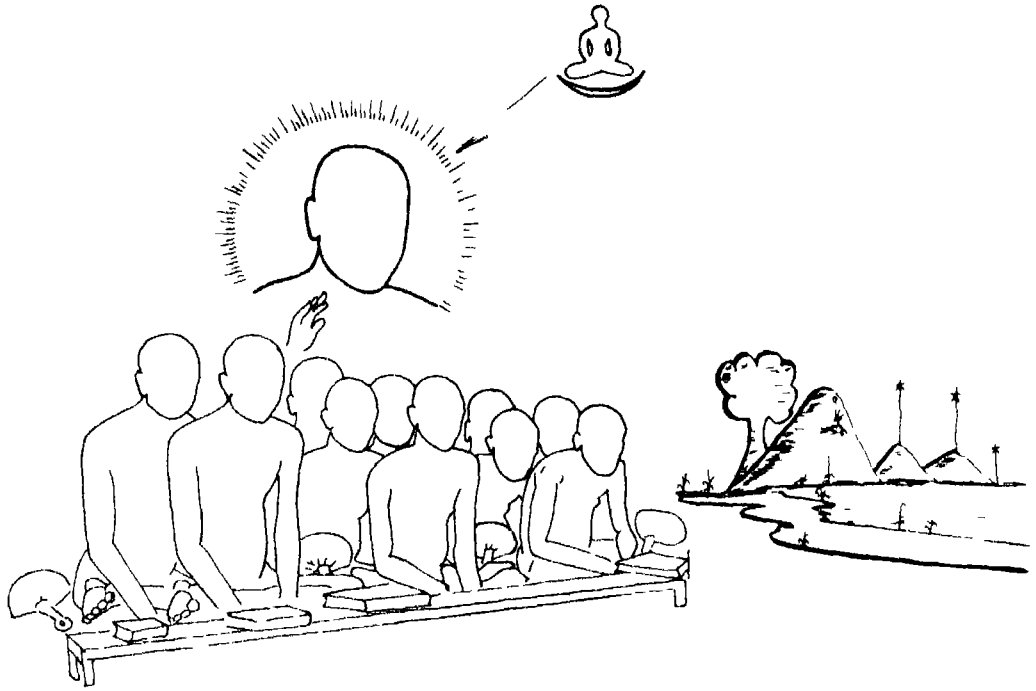
(२)

दानेश्वर हो अभय ज्ञान के, चतु:संघ तुष्टि दायक।
शिरोमणि सन्तों में तुम हो, और तुम्ही मुक्ति दायक॥
इच्छाओ को मोह जन्मता, स्वामी प्रबल अज्ञान रहा।
अज्ञानी और अनाथ जनको, गुरुवर तेरी शरण महा॥
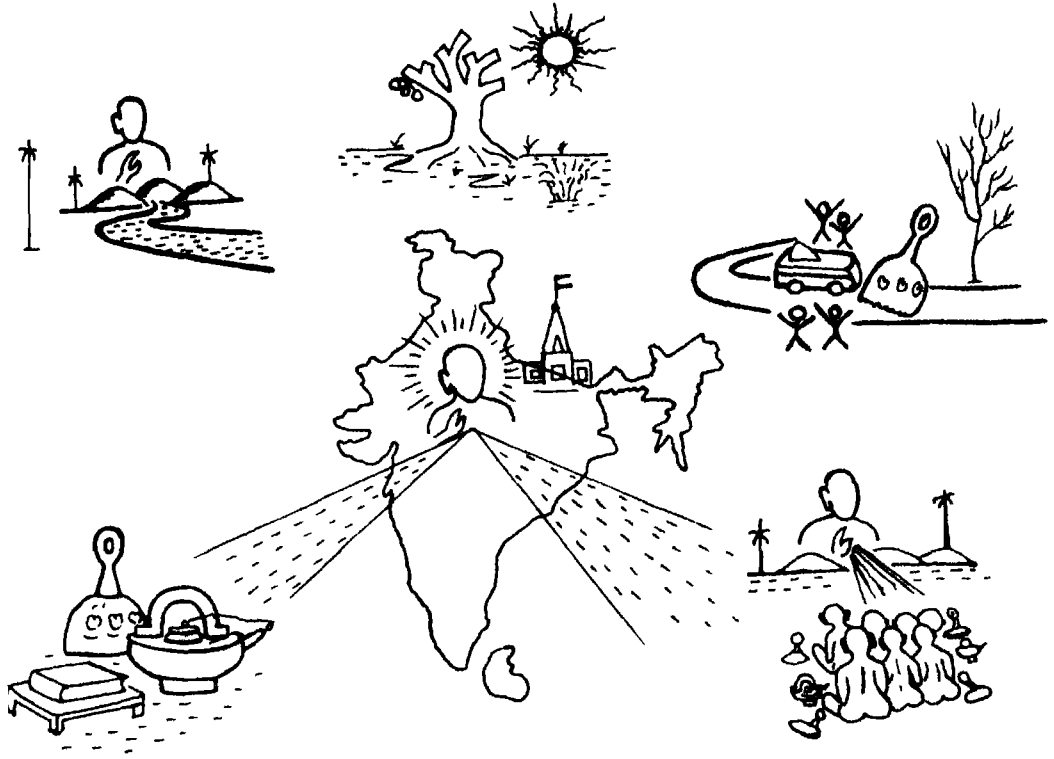
(३)

सिन्धु महा वात्सल्य भाव के, कलियुग बड़ा विघातक है।
श्रमणों की गिरती मर्यादा, जन-जन को उपहासक है॥
सम्बल दिया स्वयं शिष्यों को, संस्कृति का उत्थान किया।
भारत की वसुधा पर आकर, हम सबका परित्राण किया॥

चित्र क्रमाङ्क - 4
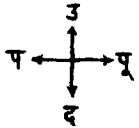
वाराधारर ! धारावा
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ! ।
धाला. ! य ! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर ! ॥१॥

रक्ष यक्षक्षराऽऽधार !
रक्ष नो ! नो य ! नो क्षर ।।
रलाऽ यक्ष ! रधालालाऽऽ
धार ! धाररधा ! रधाः ! ॥२॥

चित्र क्रमाक-४ मे एक चौसठ कोष्टकवाला वर्ग है । इस वर्गके अन्तर्गत एक **'भारत-देश'** का चित्र है पूरे चौसठ कोष्टको मे **'विद्याष्टक'** का प्रथम-श्लोक **"वाराधारर । धारावा-राक्षलाक्ष क्षला । ऽक्षरा ।। धाला । य । नो नोऽयलाधा रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर** ।।१।। " यह बत्तीस अक्षरो वाला श्लोक विद्यमान है । वर्ग के अन्दर **"भारत-देश "** के सीमाकित अक्षर भी सम्मिलित है प्रथम श्लोक को पढ़ते समय **'भारत-देश'** के सीमाकित अक्षरो को भी पढ़ना होगा । परन्तु, केवल **'भारत-देश'** के सीमाकित अक्षरो को पढ़ेगे तो बत्तीस अक्षरो वाला **'विद्याष्टक'** का दूसरे नम्बरवाला श्लोक **"रक्ष यक्षक्षराऽऽधार । रक्ष नो । नो य । नोक्षर । । रलाऽयक्ष राधालालाऽऽधार । धाररधा रधा** । ।।२।।" यह भारत-देश के आकार मे हमे उपलब्ध होगा । यह छद भी अनुष्टुप् छद है और बत्तीस अक्षरोवाला है । यहा सर्व-प्रथम मूलश्लोक को पढ़ने का क्रम बतलाकर, अनन्तर **'भारत-देश-बन्ध'** को पढ़ने की विधि बतलाई जायेगी ।

मूल प्रथम श्लोक पढ़ने का विस्तृत क्रम

उत्तर से दक्षिण तक आठो कोठो मे मूल श्लोक अर्थात् **'विद्याष्टक'** के प्रथम श्लोक का प्रथम पद, **"वाराधारर । धारावा"** आता है । इसे ही उलट क्रम से याने दक्षिण दिशा से (चित्र मे चारो ओर लिखित दिशा के अनुसार) उत्तर तक पुन प्राप्त किया जा सकता है । इसी प्रकार पश्चिम से पूर्व तक सीधे जाने पर पहले आठो कोठो तक यही पद आता है । इसे ही उलट क्रम से पुन प्राप्त किया जा सकता है ।

पूर्वोत्तर **'वा'** अक्षर से सीधे नीचे दक्षिण-पूर्व स्थित अक्षर **'वा'** पर उपर्युक्त, **"वाराधारर ।– धारावा"** पद आ जाता है । इसे ही इसी पक्ति मे उलट क्रमसे भी पढ़ा जा सकता है ।

पूर्व-दक्षिण स्थित **'वा'** से सीधे आगे बढ़ते हुये दक्षिण-पश्चिम स्थित अक्षर, **'वा'** पर समाप्त करने पर, **"वाराधारर । धारावा"** पद पढ़ा जा सकता है इसे भी उलट क्रम से पुन पढ़ा जा सकता है ।

ऊपर के दूसरे कोठे मे स्थित **'रा'** अक्षर के नीचे से सीधे दक्षिण मे **'रा'** अक्षर तक आने पर श्लोक का दूसरा पद, "**राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा**" प्राप्त होता है । यह नीचे से ऊपर **'रा'** अक्षर तक जाने पर पुन प्राप्त होता है ।

उत्तर से नीचे दूसरे कोठे मे जहाँ **'रा'** अक्षर अकित है, इससे सीधे पश्चिम से पूर्व की ओर **'रा'** अक्षर तक जाने पर, श्लोक का दूसरा पद, "**राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा**" प्राप्त होगा । इसे इसी लाईन मे उलट क्रम से भी प्राप्त किया जा सकता है ।

पूर्वोत्तर द्वितीय कोठे मे अकित **'रा'** अक्षर से दक्षिण की ओर सीधे नीचे **'रा'** अक्षर तक जाने पर, **'राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा**" पद प्राप्त होगा । इसे ही उलट क्रम से पढ़ने पर यही पद प्राप्त होगा ।

दक्षिण पश्चिम दिशा मे, नीचे से ऊपर दूसरे कोठे मे अकित**'रा'** अक्षर से सीधे पूर्व मे **'रा'** तक जाने पर, "**राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा**" पद प्राप्त होगा । इसे ही उलट क्रम से **'रा'** अक्षर से वापस **'रा'** अक्षर तक पढ़ने पर पुन यही पद पढा जा सकता है ।

ऊपर से तीसरे कोठे मे उत्तर से पूर्व की ओर अकित **'धा'** अक्षर के नीचे से सीधे दक्षिण मे **'धा'** अक्षर तक आने पर, श्लोक का तीसरा पद, "**धाला । य । नो नोऽयलाधा**" पद प्राप्त होता है । नीचे से ऊपर पुन **'धा'** अक्षर तक पढ़ने पर वही पद प्राप्त होगा । इसे उलट क्रम से निर्देशित मार्ग से जाने पर भी प्राप्त किया जा सकता है ।

पूर्व से पश्चिम की ओर ऊपर से तीसरे कोठे मे अकित **'धा'** अक्षर से सीधे दक्षिण मे अकित **'धा'** अक्षर तक आने पर, "**धाला । य । नो नोऽयलाधा**" पद प्राप्त होगा । इसे भी उलट क्रम अर्थात् नीचे से उपरोक्त **'धा'** तक जाने पर पुन , "**धाला । य । नो नोऽयलाधा**" पढ़ा जा सकता है ।

पश्चिमोत्तर दिशा मे पहिली लाईन मे नीचे की ओर तीसरे कोठे मे अकित **'धा'** अक्षर एव छठे कोठे मे अकित **'धा'** अक्षर से सीधे पूर्व मे अकित **'धा'** अक्षर तक जाने पर, "**धाला । य । नो नोऽयलाधा**" पद की प्राप्ति होगी । इन्हे उलट क्रम से भी पढ़ा जा सकता है ।

उत्तर दिशा की पहली लाईन के पश्चिम-पूर्व के प्रथम कोठे के क्रमश चौथे और पाचवे 'र' अक्षरो से नीचे की ओर सीधे क्रम से और नीचे-ऊपर वाले या उलट-क्रम से भी 'र' से 'र' तक पहुँचने पर क्रमश दो बार, **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर"** पदो की प्राप्ति होगी ।

उत्तर-दिशा की प्रथम लाईन मे, ऊपर लिखित **'वा'** अक्षर से नीचे की ओर चौथे और पाचवे कोठे मे अकित **'र'** अक्षर से सीधे, पूर्व की ओर आगे बढ़ते हुये **'र'** अक्षर तक **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।"** ये पद दो बार प्राप्त होगा । ये ही पद उलटे क्रम से भी आवेगा ।

उत्तर दिशा के प्रारम्भिक अक्षर **'वा'** से चारो ओर वर्गाकार परिधि मे घूमने पर पुन उसी उत्तर-दिशा स्थित **'वा'** अक्षर पर आने पर याने वर्गाकार घूमने पर, एक ही पद, **"वाराधारर । धारावा"** को चारो दिशाओ के अन्त मे चार बार पढ़ा जा सकता है ।

ऊपर की प्रथम लाईन मे बायी ओर के दूसरे कोठे मे अकित **'रा'** अक्षर को पढ़कर, इस **'रा'** के नीचे अकित **'क्ष'** अक्षर को पढ़ते हुए इसी अक्षर **'क्ष'** की सीध मे आगे पूर्व की ओर बढ़ते हुए **'क्ष'** अक्षर तक आकर, **'क्ष'** के ठीक ऊपर अकित **'रा'** अक्षर पर समाप्त करने से बड़े कोष्टक-आकार '⊔' मे, **"राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा ।"** यह पद प्राप्त होता है । उलट क्रम से बड़े कोष्टकाकार '⊔' मे, पुन यह पद पढ़ा जा सकता है ।

ऊपर से द्वितीय पक्ति के प्रथम अक्षर **'रा'** से ठीक पूर्व की ओर अकित **'क्ष'** अक्षर से नीचे ठीक उसी लाईन मे नीचे से दूसरे अकित **'क्ष'** तक आकर, बाये बाजू मे अकित **'रा'** अक्षर पर समाप्त करने से, ']' इस आकार मे, **"राक्षलाक्ष-क्षलाक्षरा"** पद प्राप्त होगा । इसे उलट क्रम से ऊपर बताये हुये मार्ग पर चल कर पुन पढ़ा जा सकता है ।

दक्षिण मे नीचे की पक्ति मे बायी ओर के **'रा'** अक्षर के ठीक ऊपर **'क्ष'** अक्षर को पढ़ते हुये इसी अक्षर के पास मे पूर्व दिशा मे अकित **'ला'** को पढ़ते हुए उसी **'ला'** अक्षरवाली लाईन मे चलते हुए पूर्वदिशा स्थित **'क्ष'** अक्षर को पढ़कर उसके ठीक नीचे **'रा'** अक्षर पर समाप्त करने पर, **"राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा"** पद प्राप्त होगा । यह पद उलट क्रम से, आये हुए मार्ग से लौटने पर पुन प्राप्त होगा ।

दायी तरफ दक्षिण की अतिम पक्ति मे अकित **'वा'** अक्षर को छोड़कर उसके ऊपरी कोष्टक मे अकित **'रा'** अक्षर को पढ़ते हुये, उससे पश्चिम की ओर अकित पड़ौसी अक्षर **'क्ष'** को पढ़कर उसके ऊपर सीधी पक्ति मे, उत्तर के **'रा'** अक्षर को छोड़कर, उसके नीचे लिखित **'क्ष'** अक्षर तक पढ़ने पर, इस **'क्ष'** अक्षर की दायी तरफ प्रथम पक्ति मे **'वा'** अक्षर के नीचे **'रा'** अक्षर पर रुकने पर, **"राक्षलाक्ष! क्षलाक्षरा"** पद प्राप्त होगा । इसे उलट-क्रम से पढ़ने पर भी यही पद प्राप्त होगा ।

बायी तरफ की खड़ी-प्रथम पक्ति मे तृतीय अक्षर **'धा'** से प्रारभ कर, पड़ौस की पक्ति मे **'ला'** को पढ़कर, इसके भी पड़ौस मे **'य'** को पढ़ते हुए, **'य'** अक्षर के ठीक नीचे, **"नो-नो-य"** को पढ़कर, **'य'** अक्षर के बाये बाजू मे **'ला'** और इसीकी सीध मे **'धा'** अक्षर को पढ़ने पर ']' इस आकार मे, **"धालाय! नो नोऽयलाधा"** पद प्राप्त होगा । इसे उलट क्रम से भी पढ़ा जा सकता है ।

दक्षिण-दिशा के बाये तीसरे कोष्टक मे अकित **'धा'** अक्षर को पढ़ते हुये, ऊपर के अक्षर **'ला'** और **'य'** को पढ़कर, दायी ओर घूमते हुए चौथे, पाचवे और छठे कोष्टक मे स्थित क्रमश **'नो'**, **'नो'**,**'य'** अक्षरो को पढ़ते हुए, **'य'** के नीचे स्थित, **'ला'** और **'धा'** को पढ़ने से '┌─┐' इस अकार मे, **"धाला ! य ! नो नोऽ यलाधा"** पद प्राप्त होगा । इसे आये हुए मार्ग से ही, जहाँ से प्रारभ किया था, वहाँ तक उसी प्रकार जाने पर अर्थात् उलट क्रम से भी यही पद, **"धाला ! य ! नो नोऽ यलाधा"** प्राप्त होगा।

दायी तरफ की प्रथम पक्ति मे, नीचे से ऊपर की ओर अकित, **'धा'** अक्षर को पढ़ते हुए, पड़ौस मे पश्चिम की ओर अकित, **'ला'** और **'य'** अक्षर को पढ़कर **'य'** के ऊपर, **'नो'**, **'नो,** **'य'** इन तीन अक्षरो को भी शामिल करते हुए, **'नो'** अक्षर की पूर्व में पड़ौसी अक्षर **'ला'** एव **'ला'** के पड़ौसी **'धा'** अक्षर पर, समाप्त करने से **"धाला ! य नो नोऽयलाधा"** पद प्राप्त होगा। यही पद उलट क्रम से भी प्राप्त होगा ।

उत्तर-दिशा की प्रथम पक्ति मे बायी ओर अकित **'धा'** अक्षर को पढ़ते हुए नीचे **'ला'** और **'य'** अक्षरो को शामिल करते हुए पूर्व की ओर मुड़ने पर क्रमश, **'नो'**, **'नो'**, **'य'** अक्षरो को पढ़कर, **'य'** अक्षर से ऊपर उत्तर की ओर मुड़ने पर, **'ला'** और **'धा'** इन दो अक्षरो को और

जोड़कर पढ़ने से, **"धाला ! य ! नो नोऽयलाधा"** पद प्राप्त होगा । यही पद उलटा करने पर भी मिलेगा ।

बायी तरफ की खड़ी-प्रथम पक्ति मे चतुर्थ अक्षर 'र' को पढ़कर,'र' के पास से क्रमश **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** और **'ज्ञ'** अक्षरो को पढ़ते हुए, पश्चिम की तरफ मुड़ने पर **'नो'** अक्षर को शामिल करते हुये पड़ौसी अक्षरो, **'क्ष'** और **'र'** तक पढ़ने पर, **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर !"** पद प्राप्त होगा । इसे उलटी तरफ से सीधे निर्देशित मार्ग पर जाने से भी प्राप्त किया जा सकेगा ।

दक्षिण दिशा की प्रथम पक्ति के चौथे कोष्टक मे अकित 'र' अक्षर को पढ़कर, इसके ऊपर सीधे उत्तर की ओर स्थित, **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, इन तीन अक्षरो को शामिल करते हुए दायी बाजू मे पूर्व की ओर मुड़ने पर **'ज्ञ'** अक्षर और उसके नीचे के कोष्टक मे **'नो'**, **'क्ष'** और 'र' अक्षरो को पढ़ने से **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर"** पद प्राप्त होगा । इसे उलट क्रम से निर्देशित मार्ग से जाने पर भी, प्राप्त किया जा सकता है।

दायी ओर की खड़ी अन्तिम पक्ति मे ऊपर से पाचवे अक्षर 'र' से पढ़ना प्रारभ करके उसी 'र' से पश्चिम की ओर बढ़ने पर प्राप्त होने वाले **'क्ष'**, **'नो'** और **'ज्ञ'** अक्षरो को पढ़ते हुए उस **'ज्ञ'** के ऊपर स्थित **'ज्ञ'** को पढ़कर पुन उसी **'ज्ञ'** से पूर्व की ओर स्थित **'नो'**, **'क्ष'** और 'र' को पढ़ने से **"रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽ क्षर !"** पद प्राप्त होगा। इससे विपरीत क्रम से पढ़ने पर भी यह पद प्राप्त होगा ।

उत्तर-दिशा की प्रथम पक्ति मे स्थित चतुर्थ अक्षर 'र' से पढ़ना प्रारभ करके उसके नीचे की ओर स्थित **'क्ष'** , **'नो'** और **'ज्ञ'** अक्षर को पढ़ते हुये उस **'ज्ञ'** के दायी बाजू मे स्थित **'ज्ञ'** को पढ़कर, इस **'ज्ञ'** के ऊपर के **'नो'**, **'क्ष'** और 'र' अक्षर को पढ़ने पर चतुर्थ पद **"रक्षनोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर !"** प्राप्त होगा । इससे विपरीत क्रम से पढ़ने पर भी इसे प्राप्त क्रिया जा सकता है।

श्लोक के प्रथम-पद को छोड़ कर शेष तीनो पदो को विभिन्न समकोण के आकारो ' ⅃,⅂, ⌐⅃ '' से पढ़ने पर भी प्राप्त किया जा सकता है ।

इस प्रकार "**भारत-देश**" के नक्शा-सहित, "**विद्याष्टक**" के प्रथम (मूल) श्लोक को पढ़ने की विधि समाप्त हुई । अब आगे इसी मूल-प्रथम श्लोक के अन्तर्गत-रचित "**भारत-देश-बन्ध**" पढ़ने की विधि बतलाते है–
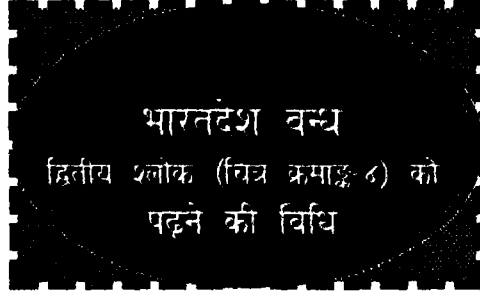
उत्तर दिशा स्थित '**र**' अक्षर जो कि पाचवे कोष्टक मे है वहा से द्वितीय श्लोक का पठन प्रारभ होता है। वहाँ नक्शे की सीमा-रेखा पर १, अक अकित है और एक बिन्दु और बाण चिह्न भी अकित है । इस बाण चिह्न द्वारा निर्धारित दिशा की ओर चलते रहने पर क्रमश 'र', '**क्ष**', तक आने पर, चूकि '**क्ष**' अक्षर पर दो बिन्दु है अत इस '**क्ष**' को दो बार पढ़ेगे, इसी प्रकार जहाँ चार बिन्दु होगे, उस अक्षर को चार बार पढ़ना है । अभी तक श्लोक इस तरह बना है– "**रक्ष यक्षक्ष**" । अब आगे बाण की दिशा के अनुसार आगे चलने पर, '**रा**', '**धा**', '**र**','**र**', '**क्ष**', '**नो**', '**नो**', '**य**', '**नो**, '**क्ष**', '**र**', '**र**', '**ला**', '**य**', '**क्ष**', '**र**' '**धा**', '**ला**', '**ला**', '**धा**', और '**र**' । यहाँ '**धा**' के समीप चार बिन्दु और '**र**' के समीप भी चार बिन्दु है । अत इसे उल्टा सीधा चार बार पढ़ना है । जैसे, "**धार धार, रधा रधा** ।

इस तरह मूल-श्लोक के अर्न्तगत यह शलोक, "**रक्ष यक्षक्षराऽऽधार । रक्ष नो । नो य । नोऽक्षर।**" और "**रलाऽयक्ष । रधालालाऽऽ धार । धाररधा । रधा** ।।' निकल आता है । यहाँ "**भारत-देश बन्ध**" द्वितीय श्लोक (चित्र क्रमाक-४) पढ़ने की विधि सपन्न हुई ।

✿ ✿ ✿

3
विद्याष्टकस्य तृतीयकाव्यम्
कलशबन्धः
नो!नोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार
नो!य!लाऽ क्षक्षलाय नो
नोनोऽक्षधाऽ क्षलाऽधार!
नो!यलाऽ क्षक्षलाय नो
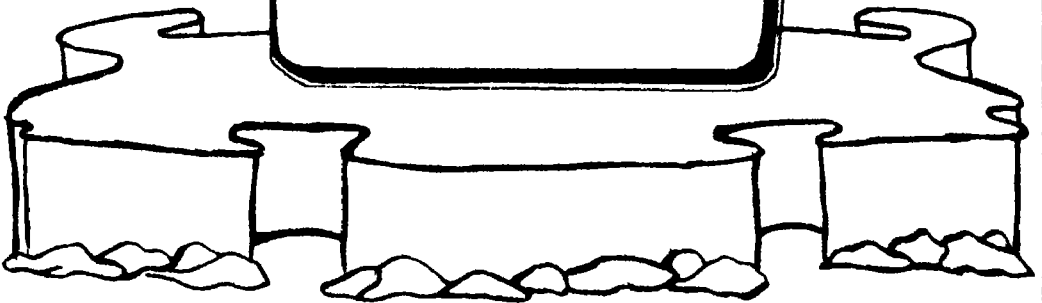
अथेदानीमपि यद्द्वात्रिंशदक्षरोपेताऽ नुष्टुप्काव्य विद्याष्टकस्य प्रथममथवा सर्वतोभद्रबन्धसञ्ज्ञक च तत्काव्य चतु षष्टीकोष्टकोपेतवर्गाकारमध्ये गतप्रत्यागतपादक्रमेण सस्थाप्य तावत्तस्मिन्नेव वर्गाकारमध्ये कलशचित्रमपि सस्थाप्य तस्य चित्राकारानुसारेण सीमागताऽक्षरानेव सम्प्राप्नुवन्नपूर्वपरमार्थज्ञानदातृत्वगुणधारिण परमोपास्याऽऽ यतनस्वरूप विपश्चिज्जनज्ञानदानाश्रयञ्चैन श्रीगुरुवर कलशबन्धस्वरूपतृतीयकाव्येन स्तोतुमाह–

नो! नोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! नो ! य ! लाऽ क्षक्षलाय नो ।
नोनोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! नो ! यलाऽक्षक्षलाय नो ॥ ३ ॥

–अन्वयार्थः–

हे अक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! (त्व) न (अस्माक) न (पूज्य·) न (जिन) (असि) हे य ! ल ! न ! (अत एव) अक्षक्षलाय (त्व) न (अस्माक) न (उपास्य) (असि) हे न ! यल ! हे अक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! (त्व) न· (अस्माक) अक्षक्षलाय नोन (असि) ॥ ३ ॥

–संस्कृत-टीका–

हे अक्षधाक्षेति–

हे **अक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! (हे आत्मधर्मज्ञानदायकपात्रत्वगुणाधार !)** अक्ष[1] आत्मा इत्यर्थ । धो[2] धर्म इत्यर्थ । अक्षो[3] ज्ञान बोधो वार्थ । ला दाता दायको वार्थ । आधार[5] पात्र इत्यर्थ । अक्षस्य आत्मनो वा धो धर्म इति वा आत्मधर्म । तस्येति यावत् । अक्षो ज्ञान । ला दायक । अर्थात् तस्याऽऽत्मधर्मस्य ज्ञानदायक आत्मधर्मज्ञानदायकोऽथवाऽक्षधाऽक्षला वेति । तस्याऽऽत्मधर्मज्ञानदायकस्य यस्य पात्रताऽथवाऽऽधार स आत्मधर्मज्ञानदायकाऽऽधारोऽथवाऽऽ-

–सन्दर्भाः–

(१) अक्ष आत्मनि वा शीले स्वभावे वाऽपि वेदने । इति च (स हि आ)
(२) ध आचारे गुणे धर्मे । इति च (स हि आ)
(३) अक्षो धुरात्मनोर्ज्ञाने । इति च (स हि आ)
(५) आधारस्त्वास्पदे पात्रे । इति च (प च)

त्मधर्मज्ञानदायकपात्रत्वगुणाधारस्तत्सम्बुद्धौ हे आत्मधर्मज्ञानदायकपात्रत्वगुणाधार ! अथवा हे अक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! इति ।

(त्वं) न (अस्माक) न[६] (पूज्य) न[७] (जिन) (असि)– अर्थात्त्वमस्माक पूज्यो जिनोऽसीत्यर्थ ।

हे य ! ल ! न. ! (हे सकलसयमाधिप ! हे सयमस्य सर्वोच्चसाधक ! हे महामानवेन्द्र !) य[८] सयम सम्यक्चारित्र वार्थ । ल[९] इन्द्र स्वामी वार्थ । ना महामानवो महात्मा वार्थस्तत्सम्बुद्धौ हे न ! हे मानवेश ! हे मानवमहात्मन् ! हे सयमस्य सर्वोच्चसाधक ! वेत्यर्थ ।

(अत एव) अक्षक्षलाय (त्व) न (अस्माक) न (उपास्य.) (असि)– अत एवात कारणात् । अक्ष आत्मा क्षलाय शोधनाय वेत्यर्थ । आत्मविशोधनाय-प्रक्षालनाय तस्य परिशोधनार्थ वा । त्व नोऽस्माक । न[१२] उपास्य इत्यर्थ । अर्थाद्धे गुरो ! त्वमस्माकमात्मप्रक्षालनायोपास्योऽसीत्यर्थ ।

हे न ! यल ! (हे मानवमहात्मन् ! हे सयमेन्द्र ! अथवा मानवसयमेन्द्र ! इत्यर्थ)

हे अक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! (हे विद्वज्जनज्ञानदात्राश्रय !) अक्षो ज्ञानमित्यर्थ । ध[१३] धन वित्त वेत्यर्थ । अक्षो ज्ञानमेव यस्य ध धन स ज्ञानधनो ज्ञानधनमस्याऽस्तीति ज्ञानधनी तेषा ज्ञानधनिनामपि । अक्षलाऽऽधारोऽर्थादक्षो ज्ञान । ला दाता इत्यर्थ । आधार स्थानमाश्रयो वार्थ । अर्था-ज्ज्ञानधनिकज्ञानदायकाऽऽश्रयोऽथवाऽक्षधाऽक्षलाधारोऽथवा विद्वज्जनज्ञानदात्राश्रय इत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे विद्वज्जनज्ञानदात्राश्रय ! अथवा हे अक्षधाऽक्षलाऽऽधार ! वेत्यर्थ ।

(त्व) न (अस्माक) अक्षक्षलाय नोन (असि) (त्वमस्माक ज्ञानप्रमार्जनायाऽथवाऽऽत्मज्ञानप्रकाशनाय वा सर्वोत्कृष्टोसीत्यर्थ) अक्षो ज्ञानमित्यर्थ । क्षल प्रक्षालस्तस्य प्रमार्जन प्रक्षालन प्रकाशन द्योतन

–सन्दर्भाः

६-७ नकारो जिन पूज्ययो । इति च (वि लो)
८ योऽनिले सयमे गतौ । इति च (प च)
९ ल स्वामिनीश्वरे चेन्द्रे । इति च (वि लो)
१२ नस्तूपास्ये समाराध्ये पूज्यमाननीयोरपि । इति च (वि लो) (एकार्थका)
१३ ध धने वा सपदाया द्रविणे विभवेऽपि वा । (एकार्थका)

वेत्यर्थ । तस्मै ज्ञानप्रमार्जनायाऽऽत्मप्रकाशनाय वा नोनोऽर्थान्न ऊनो[14] नोनो न्यूनो दभ्र स्तोकोऽल्पो वा त्व नासीत्यर्थ । अर्थात्त्वमस्माक कृते आत्मज्ञानप्रकाशनार्थ सर्वोत्कृष्टोऽसीत्यर्थ ॥३॥

हिन्दी-टीका

अये महागुरो ! आत्म-धर्म-स्वरूप[100] परमार्थ-ज्ञान-दान[101] देने की पात्रता आपमे अपूर्व है। अत इस समय उस ज्ञान के आप सी सर्वोत्तम आधार हैं । हे **श्रमणोत्तम**[102] ! आप अपनी पूज्यता से सर्वोत्तम-दशा को प्राप्त है, अत आप इस समय मे साक्षाज्जिन हैं । हे **यतीश्वर !** सकल सयम के आप सर्वोच्च-साधक[103] है अत आप उत्तम-सयमाधिपति[104] हैं । आप ज्ञानियो के भी महाज्ञानी हैं । ज्ञानी मुनि जनो को ज्ञान देने की आपकी पात्रता सर्वोपरि है ।

अये देव ! हे मानवाधिपते ! आप हम सबकी आत्मशुद्धि[105] (सशोधन) के लिए सर्वोत्तम उपास्य[106] आयतन[107] हैं, अर्थात् आपकी उपासना से हमारे कठिनतम कर्म भी शीघ्र ही कट जाते हैं अत आप सर्वोत्तम आयतन है । हे **मानवमहात्मा !** हे **सयमेश्वर** आप वास्तव मे मानव महात्मा भी हैं और सयमेश्वर भी हैं, क्योंकि आपका सयम मानव मात्र की अपेक्षा से सर्वोत्तम है अत आप मानव-सयमेन्द्र भी हैं और मानव-महात्मा भी है । हे **विद्यावारिधे**[108] ! आपकी विद्या (ज्ञान) की महिमा अपरम्पार है क्योंकि आपके वचनो को सुनकर विद्वत्समुदाय[109] भी मन्त्र मुग्ध होता है और तत्त्व निर्णय के लिए आतुर रहता है, अत आप विद्वज्जन-ज्ञान-दान[110] के भी एक मात्र आश्रय है । हे **ज्ञान के भण्डार !** आपमे आध्यात्मिक[111] ज्ञान इतना सर्वश्रेष्ठ है कि उस ज्ञान को प्राप्त कर कोई भी भव्य-जीव[112] आसानी से अपना आत्म-कल्याण[113] कर सकता है अत हम सबके सम्यग्ज्ञान के सवर्द्धन के लिए आप ही सर्वोत्कृष्ट है, एव अपूर्व महात्मा हैं। ज्ञान को घोषित अर्थात् प्रकाशमान करने मे आप श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

—सन्दर्भाः

१४ ऊनो न्यूनेऽपि दभ्रेऽपि स्तोके चाल्पेऽपि सम्मत । (एकार्थका)

(१)
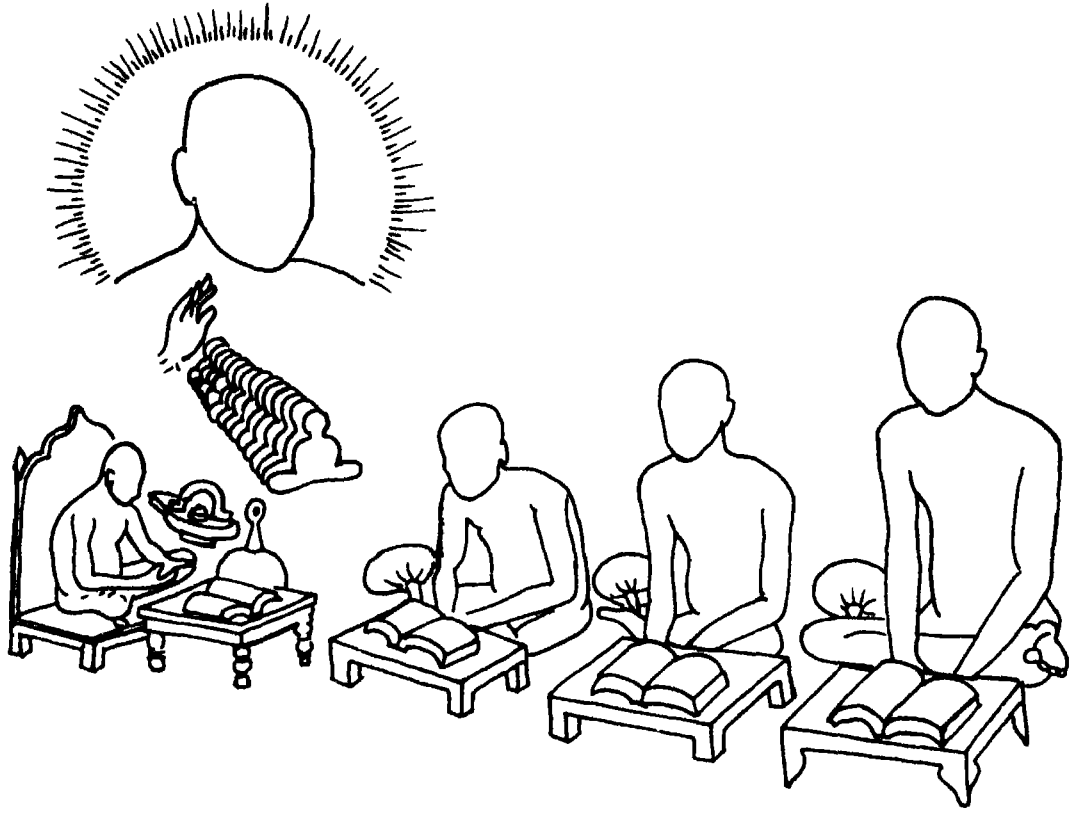
अपूर्व रही है क्षमता तुममें, परमारथ को देने की।
पूज्य हुई यह जगती तुमको, जिनता-मय लख लेने की॥
आप रहे साधक संयम के, कहूँ तुम्हे संयम-स्वामी।
मानवेन्द्र जगती पर तुम हो, तुम्हीं शुद्ध अन्तर्यामी॥
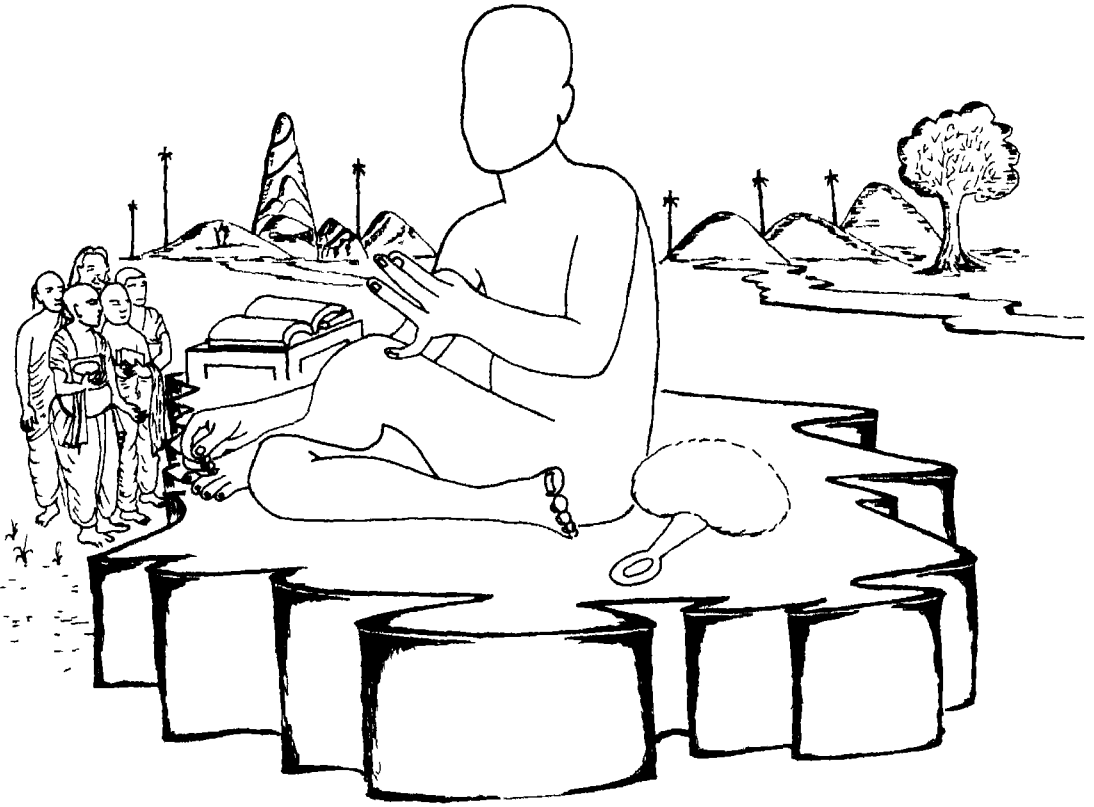
(२)

आप हमारी आत्म-शुद्धि के, परमालय भी प्राप्त रहे।
संयम के ईश्वर कहलाते, मनुज मात्र के आप्त रहे।।
विद्या के अद्‍भुत सागर हो, मन्त्र मुग्ध होते विद्वान।
सुधी जनो के ज्ञानाश्रय हो, अनुपम तेरा तत्त्व-ज्ञान।।
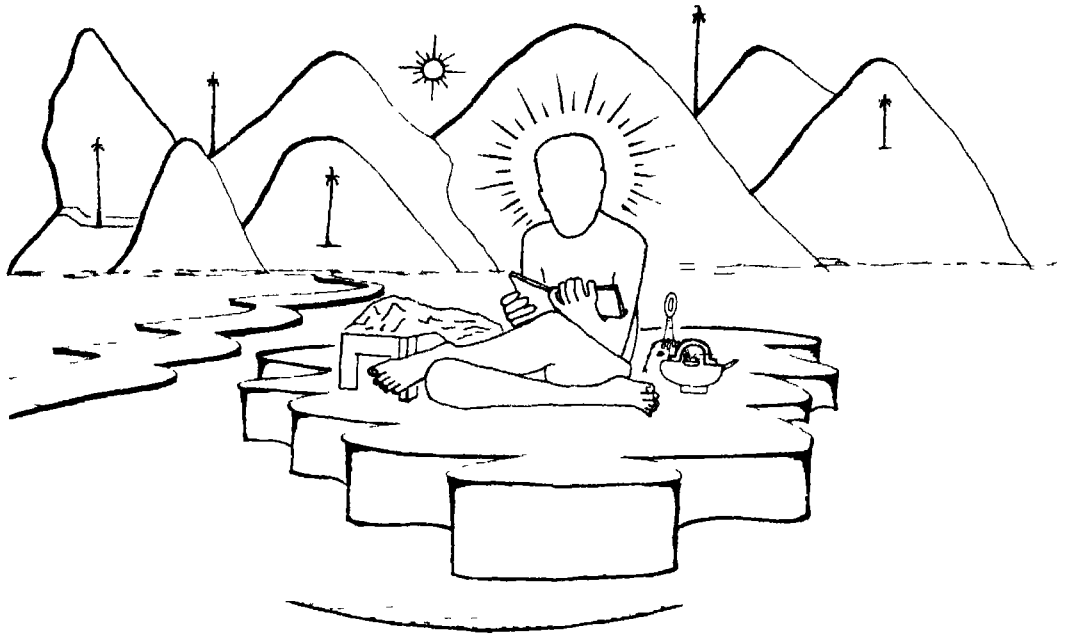
(३)

ज्ञान रहा भण्डार तुम्हारा, सर्वश्रेष्ठ है आतम-ज्ञान।
अज्ञानी गर भव्य रहा तो, कर लेगा निश्चित कल्याण॥
हम सबके आराध्य तुम्हीं हो, बढ़े तुम्हीं से सम्यग्ज्ञान।
आप रहे जग मे सर्वोत्तम, श्रमणोत्तम हमको वरदान॥

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धे तृतीयकाव्यम्

कलश बन्धः
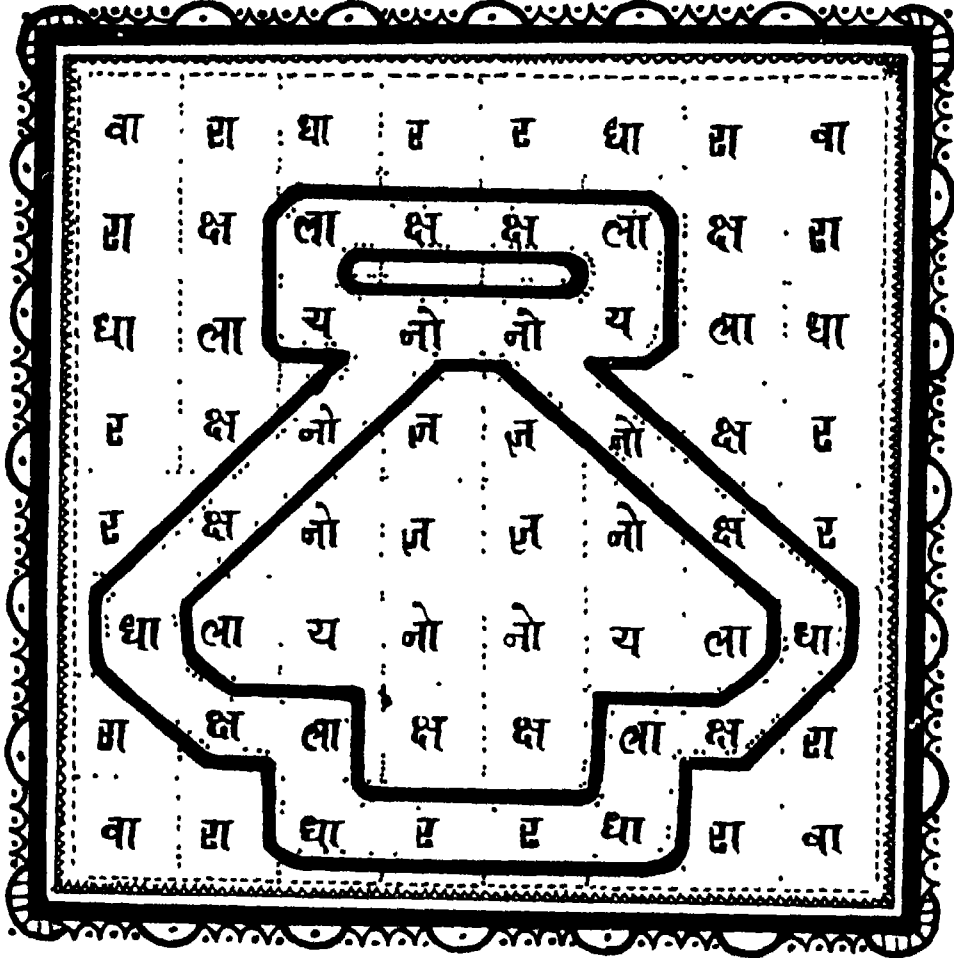
(चित्र क्रमांक—५)

विद्याष्टकम्

नो! नोऽक्षधाऽ क्षलाऽऽधार!
नो! य! लाऽ क्षक्षलाय नो॥
नोनोऽक्षधा ऽक्षलाऽऽ धार!
नो! यलाऽ क्षक्षलाय नो॥3॥

वाराधारर! धाराबा-
राक्षलाक्ष! क्षलाक्षराः
धालाः! य! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ! नोऽक्षर!॥1॥

कलशबन्ध
तृतीय श्लोक (चित्र क्रमांक ५) को पढ़ने की विधि

चित्र क्रमाक-५ मे एक चौसठ कोष्टकवाला वर्ग है। इस वर्ग के अतर्गत एक कलश का चित्र है। पूरे चौसठ कोष्टको मे **'विद्याष्टक'** का मूल प्रथम श्लोक, **"वाराधारर। धारावा राक्षलाक्ष। क्षलाक्षरा। धाला । य। नो नोऽयलाधा रक्ष नोऽज्ञज्ञनोऽक्षर।"** अनुष्टुप् (३२ अक्षरो वाला) छद मे विद्यमान है। वर्ग के अदर कलश आकृति मे अकित अक्षर भी सम्मिलित है। प्रथम श्लोक को पढ़ते समय कोष्टक के एव कलश के चित्र मे अकित अक्षरो को भी पढ़ना होगा। परन्तु, केवल कलश के अन्तर्गत अक्षरो को पढ़ेगे तो ३२ अक्षरो वाला अनुष्टुप् छन्द निकल आयेगा जिसके पढ़ने की विधि निम्नप्रकार है –

कलश के कण्ठ पर दायी ओर अकित **'नो'** अक्षर को पढ़ते हुए नीचे की ओर अकित अक्षर **'नो'**, **'क्ष'**, **'धा'**, **'क्ष'**, **'ला'**, **'धा'**, और **'र'** को पढ़ने पर, **"नो। नोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार"** इस प्रथम पद की सिद्धि होगी।

कलश के कण्ठ पर दायी ओर अकित **'नो'** अक्षर की सीध मे दाये तरफ से ऊपर की ओर घूमते हुए और बाये की तरफ कठ पर स्थित **'नो'** अक्षर तक आने पर, द्वितीय पद, **"नो। यलाऽक्षक्षलायनो"** की प्राप्ति होगी।

कलश के कण्ठ पर बायी ओर अकित **'नो'** अक्षर को पढ़ते हुए, नीचे की ओर अक्षर **'नो'**, **'क्ष'**, **'धा'**, **'क्ष'**, **'ला'**, **'धा'** और **'र'** को पढ़ने पर, **"नो। नोऽक्षधाऽक्षलाऽऽधार"** इस तृतीय पद की सिद्धि होगी।

कलश के कण्ठ पर बायी ओर अकित **'नो'** अक्षर की बायी ओर सीध मे लिखित अक्षर **'य'** को पढ़ते हुए, ऊपर की ओर बढ़ते हुये, दायी ओर घूमते हुये क्रमश **'ला'**, **'क्ष'**, **'क्ष'**, **'ला'**, **'य'**, **'नो'**, अक्षर पर समाप्त करने पर, चतुर्थ-पद **"नो ! यलाऽक्षक्षलायनो"** की प्राप्ति होगी। इस तरह मूल श्लोक मे स्थित **"कलश-बन्ध"** पढ़ने की विधि समाप्त हुई। □ □ □

4
विद्याकरस्य चतुर्थकाव्यम्
श्रीफलबन्धः
रलाऽ लाक्ष! क्षनोनोऽक्ष!
रक्ष नोऽनोऽ क्षलायनो ॥
रलाऽ लाक्ष! क्षनो नोऽक्ष!
रक्ष नो! नोऽक्षला! यनो ४

अथ पुरतो विद्याष्टकस्य पूर्वोक्तप्रथममूलकाव्यबन्धमाश्रित्य तस्मिन्नेव बन्धमध्येऽ धुना श्रीफलचित्र सस्थाप्य पुनस्तेन श्रीफलाकारेण सीमाङ्कितानक्षरानेव केवलान् परिगृह्णन्नुभयविधपरिग्रहशून्यमनुपम महात्मानमात्मतनुतेजोमय यथागमश्रमणसस्कृति-परिरक्षकमशेषदेवगणसमर्चितञ्चैन श्रमणेश्वर श्रीफलबन्धस्वरूपचतुर्थकाव्येन स्तोतुमाह–

रलाऽलाक्ष ! क्षनोनोऽक्ष ! रक्ष नोऽनोऽक्षलायनो !
रलाऽलाक्ष ! क्षनो नोऽक्ष ! रक्ष नो ! नोऽक्षला ! यनो ॥४॥

–अन्वयार्थः–

हे रल ! अलाक्ष ! हे अक्ष ! (त्व) क्षनोन (असि) **नथापि अन नो** असि । (एव) (त्व) **अक्षलाऽयन** (असि) **हे रल ! अलाक्ष ! हे न** (अस्माक) **अक्ष !** (त्व) **क्षन** (असि) **हे न ! हे अक्षला. ! हे यनो ! न** (अस्मान्) **रक्ष रक्ष** ॥४॥

–संस्कृत-टीका–

हे रलेति–

हे रल ! अलाक्ष ! (हे तेजोनाथ ! अनाथात्मन् !) र[1] तेज कान्तिर्वार्थ । ल इन्द्र स्वामी नाथो वार्थ । तेजसो नाथस्तेजोनाथस्तत्सम्बुद्धौ हे तेजोनाथ ! इत्यर्थ । ल नाथोऽलोऽनाथ इत्यर्थ । अलानामनाथाना वा चासावक्ष आत्मा वा सोऽलाक्षोऽथवाऽनाथात्मा । तत्सम्बुद्धौ हे अलाक्ष ! हे अनाथात्मन् ! वेत्यर्थ ।

हे अक्ष ! (त्व) क्षनोन (असि) हे अक्ष ! हे महात्मन् ! (त्व) क्षो[2]ऽन्तो नाश क्षीणो नष्टो वार्थ । न[3] सपद्धनमथवा बाह्यचेतनाचेतनपरिग्रहो वार्थ । अन्तेन वा चेतनाचेतनबाह्य-धनेन योऽसौ

–सन्दर्भाः–

(१) रोऽग्नौ चोग्रेऽपि तेजसि । इति च (प च)
(२) क्षोऽन्ते नाशेऽपि हानौ स्यात्क्षेत्रे क्षेत्रिणि राक्षसे । इति च (स हि आ)
(३) नस्तु सम्पन्नतायाञ्च सम्पत्तौ मण्डलेऽपि च । इति च (स हि आ)

ऊनो दुर्बल क्षीणो वा स नाशधनोनोऽथवा नष्टधनक्षीणोऽथवा यस्य त्यागमाहात्म्येन धनमन्त गत सोऽन्तधनोऽन्तधनेन च योऽसावूनोऽत्यन्तदुर्बलोऽर्थान्निर्ग्रन्थ सोऽन्तधनदुर्बलोऽथवा क्षीणधनदुर्बलोऽथवा क्षनोन इत्यर्थ । अथवा शिष्यसपद विहाय योऽसौ अन्यपरिग्रहेणाऽन्त यातवान्सोऽन्तधनदुर्बलोऽथवा क्षनोन इत्यर्थ । अये श्रीगुरो ! त्व क्षनोनोऽन्तधनदुर्बलोऽसीत्यर्थ अर्थादन्तधनेन दुर्बलोऽसीत्यर्थ ।

(तथापि) अन नो (असि) तथापि (त्व) इत्यध्याहार्य्य न धन सपद्वाऽर्थ । नो नोऽ नोऽर्थादधनो धनरहितो वार्थ । नो न नहीत्यर्थ । अर्थात्तथापि त्वमधनो नो असि, निर्धनो नो असि ज्ञानधनसपदापेक्षया त्व सधनोऽसि वेत्यर्थ ।

(एव) त्व अक्षलाऽयन (असि)– एवमित्यध्याहार्य्य त्वमर्थात् त्व श्रीगुरुवर । अक्ष आत्मा इत्यर्थ । ल इन्द्र प्रधानो वार्थ । अयोऽ सयमो वार्थ । न [४] रिक्तो विरहित शून्यो वार्थ । किमुक्तमेतत् । अक्षस्य आत्मनो ल इन्द्रोऽ सावित्यक्षेन्द्र अक्षलो वार्थ । अथवाऽऽत्मेन्द्र आत्मप्रधानो वार्थ । एवमात्मनि चाऽसौ प्रधान आत्मप्रधानोऽर्थाज्ज्ञान बोधो वेत्यर्थ । एवमात्मप्रधानस्य ज्ञानस्य वाऽसावयोऽसयम आत्मप्रधानाऽसयम । तेनाऽऽत्मप्रधानासयमेन न रहितो रिक्तश्चाऽसाविति आत्मप्रधानाऽसयमरिक्त । अर्थाज्ज्ञानस्याऽसयमेन रहित इत्यर्थ । कोऽसौ ज्ञानस्यासयम ? ज्ञानस्यासयमस्तस्य सरागदशा प्रमत्तदशा वेत्यर्थ । तस्मात्सरागदशातो रहितश्चासाविति विगतरागदशाऽप्रमत्तदशा वार्थ । अर्थात्किमुक्त भवत्येतत् । त्व श्रीगुरु परमवीतरागी अप्रमत्तोऽ क्षलायनो वाऽसीत्यर्थ ।

हे रल ! अलाक्ष !– (हे वात्सल्याधिपते ! अनाथरक्षक !) रो वात्सल्य । ल स्वामी अधिपतिर्वा । रस्य वात्सल्यस्य चासौ ल इन्द्रोऽधिपतिर्वा रलो वात्सल्याधिपतिर्वात्सल्यनाथो वार्थ । तत्सम्बुद्धौ हे रल ! हे वात्सल्याधिपते ! इत्यर्थ । अलोऽनाथ इत्यर्थ । क्षो नाश इत्यर्थ । न क्षोऽक्षोऽर्थादनाश इत्यर्थ । अलानामनाथाना वा अक्षोऽनाशो रक्षकोऽलाक्षोऽथवाऽनाथानाशस्तत्सम्बुद्धौ हे अलाक्ष ! अथवा हे अनाथानाश ! अथवा हे अनाथरक्षक ! इत्यर्थ ।

हे न (अस्माक) अक्ष ! (हे अस्माक महात्मन् !)

(४) नोऽविभक्तेऽपि शून्येऽपि रिक्ते स्यात्समरूपके । इति न (स हि आ)

(त्व) क्षनः (असि) त्वमित्यध्याहार्य्य क्षो[५] राक्षसो राक्षसभूतपिशाचेत्यादिदेवगणो वार्थ । न[६] स्तुत पूजित पूज्यो वार्थ । अर्थात् क्षै राक्षसादिदेवगणैर्न सस्तुत परिपूजितश्चासाविति राक्षसपूजितोऽथवा क्षनो वेत्यर्थ । किमुक्त भवति अये श्रीगुरो ! विद्यासागर ! त्व क्षनैरर्थाद्राक्षसादिदेवदुर्गतिर्देवगणैरपि पूजितोऽसि वेत्यर्थ ।

हे न !– (अये महामानव !)

हे अक्षला !– अक्षो बोध सम्यग्ज्ञान वार्थ । ला परिरक्षक । अर्थादद्यावधिवर्त्तमानयुगीयमुनिपरम्पराया जैनागमविहितयथार्थसम्यग्ज्ञानस्याऽर्थनिर्णयस्य वाऽभाव आसीत्तस्य सम्यग्ज्ञानस्य नवतरमुनिपरम्पराया परिरक्षितत्वादेष श्रीसद्गुरु सम्यग्ज्ञानपरिरक्षकस्तत्सम्बुद्धौ हे सम्यग्ज्ञानपरिरक्षक ! अथवा हे अक्षला ! वेत्यर्थ ।

हे यनो !– य सयम सम्यक्चारित्र वेत्यर्थ । नु[७] स्तोता उपासको वार्थ । एतत्किमुक्त । यस्य नु यनु अर्थात्सम्यक्चारित्रस्य सकलसयमस्य वा स्तोता उपासको वार्थ । तत्सम्बुद्धौ हे यनो ! अथवा हे आगमविहितसकलसयमोपासक ! इत्यर्थ । अर्थादितदागमविहितसकलसयम निजीयजीवनचर्याया नवतरमुनिपरम्परायाञ्च परिरक्षितत्वात्सयमोपासकस्त्वमित्यर्थ ।

न (अस्मान्) रक्ष रक्ष– अस्मानारक्षाऽऽरक्षेत्यर्थ ॥४॥

✿ ✿

(५) क्षोऽन्तराक्षसयोरपि । इति च (स हि आ)
(६) न सस्तुते पूजिते वा पूज्ये मान्ये मनो मया । इति चार्ष
(७) नुस्तोतरि नुतावपि । इति च (वि लो)

हिन्दी-टीका

हे सौन्दर्याधिपते ! आप आत्मा की अपेक्षा से तो सर्वोत्तम एव सुन्दर है ही, किन्तु आपकी यह औदारिक-देह* भी इतनी सुन्दर है कि वह अपनी कान्ति से सहज ही जनो को आकर्षित करती है । इसलिए बड़े लोग भी आपको तेजोनाथ कहते हैं । **हे निखिल-जन-आश्रय-दाता !** आप समस्त प्राणी मात्र के कल्याण के लिए सर्वोत्कृष्ट कामना एव करुणा-भाव को धारण कर रहे है अत विद्वज्जन भी आपको अनाथनाथ[११४] कहते हैं । **हे महात्मन्** ! आप चेतनाचेतन[११६] बाह्य-परिग्रहरूप[११५] धन-सपदा से सर्वथा शून्य है दुर्बल है अत आप निर्धन है । तथापि ज्ञान सपदा की अपेक्षा से आप श्रुतजलधि[११७] है अर्थात् ज्ञान के सागर है अत आप सधन/ऐश्वर्यवान है । **हे प्रभो** ! आत्मा के भीतर ज्ञान-गुण प्रधान माना गया है । वह प्रधान-ज्ञान जब असयम-दशा मे स्थित रहता है तो नियम से प्रमत्त[११८] और सराग रहता है परन्तु आप प्रमत्त और सराग दोनो से ही परे वीतराग हैं / अप्रमत्त[११९] है । **हे गुरो** ! आप कल्याण के परम निधान हैं अत स्वभावत ही आप अनाथो के रक्षक हैं । **हे महात्मन्** ! आप अनुपम महात्मा है, अत यक्ष राक्षसादि देवगण[१२०] के द्वारा भी समुचित रीति से आप समर्चित[१२१] है । **हे मानवश्रेष्ठ** ! इसमे कोई सदेह नही कि आप सम्यग्ज्ञान[१२२] के परिरक्षक भी है क्योंकि वर्तमान कालीन श्रमण-सस्कृति मे विद्यमान जिनागम[१२४] के सूक्ष्म-अर्थ-तत्त्व[१२३] निर्णय के अभाव को नवीनतमश्रमण परपरा मे यथागमरूप[१२५] से आरक्षित किया है अर्थात् नयी मुनि परम्परा मे जिनागम के सूक्ष्म तत्त्व का बोध आपने किया है । **हे सकल सयम के उपासक** ! आपने सकल सयमरूप सम्यक्चारित्र[१२६] को यथागम अपनी जीवन चर्या मे स्वीकृत किया है एव यथागम ही अपनी परपरा मे स्थिर किया है अत आप एक आगमनिष्ठ सयमोपासक-साधु हैं । **हे जैनागम के साक्षात् देवता** ! तुम और भी अत्यधिक करुणा-दृष्टि बनकर आगमानुसार हम सब की रक्षा करो सतत ही हम सब की रक्षा करो ॥४॥

❁ ❁

(१)

तन भी सुन्दर मन भी सुन्दर, सुन्दरता की मूरत हो।
अमिताभा आकर्षित करती, तपो-तेज-मय-सूरत हो।।
तेजो नाथ आप कहलाते, निखिल विश्व आश्रय-दाता।
करुणा धारक अनाथ नाथ हो, ज्ञानी तो हर क्षण गाता।।

(२)

जड़ हो या होवे चेतन का, संग शून्य हो रंक बने।
रहे परन्तु ज्ञान-संग-मय, वीतराग अकलंक बने।।
हे गुरुवर! जग के उपकारक, आप रहे कल्याणक धाम।
राक्षस अरू यक्षादि देव से, अर्चित पूजित तेरा ज्ञान।।
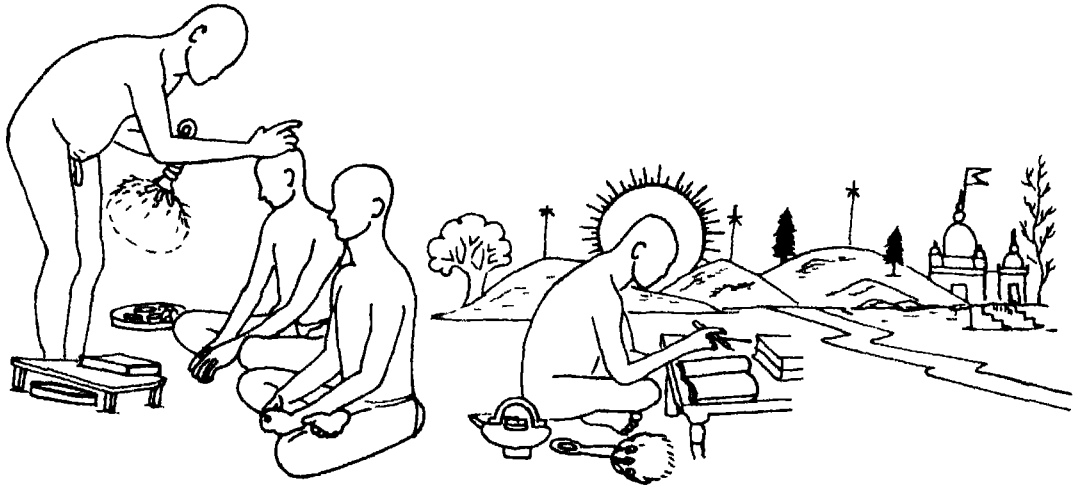
(३)

आगम रक्षक कुशल परीक्षक, तत्व-ज्ञान दे शिष्यों को।
साकार किया आगम जीवन में, और कराया शिष्यो को।।
जैनागम के तुम्ही देवता, और हमें संयमदाता।
आगम जैसी रक्षा करना, विनती तुमसे परित्राता।।

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धे चतुर्थकाव्यम्

श्रीफलबन्धः

(चित्र क्रमांक—६)

वा	रा	धा	र	र	धा	रा	वा
रा	क्ष	ला	क्ष	क्ष	ला	क्ष	रा
धा	ला	य	नो	नो	य	ला	धा
र	क्ष	नो	ज	ज	नो	क्ष	र
र	क्ष	नो	ज	ज	नो	क्ष	र
धा	ला	य	नो	नो	य	ला	धा
रा	क्ष	ला	क्ष	क्ष	ला	क्ष	रा
वा	रा	धा	र	र	धा	रा	वा
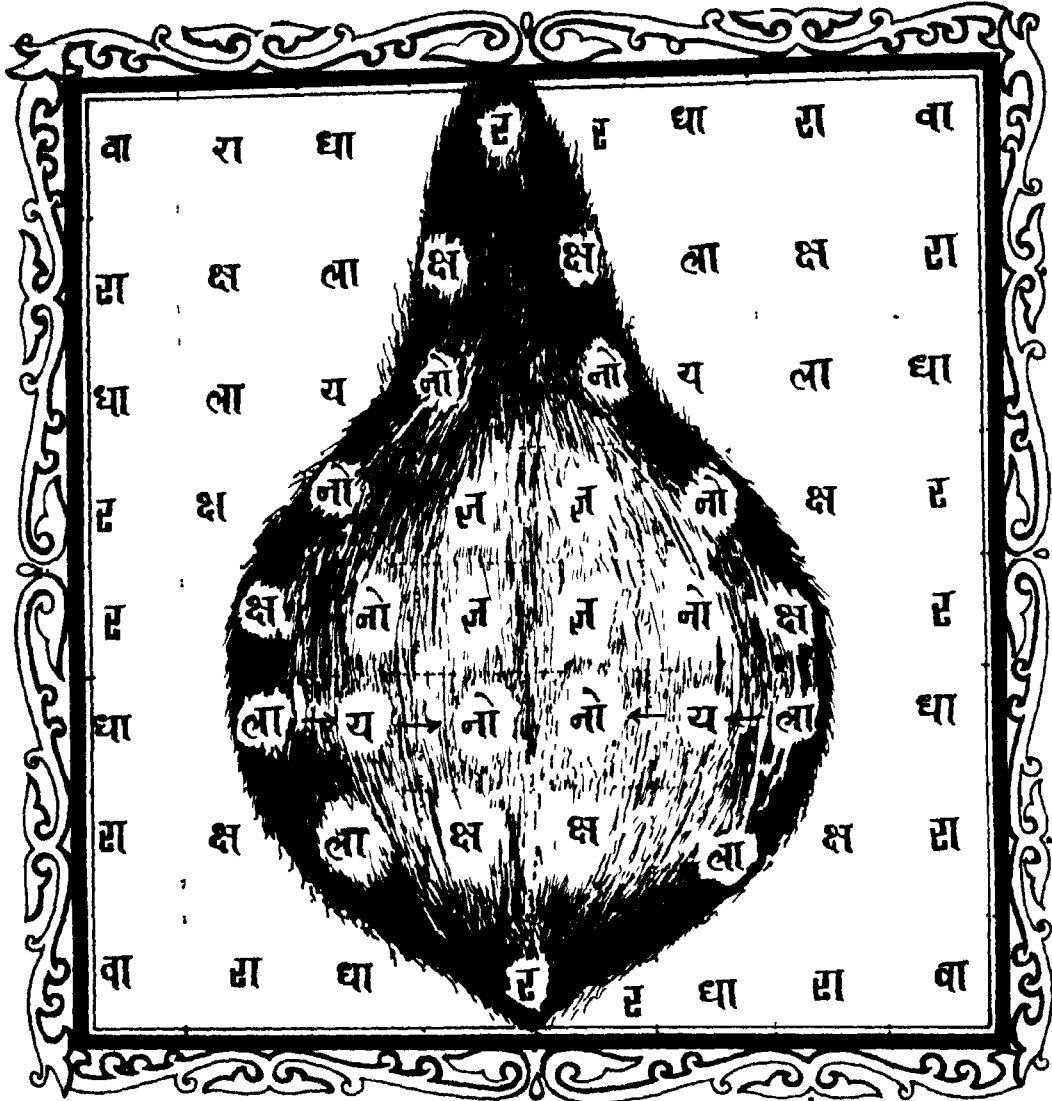
– विद्याष्टकम् –

रलाऽ लाक्ष ! क्षनोनोऽक्ष !
रक्ष नोऽनोऽक्षलायनो ॥
रलाऽ लाक्ष ! क्षनो नोऽक्ष !
रक्ष नो ! नोऽक्षला ! यनो ॥4॥

वाराधारर ! धारावा-
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा:
धाला: ! य ! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर ! ॥1॥
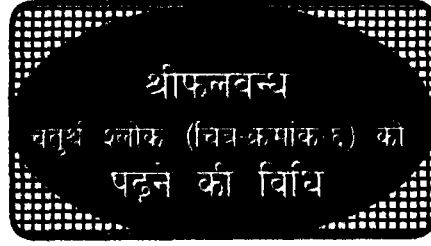
चित्र क्र ६ मे एक चौसठ कोष्टको वाला वर्ग है । इस वर्ग के अन्तर्गत एक श्रीफल का चित्र है। पूरे ६४ कोष्टको मे मूल-प्रथम-श्लोक, "**वाराधारर ! धारावा, राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा । धाला ! य ! नो नोऽयलाधा, रक्ष नोऽझझ ! नोऽक्षर ॥१॥**" यह ३२ अक्षरोवाला अनुष्टुप् छन्द विद्यमान है ।

वर्ग के अन्दर श्रीफल-बन्ध मे अकित अक्षर भी सम्मिलित है । प्रथम श्लोक को पढ़ते हुए कोष्टक के एव श्रीफल के चित्र मे अकित अक्षरो को भी पढ़ना होगा, परन्तु केवल श्रीफल के अतर्गत सीमान्त और मध्य मे बाण से निर्देशित अक्षरो को पढ़ेगे तो चौथा श्लोक, ३२ अक्षरो वाला, अनुष्टुप् छन्द,"**रलाऽलाक्ष ! क्षनोनोऽक्ष ! रक्ष नोऽनोऽक्षलायनो । रलाऽलाक्ष ! क्षनोनोऽक्ष ! रक्ष नो ! नोऽक्षला ! यनो**" निकल आवेगा । जिसके पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है–

श्रीफल के तल मे दक्षिण दिशावाले भाग पर नीचे **'र'** अक्षर से दाई तरफ सीमान्त से उत्तर की ओर बढ़ते हुए क्रमश **'ला'**, **'ला'**, **'क्ष'**, (इस **'क्ष'** को दो बार पढ़े) **'नो'** 'नो', **'क्ष'**, 'र', तक पढ़कर, फिर सीमान्त से ही बायीओर नीचे उतरते हुए, **'क्ष'**, **'नो'**, **'नो'**, **'क्ष'**, **'ला'** को पढ़कर दायी ओर लिखित एव बाण चिन्ह द्वारा निर्देशित, **'य'** और **'नो'** अक्षर पर समाप्त करने पर "**रलाऽलाक्ष ! क्षनोनोऽक्ष, रक्ष नोऽनोऽक्ष लायनो**" ये दो पद प्राप्त होगे ।

फिर पहिले के समान ही दक्षिण की ओर नीचे श्रीफल के तल मे अकित **'र'** अक्षर से प्रारभ कर, बायी तरफ श्रीफल के सीमान्त अक्षरो को पढ़ते हुये ऊपर की ओर बढ़ने पर क्रमश **'र'**, **'ला'**, **'ला'** **'क्ष'**, (इसे दो बार पढ़ना है), **'नो,'** **'नो'**, **'क्ष'**, **'र'**, तक पढ़कर यहा से दायी तरफ सीमान्त से नीचे चलते हुये, **'क्ष'**, **'नो'**,**'नो'**, **'क्ष'**, **'ला'** को पढ़ते हुये बायी तरफ बाण चिन्ह द्वारा निर्देशित, **'य'** और **'नो'** अक्षर पर समाप्त करने पर, "**रलाऽलाक्ष ! क्षनो नोऽक्ष ! रक्ष नो ! नोऽक्षला ! यनो**" ॥ ये अन्तिम दो पद प्राप्त होगे । इस तरह मूल-श्लोक, **'वाराधार"** आदि मे अकित "**श्रीफल-बन्ध**" मे चतुर्थ-श्लोक, को पढ़ने की विधि समाप्त हुई।

✿ ✿ ✿

5
स्वस्तिक बन्धः
विद्याष्टकस्य
पञ्चमकाव्यम्
नो ! नोऽज्ञज्ञ ! नोऽयक्ष !
नोऽज्ञनोऽ ! य यनोऽक्षयः॥
यक्षनोऽ ज्ञज्ञनो नो नो !
क्षयनोऽज्ञ ! ज्ञनोऽक्षयः।५ ॥

अथाऽधुना विद्याष्टकस्य तस्मिन्नेव सर्वतोभद्रबन्धसञ्ज्ञकमूलप्रथमकाव्यमध्ये स्वस्तिकचित्र सस्थाप्य तस्मिन्स्वस्तिकमध्ये सस्थिताश्चाऽक्षरान् 'बन्धविधिवत्' परिगृह्णन्सकलसत्त्वसस्तुतमहामानवमनुकरणीयसयमनिधान विपश्चित्साधुजनस्तोमस्तोम्यञ्चैन यतीश्वर स्वस्तिकबन्धस्वरूपपञ्चमकाव्येन स्तोतुमाह–

नो ! नोऽज्ञज्ञज्ञ ! नोऽयक्ष !, नोऽज्ञनो ! ऽय यनोऽक्षयः ।
यक्षनोऽज्ञज्ञनो नो नो, क्षयनोऽज्ञ ! ज्ञनो ! ऽक्षयः ॥५॥

–अन्वयार्थः–

हे न (त्व) न (असि) हे **अज्ञज्ञज्ञ** ! **हे अयक्ष** ! (त्व) न (असि) हे **अज्ञनो** ! **अक्षय** यन न (त) अय । **यक्षन** (स) अज्ञज्ञन. (त) नो अय । (यत स) नः **(अस्माक) क्षयन** । हे अज्ञ ! हे **ज्ञनो** ! (अत) **अक्षय** (अय) ॥५॥

–संस्कृत-टीका–

हे न इति–

हे न (हि महामानव !)

(त्व) न (असि)– (त्व सर्वसस्तुत असि)

हे अज्ञज्ञज्ञ !– (अज्ञानिना शास्त्रज्ञविचक्षणपुरुष !) अज्ञ आगमज्ञानविहीनजन इत्यर्थ । ज्ञ शास्त्रज्ञ आगमशास्त्रज्ञानज्ञाता वेत्यर्थ । ज्ञो विचक्षणपुरुष पडितो वार्थ । अज्ञानामागमज्ञानविहीनाना जनाना कृते योऽसौ ज्ञज्ञोऽर्थात् शास्त्रज्ञविचक्षणपुरुष स आगमज्ञानविहीनशास्त्रज्ञविचक्षणमहापुरुषस्तत्सम्बुद्धौ हे जिनागमज्ञानविहीनशास्त्रज्ञविचक्षणमहापुरुष ! अथवा हे अज्ञज्ञज्ञ ! इत्यर्थ ।

हे अयक्ष ! (अपयशान्तक ! अथवा हे अस्माक कीर्तिमन् !) यो यश, अयोऽयशोऽपयशो वार्थ । क्षोऽन्तको विनाशकोऽस्माकमपयशान्तकोऽथवा कीर्तिमान् वेत्यर्थ ।

(त्व) न (असि)– (त्वमशेषजनोषास्योऽसि)

हे अज्ञनो ! अक्षय यन न (त) अय **(हि ज्ञानविरहितस्तोत ! (निजात्मान प्रति सबोधनमेतत्)**

गुरूपमोऽक्षय सयमविभव पूज्य समुपासनीयो वास्ति (त विभव) (त्व) अय) किचिज्ज्ञानत्वादयमज्ञोऽथवाबहुतरज्ञानाभावत्वाज्ज्ञानन्यून एवभूतो नुरर्थात्स्तोता ज्ञानन्यूनस्तोता स्तोकमतिस्तोता तत्सम्बुद्धौ हे अज्ञानिस्तोत ! हे अबुधस्तोत ! अथवा हे अज्ञनो ! वेत्यर्थ । अक्षयो विनाशरहित इत्यर्थ । यन य सयम न विभव इत्यर्थ, अर्थात्सयमविभव इत्यर्थ । न पूज्य अर्थाद्गुरूपम सयमविभव पूज्य समुपासनीयो वर्तत इत्यर्थ । तमविनाशक सयमविभव हे मुने ! हे निजात्मन् ! त्वमय त्व समेहि त्व प्राप्नुहि वेत्यर्थ ।

यक्षन (स) अज्ञज्ञन (त) नो (अय) (सयमविनाशकविभव. (स) अज्ञज्ञविभव (त) न सङ्गच्छस्व) य सयम 'सकलचारित्र वार्थ । क्षो विनाशकोऽपकारको वार्थ । न विभव सपद्वेत्यर्थ । अर्थात् सयमविनाशकविभव इत्यर्थ । अज्ञोऽबुधोऽज्ञानी वार्थ । ज्ञो बुध पण्डितो वार्थ । अर्थादज्ञानिना बुध पण्डित इत्यर्थ । नो विभव सपद्वार्थ । किमुक्तमेतत् । योऽसौ विभव सयमविनाशक सोऽबुधबुधाना विभवस्तमबुधबुधाना सयमविभव हे निजात्मन् ! त्व नो अय त्व मा समागच्छस्व त सयमविनाशकभूतमित्यर्थ ।

(यत स) न (अस्माक) क्षयन. (यस्मात् सोऽस्माक क्षयविभवो विनाशकारकविभव इत्यर्थ) यतो यत कारणात् । स स विभव । न अस्माक सयमधारकाणा जनाना । क्षयन–क्षयो नाशकोऽपकारको-वार्थ, न विभव सपद्वेत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । एवभूतो विभवोऽस्माक विनाशकविभव इत्यर्थ ।

हे अज्ञ ! हे ज्ञनो ! (हि बुद्धिहीन ! (आत्मन् !) हे ज्ञानिश्रमणानां स्तोत !) अज्ञो विवेकशून्यो बुद्धिहीनो वा तत्सम्बुद्धौ हे अज्ञ ! बुद्धिहीनात्मन् ! वेत्यर्थ । ज्ञनु ज्ञ ज्ञानिजना विचक्षणश्रमणा वेत्यर्थ । तेषा विचक्षणश्रमणाना नु स्तोता उपासको वेत्यर्थ । अर्थाज्ज्ञाना ज्ञानिश्रमणाना योऽसौ नु स्तोता स ज्ञनुस्तत्सम्बुद्धौ हे ज्ञनो ! अथवा हे विचक्षणश्रमणाना स्तोत ! वेत्यर्थ ।

(अत) अक्षय (अय) (अतस्त्व योऽविनाशको विभवस्तमेहि प्राप्नुहि वेत्यर्थ) यस्य क्षयो विनाशो वा न विद्यते सोऽक्षयोऽविनाशको वेत्यर्थ । अय सम्प्राप्नुहि समेहि वेत्यर्थ । अर्थात् अत कारणात्त्व हे यते ! योऽ सौ सयमविभवोऽ विनाशकोऽक्षयो वा त सयमविभव समेहि सम्प्राप्नुहि वेत्यर्थ ॥५॥

हिन्दी-टीका

हे समस्त-जीव-संस्तुत-महामानव ! आगम-ज्ञान[२७] के न होने से भटकते फिरते भव्यजन-समुदाय के लिए आप एक नवावतरित सम्यग्ज्ञान- चिन्तामणि हैं, अर्थात् आप ही एक नव-शास्त्रज्ञ[२८] विचक्षण[२९] महापुरुष है । **हे समस्त अपयशो के अन्त [३०] करने वाले !** तुम स्वय समस्त अपयशो से विहीन[३१] हो अत हम सबके तुम ही कीर्तिमान हो । **हे समस्त जन आराध्य देवता !** तुम समस्त जनो के लिए आराध्य ही हो अत मैं अपनी निजात्मा के लिए यह सबोध रहा हूँ कि– **हे स्तोक-मति-संस्तोता[३२] निजात्मन् !** तुम गुरु-सम-सयम-विभवको[३३] अर्थात् जिस सयम–विभव[३४] को धारण करने से आत्मा स्वय समाराध्य-आयतन-अवस्था[३५] को प्राप्त होती है उसी सयम-विभवको तुम भी धारण करो क्योंकि उसके धारण से ही तेरा कल्याण सभव है। तथा जो सयम-विभव अबुध-बुध[३६] अर्थात् मूर्खों के द्वारा धारा जाता है, उस सयम-विभव को हे निजात्मन् ! तुम स्वप्न मे भी मत धारो, क्योंकि वह तेरा कल्याण करने वाला नही है वह महान् अपकारक है और आत्मा का विनाश करने वाला है । अत उस खोटे विभवको[३७] तुम शीघ्र ही त्याग करो और गुरुसम-सयम-विभव को धारण करो । **हे ज्ञानीश्रमणों के सस्तोता[३८]। निजात्मन् ! हे मतिमन्द !** जो अक्षय का कारण[३९] होने से स्वय अक्षय हो उस अक्षय स्वरूप सयम-विभव को तुम प्राप्त करो । अक्षय तो मोक्ष[४०] है और मोक्ष का कारण सयम है यह सयम अक्षय का कारण होने से स्वय औपचारिकता[४१] से अक्षय है अत तुम उस अक्षय सयम– विभव को प्राप्त होओ। अर्थात् हे निजात्मन् ! तुम गुरु सम सयम-विभव को ही अक्षय समझो पर अबुध सस्तुत[४२] समाराधित[४३] को नही ॥५॥

❁ ❁

(१)
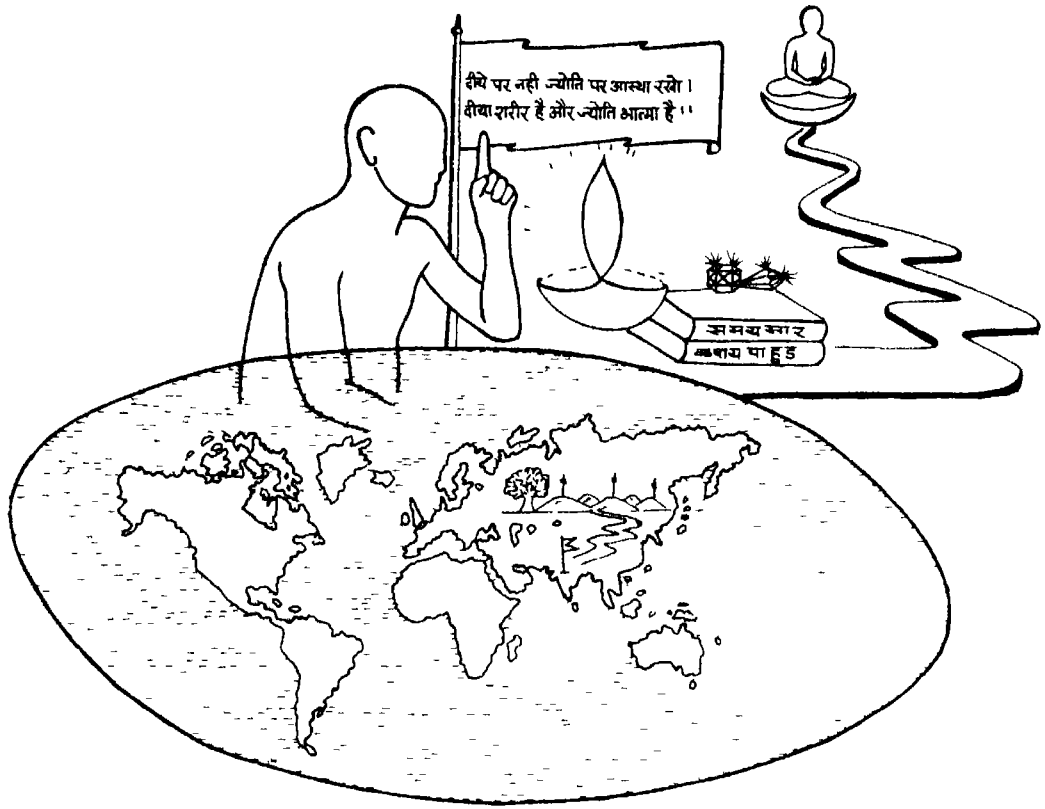
सकल सत्व के संस्तुत मानव, दुर्लभ तेरा आगम-ज्ञान।
अज्ञ-जनो को सम्बल देता, चिन्तामणि सम सम्यग्ज्ञान।।
आप रहे शास्त्रज्ञ विचक्षण, अयश भाव का अन्त किया।
नष्ट हुए हैं अपयश सारे, जग को मुक्ति पन्थ दिया।।
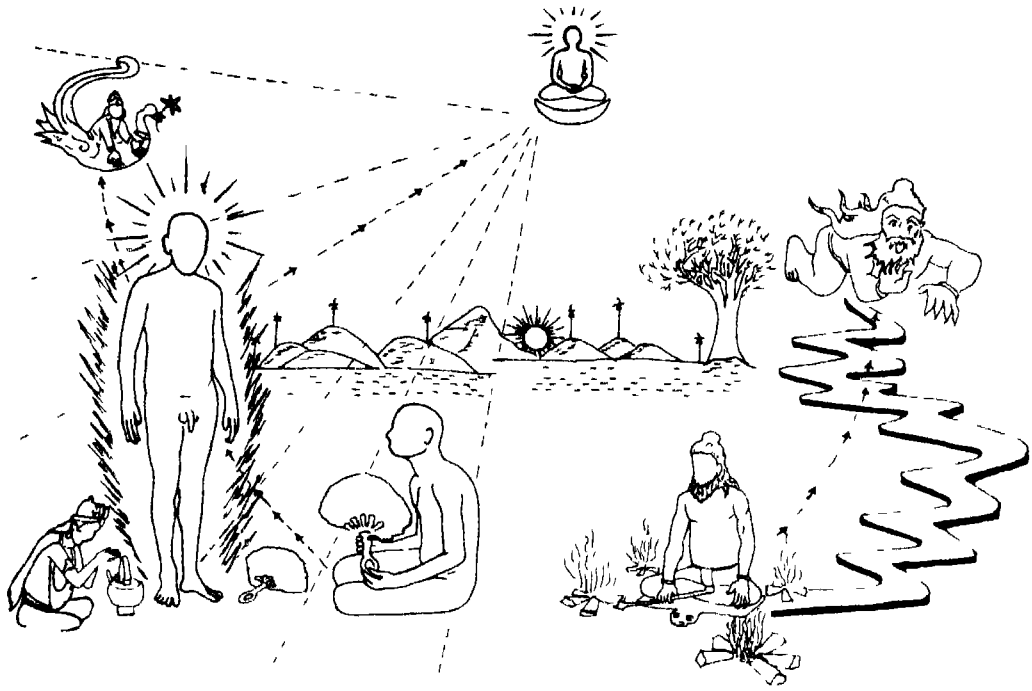
(२)

आराध्य तुम्हीं हम श्रमणो के हो, खुद को मै सबोध रहा।
संयम-वैभव गुरु समधारो, जिसमें आतम-शोध रहा।।
अबुध जनों का मत धर संयम, वह तेरा अपकारक है।
अतः तजो तुम विभव-असंयम, संयम ही अघ-हारक है।।

(३)
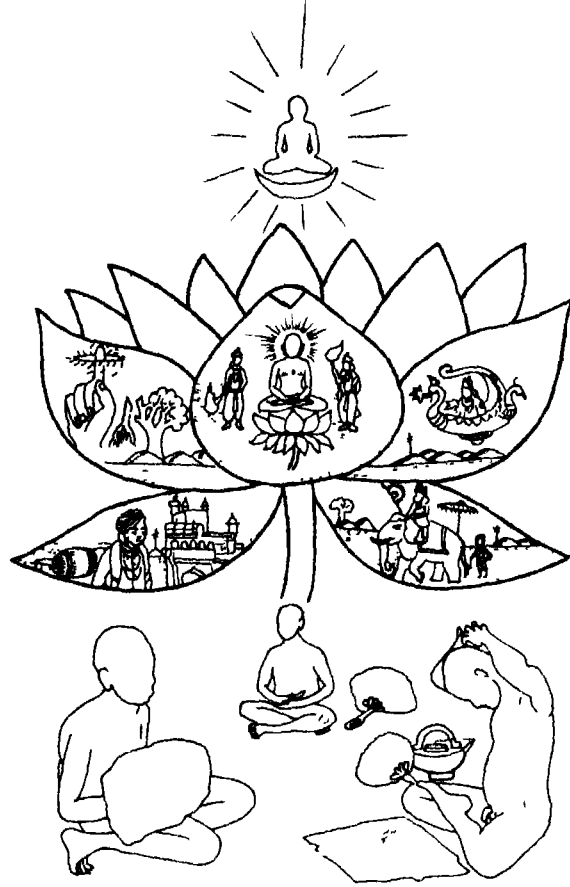
सुधी-श्रमण-जन के संस्तोता, तुम होते क्यों मति-मन्दी।
अक्षय संयम को पाले तू, मिले मोक्ष की आसन्दी॥
अविनाशी संयम कहलाता, जिससे जग को सुख मिलते।
गुरु-सम-संयम धर ले आतम, जिसमें मुक्ति कमल खिलते॥

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धे पंचमकाव्यम्

स्वस्तिकबन्धः

(चित्र क्रमांक—७)
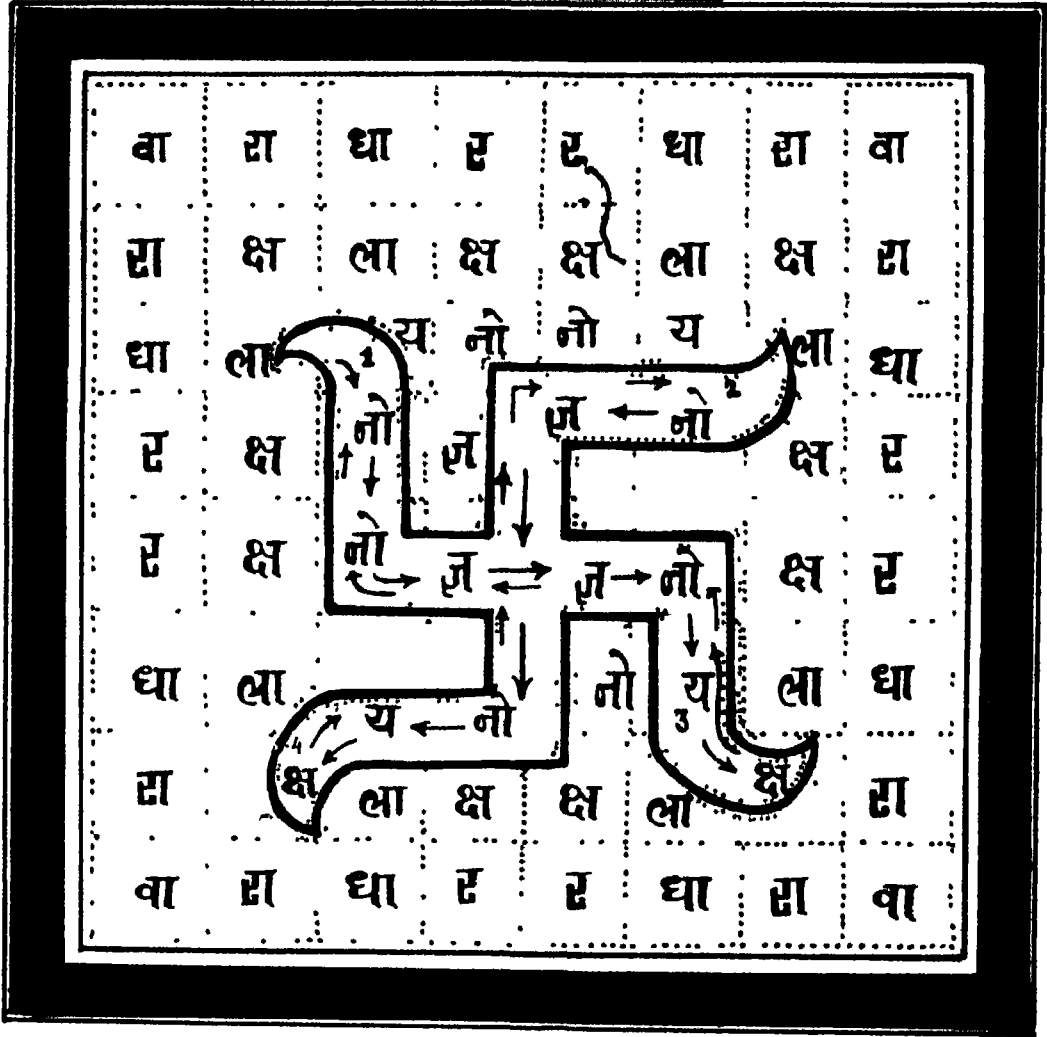
विद्याष्टकम्

नो ! नोऽज्ञज्ञ ! नोऽ यक्ष !
नोऽज्ञनोऽ ! य यनोऽक्षयः ॥
यक्षनोऽज्ञज्ञनो नो नो !
क्षयनोऽज्ञ ! ज्ञनोऽ! क्षयः ॥5॥

वाराधारर ! धारावा-
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ।
धालाः! य ! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर ! ॥1॥

स्वस्तिक-बन्ध
पचम श्लोक (चित्रक्रमाक-७) को
पढ़ने की विधि

चित्र क्रमाक ७ मे एक चौसठ कोष्टको वाला वर्ग है । इस वर्ग के अन्तर्गत एक स्वस्तिक (साथिया) का चिन्ह है । पूरे ६४ कोष्टको मे मूल प्रथम श्लोक, "**वाराधारर । धारावा राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा । धाला । य । नो नोऽयलाधा, रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ॥१॥**" यह ३२ अक्षरो वाला 'सर्वतोभद्र' (जिसे सभी ओर से पढ़ा जा सके) अनुष्टुप् छन्द विद्यमान है ।

वर्ग के अन्दर **'स्वस्तिक बन्ध'** मे अकित अक्षर भी सम्मिलित है । प्रथम-श्लोक को पढ़ते हुए कोष्टक के एव स्वस्तिक के चित्र मे अकित अक्षरो को भी पढ़ना होगा परन्तु केवल स्वस्तिक के अन्तर्गत बाण चिन्ह से सकेतित मार्ग द्वारा खोजते हुए पढ़ेगे तो पॉचवॉ श्लोक, ३२ अक्षरोवाला अनुष्टुप्-छन्द निकल आवेगा। यही "**स्वस्तिक-बन्ध**" है, इसके पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है–

स्वस्तिक मे जहॉ एक अक लिखा है वहॉ **'नो'** अक्षर अकित है, यही से बाण के सकेत द्वारा स्वस्तिक के आकार से बढ़ने पर क्रमश **'नो'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'**, (इस **'ज्ञ'** को दो बार पढ़ना है) **'नो'**, **'य'**, **'क्ष'** अक्षर तक समाप्त करने पर, प्रथम पद, "**नो। नोऽज्ञज्ञज्ञ । नोऽयक्ष ।**" की सिद्धि होती है । इसी प्रकार स्वस्तिक मे जहा दो अक लिखा है वहा **'नो'** अक्षर से प्रारभ करते हुए बाण चिन्ह द्वारा सकेतिक मार्ग मे स्वस्तिक के आकार से बढ़ने पर क्रमश "**नोऽज्ञनोऽ । य** (**'य'** को दो बार पढ़ना है) और इस **'य'** के पास **'नो'** अक्षर को सम्मिलित कर पहले **'क्ष'** और फिर **'य'** पर समाप्त करने पर क्रमश "**नोऽज्ञनोऽ । य यनोऽक्षय** " इस दूसरे पद की प्राप्ति होगी ।

स्वस्तिक मे जहाँ तीन अक लिखा है, वहॉ **'य'** अक्षर को पढ़कर उसके नीचे पहले **'क्ष'** अक्षर को पढ़े, फिर **'य'** के ऊपर **'नो'** अक्षर को पढ़े और बाण चिन्ह अकित अक्षरो को स्वस्तिक के आकार से पढ़ने पर **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'** अक्षर और उसके आगे **'नो'** अक्षर मिलेगा, इसे दो बार पढ़ते हुए बाण चिन्ह से सूचित ऊपर के अक्षर **'नो'** पर समाप्त करने पर, क्रमश **"यक्षनोऽज्ञज्ञनो नो नो"** इस तीसरे पद की सिद्धि होगी ।

स्वस्तिक मे अकित चार अक के समीप लिखित अक्षर **'क्ष'** को पढ़कर, वाण की दिशा मे आगे **'य'**, **'नो'** फिर सीधे ऊपर बढ़ते हुए **'ज्ञ'** और **'नो'** को पढ़कर, जहाँ से प्रारभ किया था वही के दोनो अक्षरो **'क्ष'** और **'य'** को क्रम से पढ़कर इसी **'य'** पर समाप्त करने से **"क्षयनोऽज्ञ । ज्ञनोऽ । क्षय ।"** इस चौथे पद की प्राप्ति होगी ।

इस प्रकार मूल-श्लोक **"वाराधारर"** आदि मे अकित **"स्वस्तिक-बन्ध"** मे पचम श्लोक, **"नो । नोऽज्ञज्ञ । नोऽ यक्ष । नोऽज्ञनोऽ । य । यनोऽक्षय । यक्षनोऽज्ञज्ञनो नो नो । क्षयनोऽज्ञ । ज्ञनोऽ । क्षय"** ।।५।। के पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।

❁ ❁ ❁

6
विद्याष्टकस्य षष्ठं काव्यम्
रक्ष नो ज्ञज्ञ! नोऽक्षर!
रक्षनो ज्ञ! ज्ञनोऽ!क्षर!

अथ पुरस्ताद्विद्याष्टकस्य प्रथममूलकाव्यबन्धमध्ये वेष्टितसीमारेखाद्वयोपेतौषधालयसकेतचिह्नमेक सरच्य तस्मिश्चिह्नमध्ये तथा बाह्यपरिवेष्टितसीमारेखाद्वयमध्ये सस्थिताश्च तावतश्चाक्षरान्सगृह्य विद्वज्जनश्लाघ्य सर्वजनमान्य कोविदकोविदज्जैन विद्यासिन्धुगुरुवरमौषधालयसकेतचिह्नबन्धेन तथेतरसिद्धचक्रादिविविधसप्तचित्रबन्धसमुदायविशेषेण षष्ठकाव्यमाध्यमेन स्तोतुमाह—

रलालाररलालार ! रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नोऽ क्षर ! ।
रलालाररलालाररक्षनो ज्ञ ! ज्ञनोऽ ! क्षर ! ॥६॥

—अन्वयार्थः—

हे रलालाररलालार ! ज्ञज्ञ ! (त्वं) न (असि) हे अक्षर ! न (अस्मान्) रक्ष । हे ज्ञ ! (त्व) ज्ञन (असि) हे अक्षर ! (त्व) रलालाररलालाररक्षन (असि) ॥६॥

—संस्कृत-टीका—

हे रलालारेति—

हे रलालाररलालार ! (हि सयमरक्षक !) रस्य[1] इच्छाया ल इन्द्रो नाथो वेति रलोऽथवा इच्छानाथोऽर्थात् सरागात्मा इत्यर्थ । तस्य रलस्य सरागात्मनो वा योऽसौ अला अर्थाददायक स रलाला सरागात्माऽ दायकोऽथवा वीतरागसम्यग्बोधो वेत्यर्थ । तस्य रलाल अर्थाद् वीतरागसम्यग्बोधस्य वा योऽसौ अरोऽर्थाददायक स रलालारोऽर्थाद् वीतरागसम्यग्बोधाऽदायकोऽथवा सरागबोधो वेत्यर्थ । तस्य— रलालारस्य अर्थात् सरागबोधस्य वा योऽसौ रोऽर्थाद्दायक स रलालारर अर्थात् सरागबोधदायक अथवा रागो वेत्यर्थ । तथा तस्य रलालाररस्य अर्थाद् रागस्य वा योऽसौ

—सन्दर्भाः

(१) रोऽग्नौ गतावुष्णतायामिच्छाया प्रेष्णि वा मत । इति च (स हि आ)

लोऽर्थादिन्द्र स रलालाररलोऽर्थाद्रागेन्द्रोऽथवाऽसयमो वेत्यर्थ । एव तस्य रलालाररलस्य अर्थादसयमस्य वा योऽसौ अला अर्थादरक्षक स रलालाररलाला अर्थादसयमाऽरक्षकोऽथवा सयमो वेत्यर्थ । तथा हि तस्य रलालाररलालोऽर्थात् सयमस्य वा योऽसौ आरोऽर्थादारक्षक स रलालाररलालार अर्थात् सयमरक्षक इत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे सयमरक्षक ! इत्यर्थ ।

हे ज्ञज्ञ ! (त्व) न (असि)–[हे कोविदाना कोविद ! (त्व) सर्वमान्य (असि)] ज्ञोऽर्थात् कोविदो धीमान् वेत्यर्थ । ज्ञाना कोविदाना धीमता वा अपि योऽसौ ज्ञ कोविदो धीमान् वा स ज्ञज्ञोऽर्थात् कोविदकोविद इत्यर्थस्तत्सम्बुद्धौ हे ज्ञज्ञ ! हे कोविदकोविद ! वेत्यर्थ । त्व त्व श्रीगुरुर्विद्यासागर इत्यर्थ । नोऽसि सर्वमान्योऽथवा सर्वसेव्यो वाऽसीत्यर्थ ।

हे अक्षर ! (हे आत्मकाम !) अक्षोऽतस आत्मा वार्थ । र [२] काम काङ्क्षुर्वार्थ । आत्मैव सदा येन काम्यते स आत्मकामोऽथवा अक्षरो वेत्यर्थस्तत्सम्बुद्धौ हे अक्षर ! हे आत्मकाम ! वेत्यर्थ ।

न (अस्मान्) रक्ष– (अस्मान् रक्ष पाहि) अस्मान् बालमुनिजनान्रक्ष पाहि वार्थ ।

हे ज्ञ ! (त्व) ज्ञन (असि) (हे विचक्षण ! त्व धीमता गणेशोऽसि) अर्थद्धे प्राज्ञ ! त्व बुद्धिमता गणानामीश स्वामी वाऽसीत्यर्थ । अर्थाद् बुद्धिमता साधुवर्गाणा बुद्धिमता पण्डितवर्गाणा च त्वमधिपतिरसीत्यर्थ ।

हे अक्षर ! (हे विद्यासागर) अक्षो[३] ज्ञान विद्या वार्थ । रो[४] निधिर्विभवो वार्थ । अक्षस्य ज्ञानस्य विद्याया वा योऽसौ निधिर्विभवो वा सोऽक्षरोऽथवा विद्यानिधिर्विद्याविभवोऽथवा विद्यासागरो वार्थ । तत्सम्बुद्धौ हे अक्षर ! हे विद्यानिधे ! हे विद्याविभव ! हे विद्यासागर ! वेत्यर्थ ।

—सन्दर्भाः

(२) रस्तु कामेऽनुरागेऽपि । इति च (स हि आ)
(३) अक्षो ज्ञानेऽपि विद्याया । इति च (प च)
(४) रो निधावनुरागेऽपि स्वर्णे चोग्रेऽपि तेजसि । इति चार्ष ।

(त्व) रलालाररलालाररक्षन (असि) [(त्वं) (श्रीगुरु) **ज्ञानसागराऽभावविभव** (असि)] रलालाररलालार इत्यस्य शब्दस्याऽर्थ प्रागेव प्रोक्त । रलालाररलालारोऽर्थात् सयमरक्षक इत्यर्थ । तस्य रलालाररलालारस्य अर्थात् सयमरक्षकस्य (अस्माक गुरुवरस्य विद्यासागरस्य) रोऽर्थाद् दाता रलालाररलालाररोऽर्थात् सयमरक्षकदाता अर्थात् श्रीगुरुज्ञानसागर । तस्य रलालाररलालाररस्याऽर्थाच्छ्रीगुरुज्ञानसागरस्य क्षोऽ[५]र्थादभावो रलालाररलालाररक्षोऽर्थाज्ज्ञानसागराऽभाव । तस्य रलालाररलालाररक्षस्य अर्थाच्श्रीगुरुज्ञानसागराऽभावस्य न अर्थान्निधिर्विभवो रलालाररलालाररक्षनोऽर्थाच्छ्रीगुरु- ज्ञानसागराभावनिधिरर्थाच्छ्रीगुरुज्ञानसागराऽभावे सत्यर्थात्तस्य समाधिमरणे जाते साक्षाद्विभवरूपेण निधिरूपेण वा त्वमेव शोभसे तस्मिन्स्थाने त्वमेव राजसेऽतस्त्व श्रीगुरुज्ञानसागराऽभावविभवोऽसीत्यर्थ ॥६॥

हिन्दी-टीका

हे सयम के जागरुक प्रहरी ! इस ससार मे इच्छाओ का अधिपति सरागात्मा[१४] है और उस सरागात्म अवस्था को न देने वाला वीतराग-सम्यग्ज्ञान[१५] है । और उस वीतराग सम्यग्ज्ञान का अदायक अर्थात् उत्पन्न न होने देने वाला सराग-सम्यग्ज्ञान[१८] है । और उस सराग सम्यग्ज्ञान का सृष्टिकर्ता जो राग है उस राग का स्वामी असयम है अर्थात् असयम रागेन्द्र[१७] है । उस रागेन्द्र अर्थात् राग के स्वामी के लिए अर्थात् असयम के लिए जो रक्षण नही देता है वही सयम कहलाता है और उस सयम के रक्षक होने से आप श्री सद्गुरु सयम के रक्षक है अर्थात् सतत ही आप सयम के जागरुक प्रहरी है, अत आपका सयम प्रशसनीय है । इतना ही नही हे देव ! आप बुद्धिमानो के मध्य मे प्रखर बुद्धि को धारण करने वाले है अत आप सुधियो के सुधि[१८] है। हे प्रभो ! आप सयम और बुद्धि इन दोनो ही दृष्टि से अत्यन्त श्रेष्ठ है अत आप सर्वमान्य है, अर्थात् सर्व जन ही आपकी उपासना करते है। हे आत्मकाम ! निरन्तर आप शुद्धात्मा[१९] की उपासना करने मे निरत रहते है, अत आप आत्मकाम है । हे यतीश्वर ! तुम यतीश्वर

—सन्दर्भाः

(५) क्षोऽभावे क्षेत्रिणि मत । इति च (प च)

होकर सदा ही हमारी रक्षा करो   २ । हे विचक्षण ! तुम विपश्चित[50] श्रमण-गण-विनायक हो । हे विद्यावारिधे ! हे विद्यानिधे ! तुम ज्ञानसागराभाव के साक्षात् विभव [51] हो अर्थात् जो इस ससार मे नाम और बुद्धि की अपेक्षा ज्ञान के अगाध सागर थे और साक्षात् आपके गुरु थे, ऐसे ज्ञान सागर के अभाव के पश्चात् अर्थात् उनके समाधि-मरण के पश्चात् के आप अभावपूर्ति हैं, अत ज्ञान सागराभाव के साक्षात् निधि तुम ही हो अर्थात् उन ज्ञान सागर मे और आप विद्यासागर मे अन्तर/भेद नही है, वही साक्षात् निधि आप हैं । अर्थात् आपके ज्ञानसागर गुरुवर के द्वारा समाधि लेने के उपरान्त जो बड़ी रिक्तता हुई थी, उसकी पूर्ति आपने अपने सद्भाव और अस्तित्व से कर दी है। अत आपके गुरुवर मे और आप मे कोई अन्तर नही है ॥६॥

❁ ❁ ❁

(१)
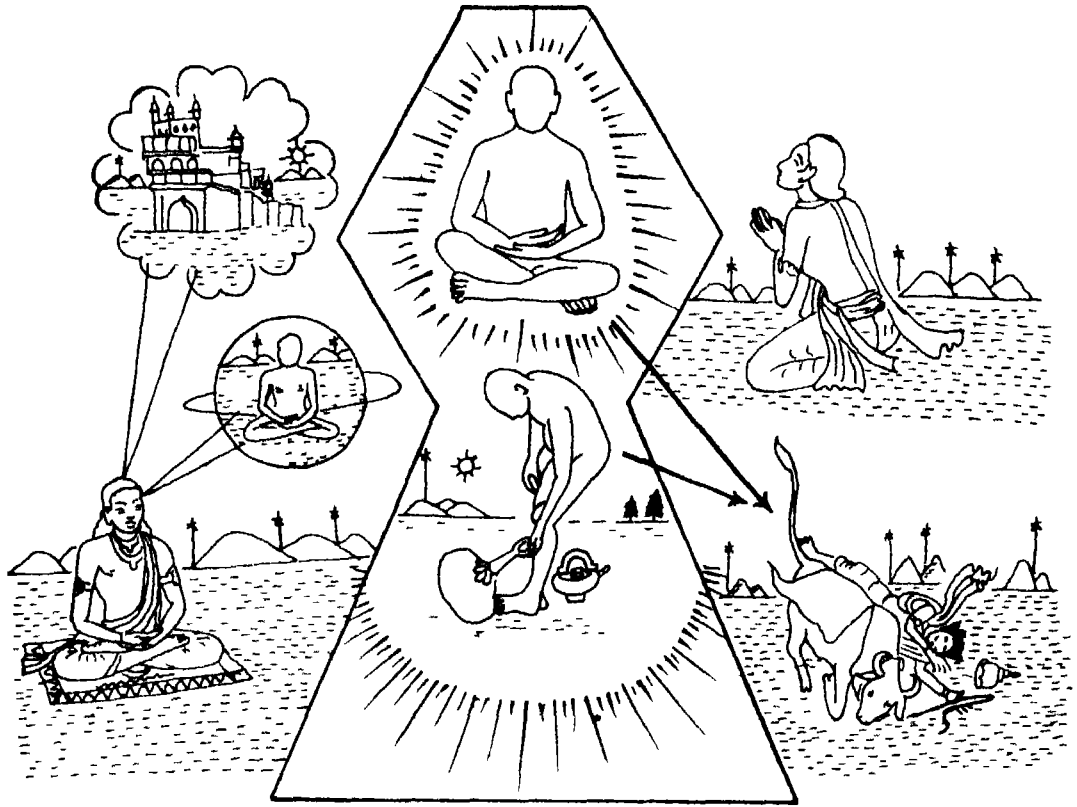
जागरूक-संयम के प्रहरी, रागात्मा इच्छा-स्वामी।
वीतराग ही ज्ञान-प्रदाता, ख्यात रहा जग में नामी॥
राग सहित जो ज्ञान सृजेता, वो रागेश असंयम है।
संस्तुत तेरा संयम गुरुवर, मारा जिसने यम को है।

(२)

धीमानो मे वुद्धिमान हो, सुधिजन तेरी सुधी लेते।
वुद्धि और सयम दृष्टि से, श्रेष्ठ तुझे ही वे कहते॥
सर्वमान्य हो गुरुवर तुम तो, सस्तुति सब-जन करते है।
किन्तु आप तो आत्मकाम से, निज आतम मे रमते है।

(३)

तुम विद्या की अद्‌भुत निधि हो, हमको मोक्ष प्रदाता हो।
हे ''विद्या-सागर'' गुरुवर तुम, श्रमण संघ के त्राता हो।।
''ज्ञान'' कहूँ या ''विद्या'' तुमको, तुममें ''ज्ञान'' समाए है।
हमने तो श्री ''ज्ञान-सिन्धु'' ही, गुरुवर तुममें पाए है।।

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धे षष्ठं काव्यम्

औषधालयलाञ्छन-बन्धः

(चित्र क्रमांक—८)
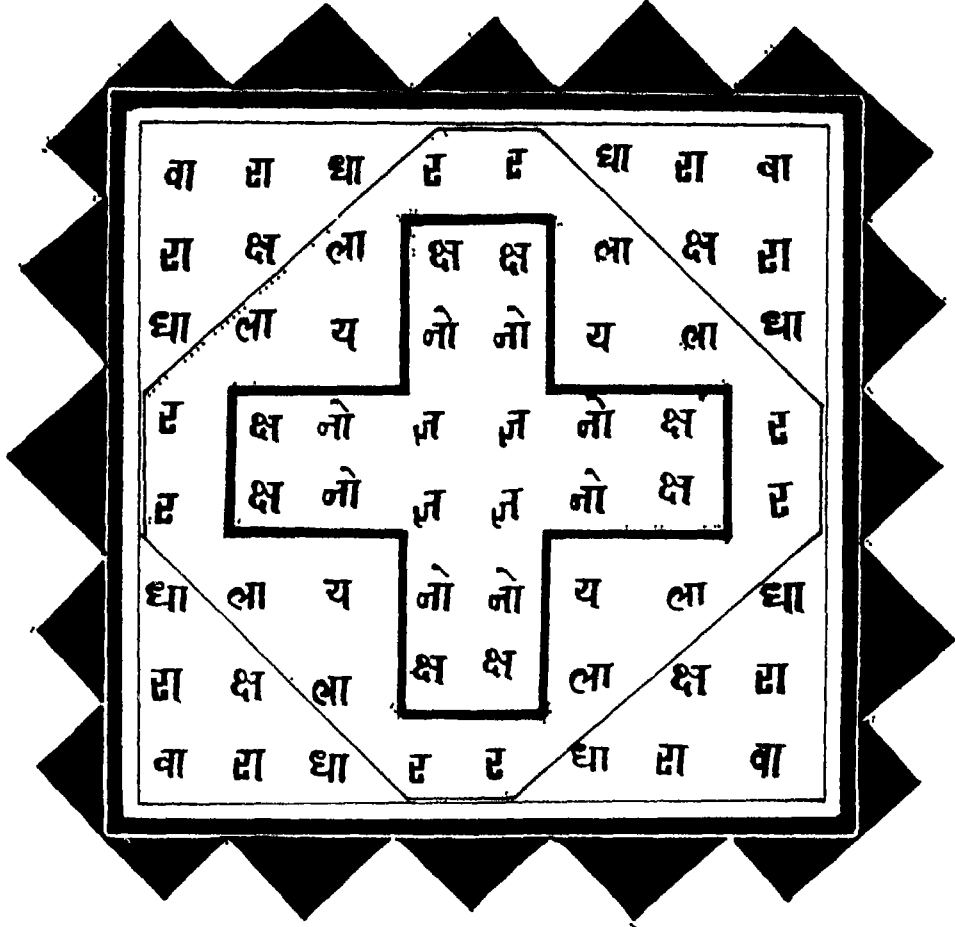
विद्याष्टकम्

रलालार - रलालार !
रक्ष नोज्ज ! नोऽ ! क्षर !
रलालार - रलालार-
रक्षनो ज ! ज्जनोऽ ! क्षर ! ॥6॥

वाराधारर ! धाराबा-
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः ।
धालाः ! य ! नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ज ! नोऽक्षर ! ॥1॥

"औषधालय संकेत चिन्ह (रेडक्रॉस-बन्ध)"
षष्ठं श्लोक (चित्र क्रमांक-८) को
पढ़ने की विधि

चित्र क्रमाक-८ मे एक चौसठ कोष्ठको वाला वर्ग है। इस वर्ग के अन्तर्गत एक औषधालय-सकेत चिन्ह अर्थात् रेडक्रॉस अकित है। पूरे ६४ कोष्टको मे मूल-प्रथम श्लोक, **"वाराधारर ! धारावा राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा । धाला ! य ! नो नोऽयलाधा रक्षनोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षरा ! ॥१॥"** यह ३२ अक्षरो वाला "सर्वतोभद्र बन्ध" अर्थात् जिसे सभी ओर से पढ़ा जा सके ऐसा अनुष्टुप् छन्द विद्यमान है।

वर्ग के अदर रेडक्रॉस बन्ध मे अकित अक्षर भी सम्मिलित है। प्रथम-श्लोक को पढ़ते हुए कोष्टक के एव रेडक्रॉस' के चित्र मे अकित अक्षरो को भी पढ़ना होगा। परन्तु केवल रेडक्रॉस के अन्तर्गत आये हुये अक्षरो को पढ़ेगे तो छठा श्लोक, ३२ अक्षरोवाला अनुष्टुप छन्द निकल आवेगा। इसी छठे श्लोक के और भी चित्र निर्मित है, जिनको इसी चित्र के आगे दर्शाया गया है। जैसे– (१) सिद्धचक्रबन्ध (२) अग्रेजी (L) अक्षर बन्ध अथवा समकोण बन्ध (३) मुरज-बन्ध (४) रजत सयमोत्सव-वर्षाक बन्ध (५) जन्मदिनाक बन्ध (६) दीक्षा दिनाक बध और (७) आचार्य-पद दिनाक बन्ध।

औषधालय-सकेत-चिन्ह-बन्ध (रेडक्रॉस) पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है –

इसको पढ़ने के दो क्रम है, (१) रेडक्रॉस के ऊपर चारो ओर जो सीमारेखा (बार्डर)अकित है, इससे पूर्व-पश्चिम आदि किसी भी दिशा मे अकित अक्षरो के क्रम से त्रिकोणाकार घूमते हुये, रेडक्रॉस मे प्रवेश करके पढ़ा जा सकता है। और (२) इसी त्रिकोण के दो अर्द्धभागो मे घूमते हुये भी पढ़ा जा सकता है।

उत्तर दिशा मे, बाई बार्डर पर अकित **'र'** अक्षर से प्रारभ करके, दो रेखा के बीच मे अकित अक्षर, **'ला'**, **'ला'**, **'र'**,**'र'**, **'ला'**, **'ला'** और **'र'** पर ठहर कर, इसी **'र'** से 'रेडक्रॉस' मे बाई ओर अकित **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'**, **'नो'**, **'क्ष'** और 'र' (बाई मे अकित) तक पढ़ने पर, क्रमश,

(१) **"रलालाररलालार! (२) रक्ष नो झझ ! नोऽक्षर । ।"** इन दो पदो की प्राप्ति होगी। इसे उलट क्रम से पढ़ा जा सकता है । जिस प्रकार सीधे क्रम मे **'र'** से ऊपर रेडक्रॉस मे गये थे, वही उलट क्रम मे ऊपर से रेडक्रॉस मे प्रवेश करना, शेष विधि समान है ।

अभी बाई क्रम से पढ़ा गया है । इसे ही दाई क्रम से **'र'** अक्षर से प्रारभ करके और नीचे **'र'** तक पहुच कर, रेडक्रॉस मे प्रवेश कर **'क्ष'** अक्षर से सीधे उत्तर की ओर बढ़ते हुए, ऊपर के **'र'** अक्षर तक जाने पर शेष दो पदो की प्राप्ति होगी । पद इस प्रकार है, **(१) "रलालार-रलालार (२) रक्षनो झ । झनोऽ । क्षर ।।"** इसे उलट-क्रम से भी पढ़ा जा सकता है ।

बाई ओर खड़े क्रम की पक्ति के पाचवे अक्षर 'र' से नीचे सीमा के अदर चलते हुए, **'ला'**, **'ला'** और 'र', **'र'** **'ला'**, **'ला'**, **'र'** (इसे दो बार पढ़ना है) अक्षरो से बाई ओर से प्रवेश करके **'क्ष'**, **'नो'**, **'झ'**, **'झ'**, **'नो'**, **'क्ष'** और रेडक्रॉस की सीमा मे अकित **'र'** अक्षर पर समाप्त करने पर, **"(१) रलालार-रलालार । (२) रक्ष नो झझ । नोऽक्षर"** आदि के प्रथम और द्वितीय ये दो पद प्राप्त होगे । इसे उलट क्रम से इसी प्रकार दायी तरफ से भी पढ़ा जा सकता है ।

बायी ओर खड़े क्रम की प्रथम पक्ति के चौथे अक्षर 'र' से प्रारम्भ कर बार्डर की पक्ति मे ऊपर की ओर घूमते हुये **'ला'**, **'ला'**, 'र', 'र', **'ला'**, **'ला'**, 'र', (इसे दो बार पढ़ना है) से रेडक्रॉस मे बायी ओर से प्रवेश करके **'क्ष'**, **'नो'**, **'झ'**, **'झ'**,**'नो'**, **'क्ष'**, और बार्डर मे स्थित 'र' पर समाप्त करने पर, **"रलालार-रलालार । रक्षनो झ । झनोऽ । क्षर ।** । ये तृतीय और चतुर्थ पद प्राप्त होगे । इसे उलट क्रम से इसी प्रकार बाई तरफ से भी पढ़ा जा सकता है ।

उत्तरी-सीमा मे बायी ओर के प्रथम अक्षर 'र' से नीचे की ओर बार्डर मे अकित **'ला'**, **'ला'**, **'र'** तक आकर **'र'** को लेकर पुन ऊपरी **'र'** तक लौटना है फिर इसी **'र'** को लेकर रेडक्रॉस मे प्रवेश करने पर **'क्ष'** और इसके नीचे **'नो'** और **'झ'** अक्षरो को पढ़कर इसी **'झ'** को लेकर बाई तरफ अकित, **'झ'**, **'नो'**, **'क्ष'** और रेडक्रॉस के बाहर बार्डर मे स्थित 'र' अक्षर पर समाप्त करने पर प्रथम और द्वितीय पद (१) **"रलालार-रलालार"** और (२) **"रक्ष नो झझ । नोऽक्षर ।"** निकल आते है । इसे ही उलट क्रम से पढ़ने पर, तृतीय और चतुर्थ पद, (३) **"रलालार-रलालार"** (४) **रक्षनो झ । झनोऽ । क्षर"** । प्राप्त होगे ।

इसी तरह पश्चिम-दक्षिण, दक्षिण-पूर्व, पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर दिशाओ मे भी त्रिकोणाकार से घूमते हुए पढ़ेगे तो सीधे और उलटे क्रम से दो-दो पद के हिसाब से सपूर्ण छठा श्लोक, **"रलालार-रलालार ! ॥१॥ रक्षनो ज्ञज्ञ ! नो ! क्षर ॥२॥ "रलालार-रलालार" ॥३॥ "रक्षनोऽज्ञ ! ज्ञनोऽक्षर ॥४॥"** प्राप्त होगा ।

इसी तरह पश्चिम-दक्षिण, दक्षिण-पूर्व, पूर्वोत्तर तथा पश्चिमोत्तर दिशाओ मे भी त्रिकोणाकार से घूमते हुये पढ़ेगे तो सीधे और उलटे क्रम से दो-दो पद के हिसाब से सपूर्ण छठा श्लोक निकल आवेगा ।

इस तरह मूल श्लोक **"वाराधारर** आदि मे विद्यमान, **"औषधालय-सकेत-चिन्ह बन्ध (रेडक्रॉस)"** मे स्थित छठे श्लोक को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।
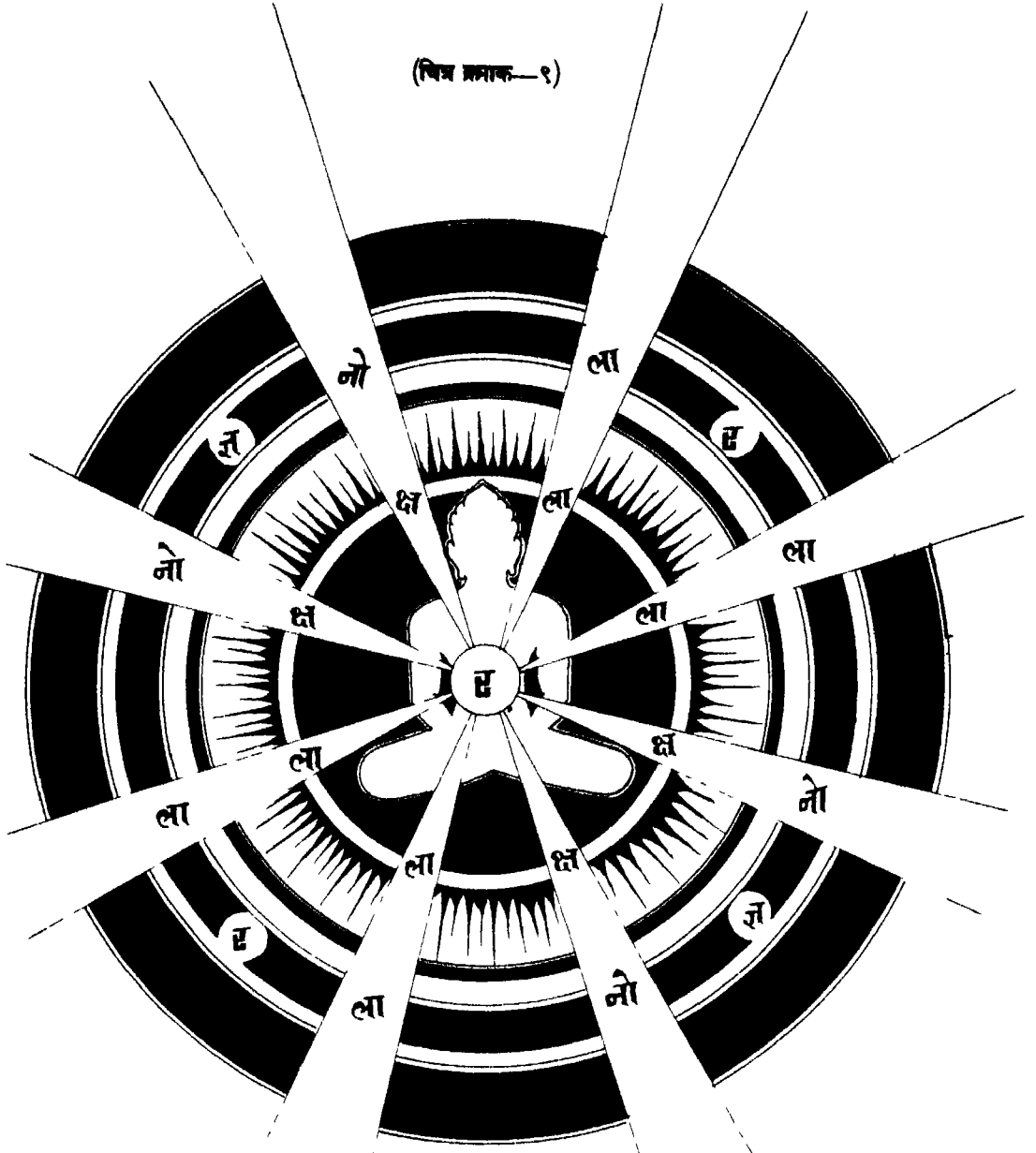
सिद्धचक्रबन्धे
विद्याष्टकम्
रलालार — रलालार ।
रक्ष नो जज़ ! नोऽ ! क्षर !॥
रलालार — रलालार —।
रक्षनो ज ! जनोऽक्षर ! ॥८॥

(चित्र क्रमांक—१)

इस **सिद्ध चक्र बन्ध** मे भगवान **सिद्ध परमेष्ठी** विराजमान है। इनको केन्द्रित कर जो आठ किरणे है, वे आठो कर्मों के विनाश की सूचिका है। इस बध मे छठा श्लोक विद्यमान है।

सिद्ध भगवान की नाभि पर अकित **'र'** अक्षर से प्रारभ कर दाईं ओर की भुजा से निकली हुई किरण मे अकित अक्षर, **'ला'**, **'ला'**, को पढ़ते हुए **'ला'** अक्षर के ऊपर अकित **'र'** अक्षर को दो बार पढ़कर उसके आगे की किरण मे अकित अक्षर **'ला'** को सम्मिलित करते हुये नीचे लिखे **'ला'** को पढ़कर नाभि के **'र'** पर पहुँचने पर, **''रलालार-रलालार'** यह प्रथम पद निकल आवेगा। इसे उलट-क्रम से भी पढ़ा जा सकता है।

सिद्ध भगवान की नाभि पर अकित **'र'** अक्षर को पढ़ते हुए, बाये कधे के पास से निकली हुई किरण मे अकित अक्षर, **'क्ष'** और **'नो'** को पढ़ते हुए इस **'नो'** की बाईं तरफ **'झ'** अक्षर को दो बार पढ़कर उसके आगे **'नो'** अक्षर वाली किरण मे **'क्ष'** और **'र'** अक्षर पर समाप्त करने पर **''रक्ष नो झझ ! नोऽ ! क्षर !''** यह द्वितीय पद प्राप्त होगा। इसे उलट क्रम से भी पढ़ा जा सकता है।

सिद्ध भगवान की नाभि पर अकित **'र'** अक्षर को पढ़ते हुये बाईं तरफ हाथ की कोहनी वाली किरण मे लिखित अक्षर, **'ला'**, **'ला'** और नीचे के **'र'** को दो बार पढ़कर इस **'र'** अक्षर के आगे की दाईं किरण मे **'ला'**, **'ला'** और नाभि के **'र'** अक्षर पर समाप्त करने से **''रलालार-रलालार''** यह तृतीय पद प्राप्त होगा। इसे उलट क्रम से भी पढ़ा जा सकता है।

भगवान सिद्ध की नाभि पर स्थित **'र'** अक्षर से प्रारभ कर दाये पॉव पर से निकली किरण मे लिखित **'क्ष'**, **'नो'** अक्षर को पढ़कर इसके दाईं ओर स्थित **'झ'** अक्षर को दो बार पढ़ते हुये आगे अकित **'नो'** अक्षरवाली किरण मे **'नो'** को भी पढ़ते हुए **'क्ष'** और नाभि के **'र'** अक्षर पर समाप्त करने पर, **''रक्षनोझ ! झनोऽक्षर !''** यह चतुर्थ पद निकल आवेगा। इसे उलट-क्रम से भी पढ़ा जा सकता है।

इस प्रकार 'रेडक्रॉस' चित्र मे लिखित, छठा श्लोक ही, चित्रातर से **''सिद्ध-चक्र-बन्ध''** मे लिखा गया है।

नोट— दाये बाये की विवक्षा स्वय पाठक के दाये एव बाये पक्ष के अनुसार की गई है।

मतप्रत्यागतपंचाक्षरविहिताऽऽग्लैल्बन्धे चित्रप्रकारान्तरेण
विद्याष्टकस्य षष्ठं काव्यम

(चित्र क्रमांक—१०)

एलु-बन्ध अथवा समकोण बन्ध
षष्ठ श्लोक (चित्रक्रमांक-१०) को
पढ़ने की विधि

"समकोण" चित्र-बन्ध की तल-भुजा पर अकित **'र'** और **'ला'** को दो बार सीधे उल्टे क्रम से पढ़ने पर, **"रलालार । रलालार"** प्रथम-पद की सिद्धि होगी ।

इसी तरह **'र'** अक्षर को पढ़ते हुए, समकोण के लम्ब मे अकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'** और **'ज्ञ'** को पढ़कर फिर **'ज्ञ'** से लेकर नीचे **'र'** तक पहुँचने पर, **"रक्षनो ज्ञ । ज्ञनोऽक्षर"** द्वितीय पद की सिद्धि होगी।

ऊपर लिखे क्रम के अनुसार पुन एक बार पढ़ने पर तृतीय और चतुर्थ पद, **"रलालार-रलालार"** और **"रक्षनो ज्ञ । ज्ञनो । ऽक्षर"** की सिद्धि होगी । इस प्रकार **"समकोण-चित्र बन्ध"** पढ़ने की विधि पूर्ण हुई ।

❁ ❁

गतप्रत्यागत-पादाभ्याससहित तृतीयाऽनन्तरपादान्तरित-
मुरजबन्धे प्रकारान्तरेण विद्याष्टकस्य षष्ठं काव्यम्

(चित्र क्रमांक—११)

रलालाररलालार! रक्ष नो ज्ञज्ञ! नो!ऽक्षर! ।
रलालाररलालाररक्षनो ज्ञ! ज्ञनो!ऽ क्षर! ॥6॥
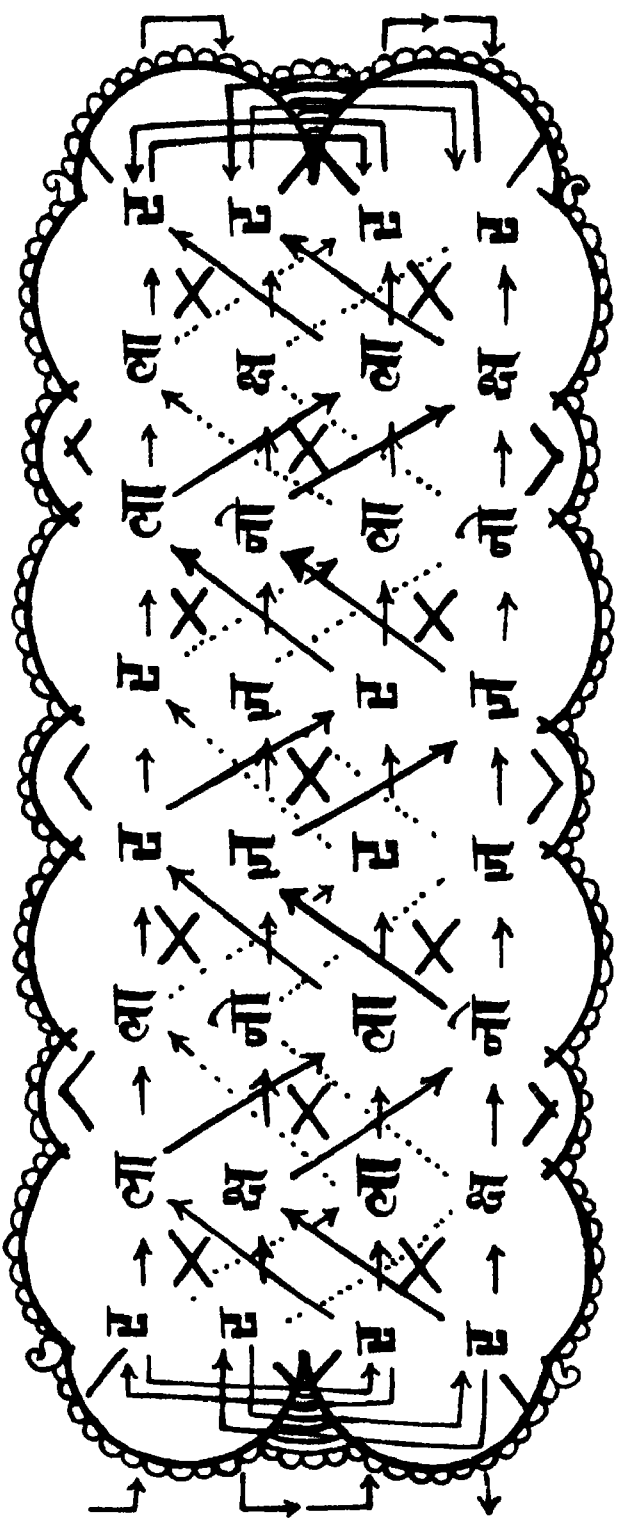
मुरज-बन्ध
पाठ श्लोक (चित्रक्रमांक ११) को
पढ़ने की विधि

इसचित्र को **मुरज** अर्थात् **ढोलक** के स्वरो को नियन्त्रित करने वाली रस्सियो के आकार मे दर्शाया गया है । इस आकार मे ऊपर से नीचे तक क्रमश पश्चिम से पूर्व मे श्लोक की चार पक्तियाँ लिखी गई है ।

प्रथम पक्ति मे अकित 'र' अक्षर से (⩘⩘ ⩘⩘) प्रारभ कर, क्रमश 'ला', 'ला', 'र', 'र', 'ला', 'ला', और 'र' अक्षर को पढ़ने से श्लोक की प्रथम पक्ति, "रलालार-रलालार !" सिद्ध होती है । इसे उलट-क्रम से भी पढ़ा जा सकता है ।

इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पक्तियो को भी सीधा और उल्टा क्रम से स्पष्ट पढ़ा जा सकता है ।

प्रथम पक्ति 'र' अक्षर से प्रारभ कर, इसके नीचे बिन्दुओ द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करने से क्रमश नागिन-चाल के आकार से, **'ला'**, **'ला'**, 'र', 'र', **'ला'**, **'ला'** और 'र' अक्षरो पर समाप्त करने पर, श्लोक का प्रथम पद, **"रलालार-रलालार ! "** प्राप्त होगा । इसे नागिन-चाल से पढ़ते हुए वापस 'र' तक आने पर भी यही पद प्राप्त होगा ।

द्वितीय पक्ति 'र' अक्षर से प्रारभ कर, इसके नीचे बिन्दुओ द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करने से क्रमश नागिन-चाल के आकार (⩘⩘ ⩘⩘) से,'र', **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'**, **'नो'**, **'क्ष'**, 'र' अक्षरो पर समाप्त करने पर, श्लोक का द्वितीय पद, **"रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर !"** प्राप्त होगा । इसे पुन नागिन-चाल के आकार से पढ़ते हुए 'र' अक्षर तक लौटने पर फिर से यही पद प्राप्त होगा ।

तृतीय पक्ति **'र'** अक्षर मे प्रारभ कर, इसके ऊपर बड़े बाण चिन्ह(→)से दर्शाये गये मार्ग पर चलने से क्रमश नागिन-चाल से बढ़ने पर **"रलालार-रलालार"** इस तृतीय पद की उपलब्धि

होगी । इसे पुन नागिन-चाल के आकार से पढ़ते हुये लौटेगे तो यही पद प्राप्त होगा ।

चतुर्थ पक्ति 'र' अक्षर से प्रारभ कर, इसके ऊपर बड़े बाण चिन्ह से निर्देशित मार्ग पर क्रमश नागिन-चाल से चलते रहने से , **"रक्षनोज्ञ ! ज्ञनो ! ऽक्षर !"** इस चतुर्थ पद को प्राप्त किया जा सकता है । इसे ही पुन उलट क्रम से, नागिन चाल से पढ़ने पर भी वही चतुर्थ पद प्राप्त होगा ।

चित्र की इन चारो पक्तियो को ही आड़े क्रम मे बड़ी नागिन-चाल से ऊपर से नीचे एव नीचे से ऊपर लगातार, उल्टे-सीधे क्रम से पढ़ते रहने पर, अनेको अनेको बार बिना रुके इस श्लोक को पढ़ा जा सकता है ।

इस प्रकार **"मुरज-बन्ध"** पढ़ने की विधि समाप्त हुई

✿ ✿

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धे षष्ठं काव्यम्

पंचविंशतितम-रजतसंयमोत्सव -वर्षाङ्कबन्धः (चित्र क्रमांक—१२)
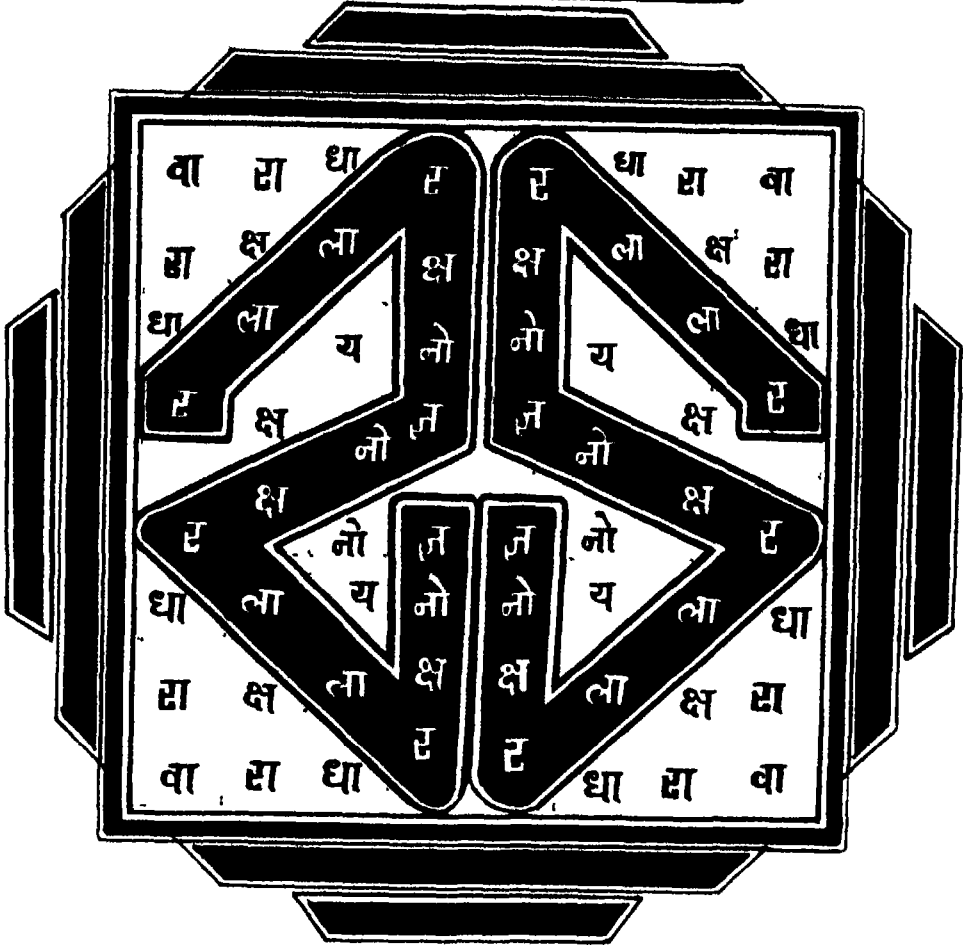
विद्याष्टकम्

वाराधारर ! धारावा-
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः।
धालाः' य' नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽज्ज' नोऽक्षर ! ॥1॥

रलालार - रलालार !
रक्ष नो ज्ज ! नोऽ' क्षर !
रलालार - रलालार-
रक्षनो ज ! जनोऽ क्षर ! ॥6॥

25वॉं रजतजयंतीसंयमोत्सव वर्षांक-बन्ध
षष्ठ श्लोक (चित्रक्रमांक-१२) को
पढ़ने की विधि

चित्र क्रमाक १२ मे एक चौसठ कोष्टको वाला वर्ग है । इस वर्ग के अन्तर्गत आचार्य श्री १०८ **विद्यासागरजी महाराज का 25वॉं "रजत-सयमोत्सव-वर्षांक-बन्ध"** (ईश्वी सन् १९९३) समाहित है । पूरे ६४ कोष्टको मे मूल प्रथम श्लोक, **"वाराधारर ! धारावा, राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा "** इत्यादि यह ३२ अक्षरो वाला 'सर्वतो भद्रबन्ध' अर्थात् जिसे सभी ओर से पढ़ा जा सके ऐसा अनुष्टुप् छन्द विद्यमान है ।

वर्ग के अदर अग्रेजी अक **25** चित्राकित है, इसमे विद्यमान अक्षरो को पढ़ने पर छठा श्लोक, **"रलालार-रलालार ! रक्षनो ज्ञज्ञ ! नोऽक्षर । रलालार-रलालार-रक्ष नो ज्ञ ! ज्ञनोऽक्षर ! ।।"** प्राप्त किया जा सकता है । इसको पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है –

अग्रेजी अक **2** के शीर्ष पर अकित **'र'** अक्षर से प्रारभ कर नीचे बाई ओर, **'ला'**, **'ला'**, **'र'** इस **'र'** को दो बार पढ़ते हुये, यही से पुन आये हुए मार्ग से लौटते हुए, **'ला'**, 'ला' और **'र'** अक्षर को पढ़कर, पुन 'र' अक्षर से नीचे दक्षिण की ओर अकित अक्षर, **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**(इसे दो बार पढ़े) **'नो'**, **'क्ष'** **'र'** तक पढ़ कर पुन इसी 'र' से नीचे अकित अक्षर , 'ला', 'ला', **'र'** तक पढ़कर वापस ऊपर 'र' तक जाने पर, और फिर दक्षिण-स्थित 'र' अक्षर से उत्तर की ओर ऊपर बढ़ते हुए **'ज्ञ'** तक जाने पर और इसी **'ज्ञ'** अक्षर से पुन नीचे दक्षिण की ओर **'र'** अक्षर तक जाने पर, पूरा श्लोक, **"रलालार-रलालार ! रक्ष नो ज्ञ ज्ञ ! नोऽक्षर । रलालार-रलालार-रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनोऽक्षर !"** ।। प्राप्त होगा । इसे उलट क्रम से भी अग्रेजी अक २ के चित्र मे पुन प्राप्त किया जा सकता है ।

वर्ग के अदर अग्रेजी अक **5** के शीर्ष पर अकित **'र'** अक्षर से प्रारभ करते हुये दाई ओर चित्राकित, **'ला'** और **'र'** तक पढ़कर , पुन **'र'** से लेकर वापस ऊपर के **'र'** अक्षर तक पहुँचकर इस **'र'** अक्षर से फिर दक्षिण की ओर चित्राकित-अक्षर **'क्ष'**, **'नो'** **'ज्ञ'** अक्षरो को पढ़कर फिर

इसी **'झ'** से दाई ओर अकित-अक्षर **'नो'** **'क्ष'** **'र'** तक पढ़ने से (१) **"रलालार-रलालार !** (२) **रक्ष नो झझ ! नोऽक्षर !"** इन प्रथम दो पदो की प्राप्ति होगी ।

अग्रेजी अक **5** मे पूर्व दिशा की ओर मध्य मे अकित **'र'** अक्षर से प्रारभ कर नीचे की ओर अकित अक्षर क्रमश **'ला'**, **'ला'**, और **'र'** तक पढ़कर पुन इसी **'र'** से ऊपर की ओर अकित **'र'** अक्षर तक पहुचने पर और अग्रेजी **5** अक की दक्षिण मे स्थित **'र'** अक्षर से ऊपर उत्तर की ओर अकित अक्षर, **'क्ष'** **'नो'**, **'झ'** अक्षरो को पढ़कर फिर इसी **'झ'** से वापस नीचे **'र'** तक लौटने पर, **"(१) रलालार-रलालार"** **(२) रक्षनो झ ! झनोऽक्षर"** इन तृतीय और चतुर्थ पदो की प्राप्ति होगी । इसे इसी 5 के चित्राकन मे उलट-क्रम से भी पढ़ा जा सकता है ।

इस प्रकार **"25वाँ रजत सयमोत्सव-वर्षांक-बन्ध,"** चित्र-क्रमाक बारह को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।
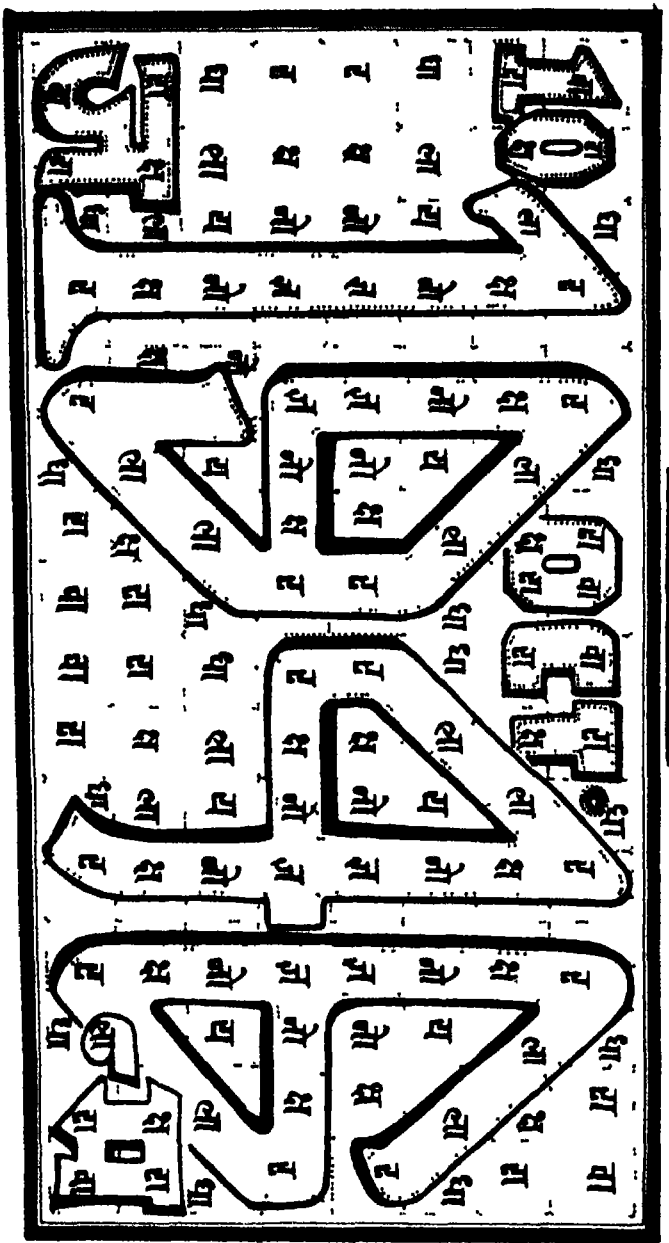
✿ ✿

जन्म-दिनांक बन्ध
श्लोक पाठ अन्वय (चित्रक्रमांक १३) को
पढ़ने की विधि

चित्र क्रमाक १३ मे एक १२८ कोष्ठको वाला आयाताकार चित्र है। इस आयत के अन्तर्गत **आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज** का **जन्म-दिनाक दस अक्टूबर उन्नीस सौ छयालीस (10 OCT 1946)** चित्राकित है। पूरे १२८ कोष्टको मे मूल **"रत्नत्रयस्तुति-शतक"** का १०२ नम्बर का श्लोक और **विद्याष्टक**' के प्रथम नम्बर का श्लोक, **"वाराधारर ! धारावा राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा ! । धालाय ! नो नोऽयलाधा रक्ष नोऽ ज्ञज्ञ ! नोऽक्षर ॥१०२॥"** विद्यमान है (दोनो श्लोक एक ही तरह है अत यहाँ १०२ का उल्लेख मात्र पर्याप्त है) कोष्टक के भीतर दोनो ही विद्यमान है। इन दोनो श्लोको को सर्वतोभद्र क्रमसे अर्थात् विलोम-प्रतिलोम सर्व चारो दिशाओ से पढ़ा जा सकता है। तथा इन सभी कोष्टको के अन्तर्गत चित्राकित **"10 OCT जन्म"** इन चित्राक्षरो एव चित्राको मे **'विद्याष्टक'** का आठवां श्लोक, **"रावाराक्ष क्षरावारा, राक्षराक्ष क्षराक्षरा । वारा रा क्षक्षरा रावा, वाऽक्षवा क्षक्ष ! वाक्षवा ।"** समाहित है और बड़े अक चित्र **'1946'** मे **'विद्याष्टक'** का छठा श्लोक, **"रलालार-रलालार ! रक्षनो ज्ञज्ञ ! नो ऽक्षर। रलालार-रलालार-रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनो ! ऽक्षर ॥"** समाहित है इसको पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है –

'1' अक मे नीचे के **'रा'** अक्षर से प्रारभ कर उसके ऊपर अकित **'वा'** अक्षर को पढ़कर, **0** (शून्य) मे **'रा'** और **'क्ष'** को पढ़ते हुए पुन **'क्ष'** और **'रा'** को पढ़कर **'1'** अक मे लिखित **'वा'** और **'रा'** को पढ़ने के पश्चात् आठवे श्लोक का प्रथम पद, **"रावाराक्षक्षरावा रा"** निकल आता है। इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पद भी इन्ही चार अक्षरो मे प्रयास करने पर निकल आवेगे।

इसी प्रकार अग्रेजी अक्षर **'o'** मे विद्यमान अक्षर, **'रा'**, **'वा'**, **'रा'** **'क्ष'** इन चार अक्षरो मे श्लोकानुसार घूमते हुए पढ़ेगे तो भी **'विद्याष्टक'** का आठवॉ श्लोक सम्पूर्णत प्राप्त होगा।

इसी प्रकार अग्रेजी अक्षर, **'CT'** मे विद्यमान अक्षर, **"वाराराक्ष"** इन चार अक्षरो मे ही श्लोकानुसार घूमते हुए पढ़ेगे तो **"विद्याष्टक"** का वही आठवॉ श्लोक पूर्ण रूप से निकल आवेगा।

इसी प्रकार आयत के निचले दो कोनो मे अकित **'ज'** और **'न्म'** चित्राक्षरो मे विद्यमान 'रा, **क्ष, वा, रा'** और **'क्षरारावा'** इन चारचार अक्षरो मे श्लोकानुसार घूमते हुये पढ़ेगे तो भी **'विद्याष्टक'** का आठवाँ श्लोक दोनो जगह निकल आवेगा ।

'1946' इन प्रत्येक अक चित्रो मे विद्यमान अक्षरो को घूमते हुए पढ़ेगे तो **'विद्याष्टक'** का छठा श्लोक, **"रलालार-रलालार, रक्षनो ज्ञज्ञ ! नोऽक्षर** । रलालार-रलालार- **रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनो ! ऽक्षर !** ॥ निकल आवेगा ।

चित्राक **'1'** मे शीर्षांकित' **'र'** और बाये बाजू का अक्षर **'ला'**, इसे सीधे और उलटे से सीधे ऐसे क्रमश दो दो बार पढ़ने से **"रलालार-रलालार"** यह प्रथम पद निकल आवेगा । शीर्षांकित 'र' से सीधे नीचे अकित 'र' तक आने पर, **"रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर"** यह द्वितीय पद निकल आवेगा । जो यह क्रम है, इसे ही पुन एक बार दोहराते हुये पढ़ने से तीसरा और चौथा पद निकल आवेगा । ये दोनो (तृतीय और चतुर्थ पद) प्रथम और, द्वितीय पद के समान ही है ।

चित्राक **'9'** मे शीर्षांकित **'र'** अक्षर से नीचे दाई तरफ घूमते हुए **'ला'**, **'ला'**, **'र'**, **'र'** **'ला'**, **'ला'** और **'र'** तक आने पर छठे श्लोक का प्रथम पद, **"रलालार-रलालार"** निकल आवेगा । जहाँ से प्रारभ किया था उसी **'र'** अक्षर से ठीक नीचे दक्षिण की तरफ, **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'**, यहाँ दाई तरफ घूमकर, **'नो'**, **'क्ष'**, और **'र'** पर समाप्त करने से छठे श्लोक का द्वितीय पद, **"रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर !"** निकल आवेगा ।

चित्राक **'9'** के मध्य भाग पर दाईं ओर निचला अक्षर **'र'** से प्रारभ कर सीधे नीचे की ओर अकित अक्षर **'ला'**, **'ला'** और **'र'** अक्षर को पढ़कर पुन उसी **'र'** से वापस लौटते हुये **'ला'**, **'ला'** और **'र'** पर समाप्त करने पर छठे श्लोक का तृतीय पद **"रलालार-रलालार"** निकल आवेगा । तथा अभी जहाँ समाप्त किया है, चित्राक **'9'** के मध्य भाग पर स्थित उसी **'र'** से प्रारभ कर बाई ओर अकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, को पढ़कर, एव उसी **'ज्ञ'** के ऊपर उत्तर की ओर लिखित अक्षर **'ज्ञ'**, **'नो'**, **'क्ष'** और **'र'** पर समाप्त करने पर छठा श्लोक का चतुर्थ पद, **रक्षनोज्ञ ! ज्ञनोऽ ! क्षर !"** उपलब्ध हो जायेगा ।

चित्राक **'4'** मे सबसे ऊपर अकित अक्षर **'र'** से बायी तरफ नीचे की ओर आने पर क्रमश , **'ला'**, **'ला'** और **'र'** ये अक्षर पढ़ने पर और यही से ऊपर 'र' अक्षर तक पहुँचने पर छठे श्लोक का, **"रलालार-रलालार"** यह प्रथम पद निकल आवेगा ।

चित्राक **'4'** मे सबसे ऊपर अकित अक्षर 'र' से सीधे नीचे की ओर **'र'** अक्षर तक जाने पर अथवा दक्षिण से ऊपर 'र' तक आने पर, छठे श्लोक का द्वितीय पद, **"रक्षनो ज्ञज्ञ । नो । क्षर"** प्राप्त होगा।

चित्राक **'4'** मे सबसे ऊपर अकित अक्षर **'र'** से सीधे नीचे दक्षिण की ओर **'र'** अक्षर तक जाने पर अथवा दक्षिण से ऊपर 'र' तक आने पर, छठे श्लोक का द्वितीय पद, **"रक्षनो ज्ञज्ञ । नो क्षर"** प्राप्त होगा।

चित्राक **'4'** के मध्यमे अकित ऊपरवाले 'र' से प्रारभ कर, **'ला'**, **'ला'**, और 'र' अक्षर को पढ़कर पुन इसी 'र' से लौटकर आरभ किये **'र'** तक जाने पर, छठे श्लोक का प्रथम पद प्राप्त होगा और नीचे चित्राक **'4'** के मध्याकित नीचेवाले 'र' अक्षर से प्रारभ कर दाई ओर लिखे अक्षर, **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** (इसे दो बार पढ़ना है) और इस 'र' से दक्षिण की ओर नीचे अकित 'र' तक जाने पर छठे श्लोक का चतुर्थ पद प्राप्त होगा ।

चित्राक **'6'** पर शीर्षांकित अक्षर 'र' से प्रारभ कर दाई तरफ 'र' अक्षर तक जाकर पुन ऊपरी 'र' अक्षर पर लौट आने पर, छठे श्लोक का प्रथम पद, **"रलालार-रलालार"** प्राप्त होगा। चित्राक **'6'** पर शीर्षांकित अक्षर 'र' से नीचे दक्षिण के 'र' अक्षर तक जाने पर द्वितीय पद प्राप्त होगा । इसी **'र' अक्षर से** दायी तरफ लिखित **'ला'**, **'ला'** और 'र' अक्षर को पढ़कर और यही से नीचे के 'र' तक जाने से छठे श्लोक का तृतीय पद प्राप्त होगा । और इसी 'र' से प्रारभ कर ऊपर उत्तर की ओर लिखित **'क्ष'** **'नो'**, **'ज्ञ'** अक्षरो को पढ़कर इसी **'ज्ञ'** से दाई तरफ अकित, **'नो'**, **'क्ष'** और **'र'** पर समाप्त करने पर अथवा वापस लौटने पर छठे श्लोक का चतुर्थ पद निकल आवेगा ।

इस तरह **"विद्याष्टकम्"** के प्रथमश्लोक तथा **"रत्नत्रय-स्तुतिशतक"** श्लोक इन मूल दोनो श्लोको मे निहित **"जन्म दिनाक -बन्ध,"** **'10 OCT 1946'** को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।
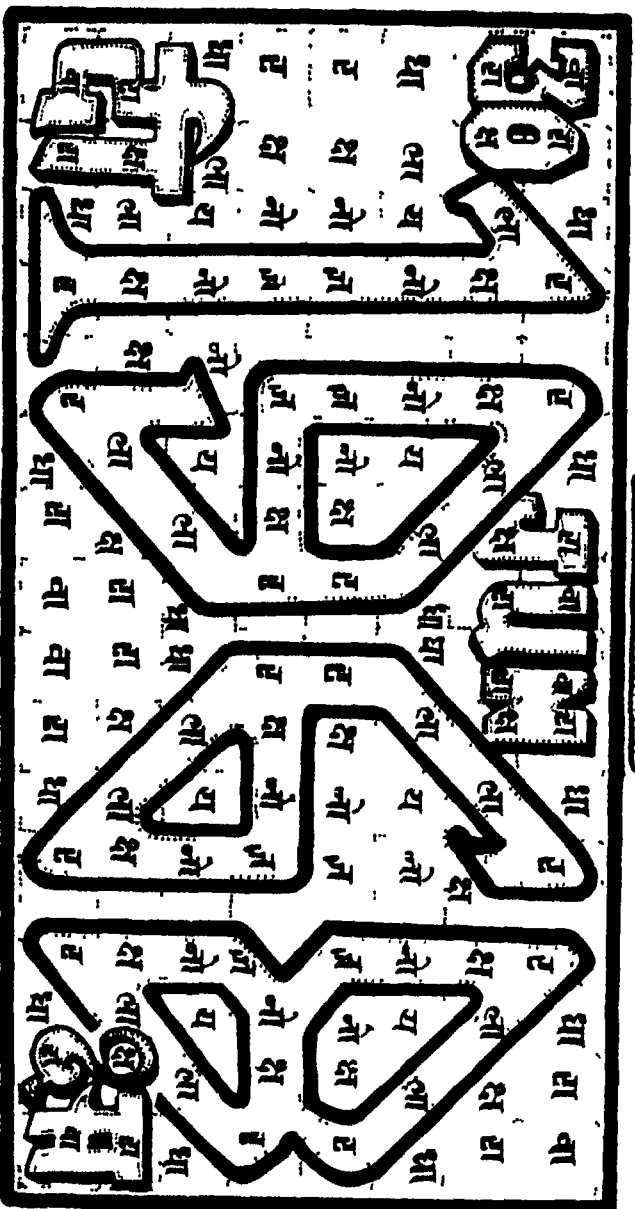
(चित्र क्रमांक—१४)

दीक्षा-दिनांकबन्धे विद्याष्टकम्

[१]

वाराधारर ! धारावा- ।
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा: ! ॥
धाला: ! य ! नो नोऽयलाधा ।
रक्ष नोऽजज ! नोऽक्षर ! ॥

[२]

वाराधारर ! धारावा- ।
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा ! ॥
धाला: ! य ! नो नोऽयलाधा ।
रक्ष नोऽजज ! नोऽक्षर ! ॥

[३]

रलालार - रलालार ! ।
रक्ष नो जज ! नोऽक्षर ! ॥
रलालार - रलालार - ।
रक्षनो ज ! जनोऽक्षर ! ॥

[४]

रावाराक्षक्षरावा राऽ- ।
राक्षराक्ष - क्षराक्षरा: ॥
वा रारा-क्षक्षरा रावा ।
वाऽ क्षला: क्षक्ष ! वाक्षवा: ॥

दीक्षा दिनांक बन्ध
श्लोक पद्य-अष्टम (चित्रक्रमांक १४) को
पढ़ने की विधि

चित्र क्रमाक १४ मे १२८ कोष्टकोवाला एक आयताकार चित्र है । इस आयत के अन्तर्गत **आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज** का **दीक्षा दिवस दिनाक "तीस जून उन्नीस सौ अड़सठ (30 JUN 1968)"** चित्राकित है । पूरे १२८ कोष्टको मे मूल **"रत्नत्रयस्तुति-शतक"** का १०२ नम्बर का श्लोक और **"विद्याष्टक"** का प्रथम शलोक **"वाराधारर । धारावा राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा । धाला. । य । नो नोऽयलाधा रक्ष नोऽझझ । नोऽक्षर । ।।१०२।।"** विद्यमान है । (यहाँ एक-श्लोक का ही उल्लेख है क्योकि दोनो श्लोक समान होने से पुन देने की जरूरत नही है) उन दोनो ही श्लोको को कोष्टक मे सर्व ओर से पढ़ा जा सकता है । तथा इन सभी कोष्टको के अन्तर्गत चित्राकित **"30 JUN दीक्षा"** इन चित्राक्षरो एव चित्राको मे **"विद्याष्टक"** का आठवाँ श्लोक **"रावाराक्ष क्षरावारा राक्षराक्ष क्षराक्षरा । वारा रा क्षक्षरा रावा, वाऽक्षवा क्षक्ष । वाक्षवा ।।"** समाहित है, और बड़े अक चित्र **'1968'** मे **'विद्याष्टक'** का छठा श्लोक, **"रलालार-रलालार । रक्ष नो झझ । नो । ऽक्षर । । रलालार-रलालार रक्षनो झ । झनो । ऽक्षर । ।।"** समाहित है। इसको पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है –

'3' अक मे नीचे के **'रा'** अक्षर से प्रारभ कर उसके ऊपर अकित **'वा'** अक्षर को पढ़कर **'0'** (जीरो/शून्य) मे **'रा'** और **'क्ष'** को पढ़ते हुये पुन **'क्ष'** और **"रा"** को पढ़कर **'3'** अक मे लिखित **'वा'** और **'रा'** को पढ़ने के पश्चात् आठवे श्लोक का प्रथम पद, **"रावाराक्ष, क्षरावारा"** निकल आता है । इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पद भी इन्ही चार अक्षरो मे प्रयास करने पर निकल आवेगा ।

इसी प्रकार अग्रेजी अक्षर **'J'** और **'U'** मे विद्यमान अक्षर 'रा', **'वा'**, **'रा'** **'क्ष'** इन चार अक्षरो मे श्लोकानुसार घूमते हुए पढ़ेगे तो भी **'विद्याष्टक'** का आठवाँ श्लोक सम्पूर्णरूप से प्राप्त होगा ।

इसी प्रकार अग्रेजी अक्षर **'N'** मे विद्यमान अक्षर **'रा'**, **'वा'**, **'रा'**, **'क्ष'** इन चार ही अक्षरो मे घूमते हुए पढ़ेगे तो भी **"विद्याष्टक"** का वही आठवाँ श्लोक प्राप्त होगा ।

इसी प्रकार आयत के निचले दो कोनो मे अकित **"दी"** और **"क्षा"** चित्राक्षरो मे विद्यमान, **'रा'**, **'वा'**, **'रा'**, **'क्ष'** और **'क्ष'**, **'रा'**, **'वा'**, **'रा'** इन चार चार अक्षरो मे श्लोकानुसार घूमते हुये पढ़ेगे तो भी **"विद्याष्टक"** का आठवॉ श्लोक निकल आवेगा ।

इसी तरह आयताकार मे विद्यमान बड़े अक-चित्र **"1968"** के अन्दर विद्यमान अक्षरो को घूमते हुए पढ़ेगे तो **'विद्याष्टक'** का छठा श्लोक, **"रलालार-रलालार, रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर । रलालार-रलालार-रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनो । ऽक्षर ! ॥६॥"** निकल आवेगा ।

चित्राक **'1'** मे शीर्षांकित **'र'** और बाजू का अक्षर **'ला'** इसे सीधे और उल्टे से सीधे ऐसे क्रमश दो दो बार पढ़ने से **"रलालार-रलालार"** यह प्रथम पद निकल आवेगा । शीर्षांकित **'र'** से सीधे नीचे अकित **'र'** तक आने पर **"रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नो क्षर"** यह द्वितीय पद निकल आवेगा । जो यह क्रम है इसे ही पुन एक बार दोहराते हुये पढ़ने से छठे श्लोक का तीसरा और चौथा पद निकल आवेगा । क्योकि ये दोनो (तृतीय और चतुर्थ पद) प्रथम और द्वितीय पद के समान ही है ।

चित्राक **'9'** मे शीर्षांकित **'र'** अक्षर से नीचे दाईं तरफ घूमते हुए **'ला'**, **'ला'**, **'र'**, **'र'**, **'ला'**, **'ला'** और **'र'** तक आने पर छठे श्लोक का प्रथम पद, **"रलालार-रलालार"** निकल आवेगा । जहॉ से प्रारभ किया था उस **'र'** अक्षर से ठीक नीचे दक्षिण की तरफ, **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'** यहा दाईं तरफ घूमकर, **'नो'** **'क्ष'**, और **'र'** पर समाप्त करने से छठे श्लोक का द्वितीय पद **"रक्ष नो ज्ञज्ञ नो ऽक्षर !"** निकल आवेगा ।

चित्राक **'9'** के मध्य भाग पर दाईं ओर नीचे वाला अक्षर **'र'** से प्रारभ कर सीधे नीचे की ओर अकित अक्षर **'ला'**, **'ला'**, और **'र'** अक्षर को पढ़कर पुन उसी **'र'** से वापस लौटते हुए **'ला'**, **'ला'** और **'र'** पर समाप्त करने पर छठे श्लोक का तृतीय पद, **"रलालार-रलालार"** निकल आवेगा । तथा अभी जहॉ समाप्त किया है, चित्राक **'9'** के मध्य भाग पर स्थित उसी **'र'** से प्रारभ कर बाई ओर अकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** को पढ़कर, एव उसी **'ज्ञ'** के ऊपर उत्तर को ओर लिखित अक्षर **'ज्ञ'**, **'नो'**, **'क्ष'** और **'र'** पर समाप्त करने पर छठे श्लोक का चतुर्थ पद, **"रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनो ! ऽक्षर ! "** उपलब्ध हो जावेगा ।

चित्राक **'6'** मे शीर्षांकित **'र'** अक्षर से नीचे बाईं तरफ घूमते हुए **'ला'**, **'ला'**, **'र'**, **'र'**, **'ला'**, **'ला'** और **'र'** तक आने पर छठे श्लोक का प्रथम पद,–**"रलालार-रलालार"** प्राप्त होगा ।

और इसी 'र' से बढ़ते हुये ऊपर की ओर अंकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** (**'ज्ञ'** को दो बार पढ़ते हुये) बाईं ओर मुड़कर **'नो,'** **'क्ष'** और **'र'** अक्षर पर समाप्त करने पर **'विद्याष्टक'** के छठे श्लोक का द्वितीय पद **"रक्ष नो ज्ञज्ञ । नोऽ क्षर । ।।"** निकल आवेगा । इसी प्रकार **'6'** के चित्र मे मध्य भाग मे बाई ओर स्थित नीचेवाले **'र'** अक्षर से प्रारभकर उसके नीचे लिखित अक्षर **'ला'**, **'ला'**, **'र'** पढ़कर वापस ऊपरी 'र' अक्षर तक, जहाँ से प्रारभ किया था, वहाँ तक पहुँचने पर तृतीय पद और दाई तरफ अंकित अक्षर **'क्ष'** **'नो'**, **'ज्ञ'** (इसे दो बार पढ़ना है) से नीचे दक्षिण मे अंकित **'र'** अक्षर तक पढ़ने पर छठे श्लोक का तीसरा एव चौथा पद, **"रलालार-रलालार"** **"रक्षनो ज्ञज्ञ । नोऽक्षर"** निकल आवेगा ।

चित्राक **'8'** मे शीर्षांकित **'र'** अक्षर से सीधे दाईं तरफ अंकित अक्षर, **'ला'**, **'ला'**, **'र'** को पढ़कर यही से ऊपर 'र' तक लौटने पर, **"रलालार-रलालार"** यह प्रथम पद प्राप्त होगा । फिर इसी 'र' से बाईं तरफ नीचे अंकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** (इसे दो बार पढ़ना है) **'नो'** इस **'नो'** के दाईं तरफ सीध मे लिखे **'क्ष'** और इस **'क्ष'** से ऊपर 'र' तक आने पर **"रक्ष नो ज्ञज्ञ । नोऽक्षर"** इस द्वितीय पद की प्राप्ति होगी।

चित्राक **'8'** के दक्षिण मे दाईं तरफ अंकित अक्षर 'र' से नीचे **'ला'**, **'ला'** और 'र' तक पढ़कर फिर इसी 'र' से ऊपरी 'र' तक लौटने पर छठे श्लोक का तीसरा पद **"रलालार-रलालार"** प्राप्त होगा।

जिस 'र' से पहले प्रारभ किया था इसी 'र' से प्रारभ कर बाईं तरफ अंकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** (इसे दो बार पढ़ना है), **'नो,'** **'क्ष'** और 'र' तक समाप्त करने पर छठे श्लोक का चतुर्थ पद **"रक्षनो ज्ञ । ज्ञनो । ऽक्षर"** प्राप्त होगा ।

इस प्रकार **"विद्याष्टक"** मे मूल श्लोक सहित चित्रित **'दीक्षा-दिनाकबन्ध, 30 JUN 1968 दी-क्षा'** को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।
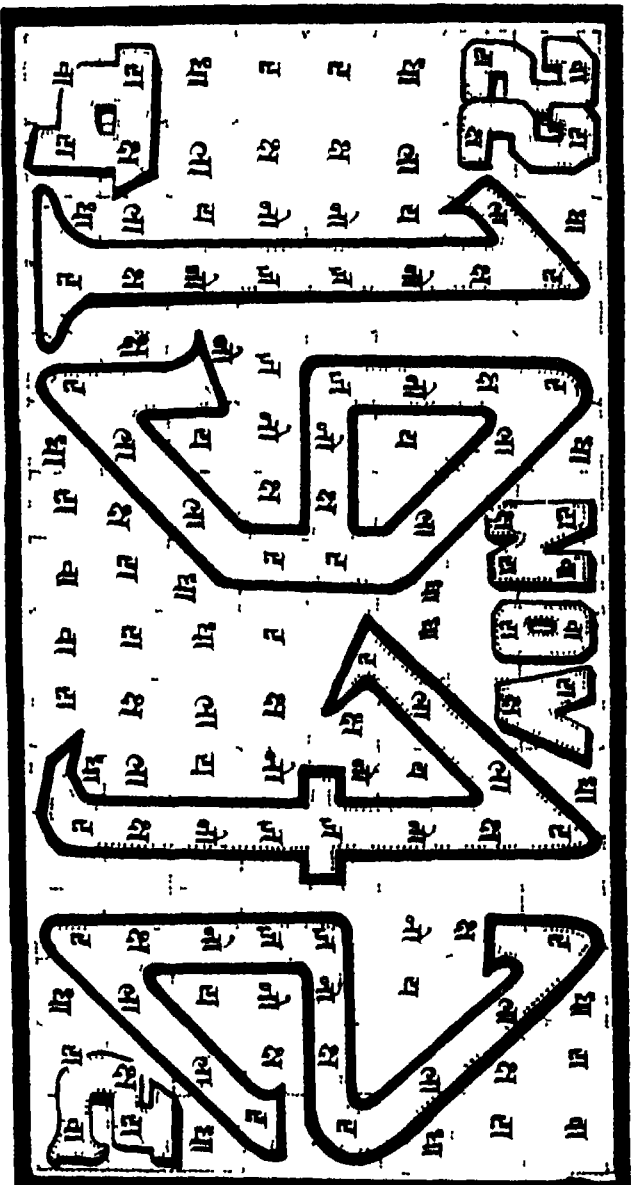
✿ ✿

पद-प्राप्ति दिनांक-बन्ध
श्लोक पाठ एवं अन्वय (चित्र क्रमांक-१५) को
पढ़ने की विधि

चित्र-क्रमाक-१५ मे १२८ कोष्टको वाला एक आयताकार चित्र है। इस आयत के अन्तगर्त **आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज** को उनके गुरु के द्वारा प्रदत्त **आचार्य-पद-ग्रहण का दिनाक बाईस नवम्बर उन्नीस सौ बहत्तर (22 NOV 1972)** चित्राकित है। पूरे १२८ कोष्टको मे मूल **"रत्नत्रय-स्तुति शतक"** का एक सौ दो नम्बरका (अनुष्टप्) श्लोक और **'विद्याष्टक'** का प्रथम अनुष्टुप् श्लोक "**वाराधारर । धारावा राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा । धाला । य । नो नोऽयलाधा रक्षनोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर । ॥१०२॥**" विद्यमान है। (यहाँ १०२ का ही मात्र उल्लेख है क्योकि दोनो श्लोक समान और ज्यो के त्यो होने से पुन देने की जरूरत नही है।) उन दोनो ही श्लोको को कोष्टक मे सर्व ओर से पढ़ा जा सकता है। तथा इन सभी कोष्टको के अतर्गत चित्राकित **"22 NOV पद"** इन चित्राक्षरो एव चित्राको मे **"विद्याष्टक"** का आठवाँ श्लोक- "**रावाराक्ष क्षरावारा राक्षराक्ष क्षराक्षरा । वारा रा क्षक्षराराव वाऽक्षवा क्षक्ष । वाक्षवा ॥**" समाहित है और बड़े अक चित्र **'1972'** मे **'विद्याष्टक'** का छठा श्लोक– "**रलालार-रलालार । रक्ष नो ज्ञज्ञ । नो । क्षर । रलालार-रलालार । रक्षनो ज्ञ । ज्ञनो । ऽक्षर । ॥**" समाहित है। इसे पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है–

'22' अक मे बायी तरफ के **'2'** मे स्थित नीचे वाले **'रा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर दो के आकार से ऊपर की ओर घूमते हुए **'वा'** अक्षर को पढ़कर फिर दाई ओर चित्राकित **'2'** के अदर का ऊपरवाला अक्षर **'रा'** को पढ़कर **'2'** के आकार से घूमते हुए उसके नीचे अकित अक्षर **'क्ष'** को पढ़कर इसी **'क्ष'** अक्षर से पुन आए हुए मार्ग से लौटते हुए बायी ओर स्थित **'2'** के चित्र के अन्दर के नीचे वाले अक्षर **'रा'** पर आकर समाप्त करने से **'विद्याष्टक'** के आठवे श्लोक का प्रथम पद प्राप्त होता है। उसी प्रकार दाईं तरफ स्थित **'2'** के चित्र मे अकित अक्षर **'रा'** और **'क्ष'** को दो बार ऊपर से नीचे और दो बार नीचे से ऊपर पढ़ेगे तो आठवे श्लाक का द्वितीय पद– **"राक्षराक्ष–क्षराक्षरा"** प्राप्त हो जायेगा।

इसी प्रकार बायी **'2'** के चित्र मे अकित अक्षर **'वा'** से **'2'** के आकार से ही घूमते हुये उसी मे नीचे अकित अक्षर **'रा'** को पढ़कर फिर दायी तरफ **'2'** के चित्र मे अकित अक्षर **'रा'** से **'2'** के आकार से घूमते हुये नीचे अकित अक्षर **'क्ष'** को पढ़कर उसी **'क्ष'** से वापस **'रा'**

तक पहुचने पर एव इसी तरह बायी तरफ **'2'** के चित्र मे भी नीचे से अकित **'रा'** से ऊपर **'वा'** तक पहुचने पर आठवे श्लोक का तृतीय पद, **"वा रारा-क्षक्षरा रावा"** निकल आवेगा ।

'22' अक मे अकित अक्षर **'वा'** और **'क्ष'** को सीधे क्रम से दो बार और उल्टे क्रम से दो बार पढ़ने पर आठवे श्लोक का चतुर्थ पद, **"वाऽ क्षवा क्षक्ष ! वाक्षवा"** प्राप्त होगा ।

इसी प्रकार अग्रेजी अक्षर **'N'** और **'OV'** के चित्र मे अकित अक्षर **'रा'**, **'वा'**, **'रा'**, **'क्ष'** इन चार अक्षरो मे ही घूमघूम कर पढ़ने का प्रयत्न करने पर आठवॉ श्लोक पूर्ण रूप से निकल आता है । इसी प्रकार आयत के अन्दर नीचे के दो कोणो मे चित्राकित अक्षर **'प'** और **'द'** के भीतर विद्यमान अक्षर **'रा'**, **'वा'**, **'रा'**, **'क्ष'** इन चार ही अक्षरो मे घूमते हुये पढ़ने पर भी **'विद्याष्टक'** का आठवॉ श्लोक **"रावाराक्ष-क्षरावारा राक्षराक्ष-क्षराक्षरा । वा रारा क्षक्षरा रावा, वाक्षवा क्षक्ष ! वाक्षवा ॥"** पूर्णरूप से निकल आवेगा ।

'1972', इन प्रत्येक अक चित्रो मे विद्यमान अक्षरो को घूमते हुये पढ़ेगे तो **"विद्याष्टक"** का छठा श्लोक, **"रलालार रलालार रक्षनो ज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर । रलालार-रलालार, रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनो ! ऽक्षर ॥६॥"** निकल आवेगा

चित्राक **'1'** मे शीर्षाकित **'र'** के बाये बाजूका अक्षर **'ला'** इसे सीधे और उल्टे से सीधे ऐसे क्रमश दो-दो बार पढ़ने से **"रलालार-रलालार"** यह प्रथम पद निकल आवेगा । शीर्षाकित **'र'** से सीधे नीचे अकित **'र'** तक आने पर, **"रक्ष नो ज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर !"** यह द्वितीय पद निकल आवेगा । जो यह क्रम है इसे ही पुन एक बार दोहराते हुये पढ़ने से तीसरा और चौथा पद निकल आवेगा । ये दोनो तृतीय और चतुर्थ पद प्रथम और द्वितीय पद के समान ही है।

चित्राक **'9'** मे शीर्षांकित **'र'** अक्षर से नीचे दाईं तरफ घूमते हुये, **'ला'**, **'ला'**, **'र'**, **'र'**, **'ला'**, **'ला'** और **'र'** तक आने पर छठे श्लोक का प्रथम-पद **"रलालार-रलालार"** निकल आवेगा। जहॉ से प्रारभ किया था उस **'र'** अक्षर से ठीक नीचे दक्षिण तरफ, **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'** यहाँ दाई तरफ घूमकर, **'नो'** **'क्ष'**, और **'र'** पर समाप्त करने से छठे श्लोक का द्वितीय पद, **"रक्ष नोज्ञज्ञ ! नो ! ऽक्षर ! ।"** निकल आवेगा।

चित्राक **'9'** के मध्य भाग पर दाई ओर निचला अक्षर **'र'** से प्रारभ कर सीधे नीचे की ओर अकित अक्षर **'ला'**, **'ला'** और **'र'** अक्षर को पढ़कर पुन उसी **'र'** से वापस लौटते हुये **'ला'**, **'ला'** और **'र'** पर समाप्त करने पर छठा श्लोक का तृतीय पद, **"रलालार-रलालार"** निकल

आवेगा । तथा अभी जहाँ समाप्त किया है, चित्राक **'9'** के मध्य भाग पर स्थित उसी 'र' से प्रारभ कर बायी ओर अकित अक्षर **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'** को पढ़कर, एव उसी **'ज्ञ'** के ऊपर उत्तर की ओर लिखित अक्षर **'ज्ञ'**, **'नो'**, **'क्ष'** और 'र' पर समाप्त करने पर छठा श्लोक का चतुर्थ पद, **"रक्षनो 'ज्ञ' । ज्ञनोऽ । क्षर ।"** उपलब्ध हो जायेगा।

चित्राक **'7'** मे शीर्षांकित 'र' से नीचे बाईं तरफ अकित **'ला'**, **'ला'** और 'र' अक्षर तक पढ़कर पुन यही से लौटते हुये ऊपरी 'र' तक पहुचने पर छठे श्लोक का प्रथम पद, **'रलालार-रलालार'** प्राप्त होगा।

शीर्षांकित 'र' से सीधे नीचे दक्षिण मे अकित अक्षर 'र' तक पहुँचने पर छठे श्लोक का दूसरा पद, **"रक्ष नो ज्ञज्ञ । नोऽक्षर ।"** प्राप्त होगा ।

इसी प्रकार ऊपर लिखे क्रमको यथा क्रमसे फिरसे दुहराने पर छठे श्लोक का क्रमश तीसरा और चौथा पद पढ़ा जा सकता है ।

चित्राक **'2'** के मध्य मे पूर्व की तरफ अकित अक्षर 'र' से ऊपर उत्तर दिशा मे अकित 'र' अक्षर तक और फिर यही से नीचे 'र' तक पहुँचने पर छठे श्लोक का प्रथम पद, **"रलालार-रलालार"** प्राप्त होगा। इसी 'र' से बाईं तरफ सीधे पश्चिम की ओर अकित अक्षर 'क्ष', **'नो'**, **'ज्ञ'** और इस **'ज्ञ'** से नीचे की ओर लिखे अक्षर **'ज्ञ'** **'नो'**, **'क्ष'** और 'र' पर समाप्त करने पर छठे श्लोक का द्वितीय पद, **"रक्षनो ज्ञज्ञ । नो। ऽक्षर।"** प्राप्त होगा ।

चित्राक **'2'** के नीचे दक्षिण स्थित अक्षर 'र' से ऊपर सीधे दायी तरफ **'ला'**, **'ला'**, 'र' को पढ़कर यही से नीचे 'र' तक लौटने पर छठे श्लोक का, तृतीय पद, **"रलालार-रलालार"** पढ़ा जा सकता है। इसी प्रकार दक्षिण स्थित 'र' से प्रारभ कर ऊपर उत्तर की ओर अकित अक्षर **'क्ष'** **'नो'**, **'ज्ञ'**, **'ज्ञ'** और दाई तरफ मुड़कर **'नो'**, **'क्ष'**, और 'र' तक पढ़ने पर छठे श्लोक का चतुर्थ पद, **"रक्षनो ज्ञ ! ज्ञनो । ऽक्षर ।"** निकल आवेगा ।

इस प्रकार दोनो मूल– श्लोक सहित, उनके अन्तर्गत निहित **"पद-प्राप्ति-दिनाक-बन्ध"** चित्र, **(22 NOV 1972)** को अर्थात् **चित्र क्रमाक -१५** को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।

❁ ❁ ❁

7
विद्याष्टकस्य सप्तमकाव्यम्
टेपरिकॉर्डरबन्धः
यलाधार ! रधाऽऽलाय ! नोऽक्षलाय ! यनोऽक्षलाः ।
यलाऽऽधार ! रधालाय - नोऽक्षलायय ! नोऽक्षलाः ॥७॥

अथ पर पूर्ववदत्रापि विद्याष्टकस्य प्रथममूलकाव्य तावद्यातायातपादक्रमेण चतु - षष्टीकोष्टकोपेतवर्गाकारमध्ये सस्थाप्य पश्चात्तस्मिन्नेव वर्गाकारमध्ये वर्गाकारस्य चतुर्दिक्ष्वपि चत्वारि गुरुभारतीग्राहकयन्त्राण्यथट्टिपरिकार्डरचित्राणि सस्थाप्य तेषु प्रत्येकचित्रमध्ये यावत्सम्प्रविष्टाश्चाऽक्षरान् बन्धविधिवत्सगृह्य तेन सग्रहेण विनिर्मितसप्तमकाव्येन सयमप्रधानाश्रय विद्याविधायकसयमिन यशोविभवञ्चैत श्रीगुरुवर श्रमणाधिपति स्तोतुमाह–

यलाधार ! रधाऽऽलाय ! नोऽक्षलाय ! यनोऽक्षला ।
यलाऽऽधार ! रधालायनोऽक्षलायय ! नोऽक्षला ॥७॥

–अन्वयार्थः–

हे यलाऽऽधार ! रधाऽऽलाय ! न अक्षलाय ! (त्व) यन अक्षला (असि)
हे यलाऽऽधार ! (त्व) रधालायन (असि) । अक्षलायय ! (त्व) न अक्षला ॥७॥

–सस्कृत-टीका–

यलाधारेति–

हे यलाऽऽधार ! (हि सयमप्रधानाऽऽश्रय !) य सयम सकलसयमो वार्थ । ल इन्द्रो नाथ प्रधानो वार्थ । आधार आश्रय सरक्षणाश्रयो वार्थ । अर्थाद् ये तु सयमे सकलसयमे वा ला इन्द्रा प्रधानास्ते यला सयमप्रधाना वेत्यर्थ । तेषा यलाना सयमप्रधानानामप्यर्थात्सघस्थसर्वोत्कृष्टसयमपालकाऽऽत्मसाधनारतसाधकश्रमणानामपि योऽसौ आधार आश्रय स यलाधारस्तत्सम्बुद्धौ हे यलाधार ! सयमप्रधानाश्रय ! वेत्यर्थ ।

हे रधाऽऽलाय ! (हि उग्रगुणाऽऽदायकसयम !) र[1] उग्र प्रबल उत्कृष्टो वार्थ । धो[2] गुण इत्यर्थ । आला आदायको वर्द्धक पोषको वेत्यर्थ । य सयम चारित्र्य वेत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । उग्राश्च

–सन्दर्भाः

(१) र उग्रोत्कृष्टयोरपि । इति च (प च)
(२) धो धर्मेऽपि गुणे मत । इति च (प च)

उत्कृष्टाश्च वा गुणान् योऽसौ आदायक प्रदायको वर्द्धको पोषको वा स उत्कृष्टगुणवर्द्धकोऽथवा रधाऽऽला इत्यर्थ । एव रधाऽऽलाश्चाऽर्थादुत्कृष्टगुणवर्द्धकश्चाऽसौ योऽर्थात्सयम स उत्कृष्टगुणवर्द्धकसयमोऽथवा रधालायो वेत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे रधाऽऽलाय ! अथवा हे उत्कृष्टगुणवर्द्धकसयम ! वेत्यर्थ । अर्थद्धे उत्कृष्टात्मिकानन्तगुणवर्द्धकसयम ! इत्यर्थ ।

हे न (अस्माक) अक्षलाय ! (हे अस्माक यतिजनाना विद्याविधायकसयम !) यस्य (गुरो) योऽर्थात् सयमोऽक्ष ज्ञान विद्या वा लाति राति ददाति विदधाति वा सोऽक्षलायोऽथवा विद्याऽऽदायकसयम इत्यर्थ । तत्सम्बुद्धौ हे अक्षलाय ! हे ज्ञानदायकसयम ! हे विद्यादायकसयम ! इत्यर्थ । अर्थाद्धे ज्ञानदायकसयमिन् ! इत्यर्थ ।

(त्व) यन अक्षला (असि) ((त्व) यशोविभव (असि)) यो यश ख्यातिर्विश्रुतिर्विश्रावो वार्थ । न विभवो धन वार्थ । य एवाऽर्थाद् यश एव विश्रुतिरेव विश्राव एव वा यस्य विभवो धन स यशोविभवोऽथवा यशोधनो विश्रुतिवित्त इत्यर्थ । अर्थादये गुरो ! त्व विश्रुतिवित्तोऽर्थाद् यशोविभवोऽसीत्यर्थ । अक्ष [३] स्वभाव प्रकृतिर्वेत्यर्थ । ला धारक । अक्षस्य च सहजस्वभावस्य च वाऽसौ ला इति अक्षला अर्थात्सहजस्वभावधारक इत्यर्थ । अर्थाद्धे गुरो ! त्व सहजस्वभावधारकोऽसीत्यर्थ ।

हे यलाऽऽधार ! (हे सयमपोषकनिधान !) य सयम इत्यर्थ । तस्य सयमपोषकस्य परेषा योऽसावाधारो निधान आगार सयमपोषकनिधानस्तत्सम्बुद्धौ हे सयमपोषकनिधान ! अथवा हे यलाधार ! इत्यर्थ ।

(त्व) रधालायन (असि) (त्व प्रचण्डधर्मसपोषकसयमाऽऽगार (असि)) र उग्र प्रचण्ड प्रबल साधारणजनाऽग्राह्य इत्यर्थ । धो धर्म उत्तमक्षमादिदशविधधर्म इत्यर्थ । आला आपोषक सवर्द्धको सपोषको वेत्यत्यर्थ । य सयमो द्रव्यभावस्वरूपद्विविधसयम (अर्थादिन्द्रियनिरोधस्वरूप सयम स द्रव्यसयमो रागद्वेषादिभावाना परिहाररूप सयमो भावसयम इति) न आगारो निधि कोषो भाण्डारो

सन्दर्भाः

(३) अक्ष आत्मनि वा शीले स्वभावे वाऽपि वेदने । इति च (स हि आ)

वार्थ । किमुक्त भवत्येतत् । अर्थादये गुरो ! प्रचण्डरुपास्ते उत्तमक्षमादिरूपदशविधधर्मा साधारणजनधारणदु साध्यास्तथाप्यये गुरो ! त्वदीयसयमस्तेषा प्रचण्डधर्मसपोषकलक्षणसमन्वितत्त्वात्त्व प्रचण्डधर्मसपोषकसयमागारोऽसि अथवा त्वदीयसयम प्रचण्डधर्मसपोषकसयमस्तस्य सयमस्य त्वमागारोऽसीत्यर्थ ।

हे अक्षलायय ! (हि आत्मस्वामित्वशोभायात ! अथवा हे आत्मस्वातन्त्र्यसौभाग्ययात !) अक्ष आत्मा इत्यर्थ । ल इन्द्र इत्यर्थ । अय[४] सौभाग्य शोभा वेत्यर्थ । यो याता गन्ता वेत्यर्थ । अक्षस्याऽऽत्मनो वा योऽसौ ल इन्द्र स्वामी वा स आत्मस्वामी आत्मेन्द्रोऽथवाऽऽत्मस्वातन्त्र्यस्वामी वेत्यर्थ । तस्याऽऽत्मस्वातन्त्र्यस्य सौभाग्यस्य याता आत्मस्वातन्त्रयसौभाग्ययाता तत्सम्बुद्धौ हे आत्मस्वामित्वसौभाग्ययात ! अथवा हे आत्मस्वातन्त्र्यशोभायात ! अथवा हे आत्मस्वामित्वशोभायात ! अथवा हे अक्षलाऽयय ! इत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । अर्थाद्धे गुरो ! त्वमात्मस्वामित्वेन शोभायमान सस्तस्याऽऽत्मस्वामित्वस्वातन्त्र्यस्वरूपस्य सौभाग्यस्य याता भवन्विलससीत्यर्थ ।

(त्व) न (अस्माक) अक्षला (असि) (अस्माक धर्मसाधकाना व्यवहारनिर्वाहकोऽसीत्यर्थ) न अस्माक धर्मसाधकानामित्यर्थ । अक्ष[५] व्यवहारो धर्मव्यवहार इत्यर्थ । ला निर्वाहक इत्यर्थ । अक्ष व्यवहार लाति निर्वहतीत्यक्षला अर्थाद् धर्मव्यवहारनिर्वाहक इत्यर्थ । किमुक्तमेतत् । हे गुरो ! त्वमस्माक धर्मसाधकाना व्यवहारनिर्वाहकोऽस्यर्थाच्छिक्षादीक्षागणपोषणप्रायश्चित्तादिव्यवहारधर्मकार्यस्य निर्वाहकोसीत्यर्थ ।।७।।

✿ ✿

हिन्दी-टीका

हे सयमप्रधानाऽऽश्रय ! जो उत्कृष्ट-आत्म-साधना करने मे निरत हैं और सयम की अपेक्षा से श्रेष्ठ हैं ऐसे सयम-श्रेष्ठ/सयम-प्रधान,[५२] सघस्थ-यतिवरों के लिए आप परम-आश्रय-दाता हैं । अर्थात् आपका सयम अत्यन्त निर्मल[५३] होने से सयम प्रधान-यतिवरो के लिए भी आप यतिवर[५४]

—सन्दर्भाः—

(४) अयस्तु स्यात्सुभाग्येऽपि सुकृत्ये पूर्वजन्मन । इति च (स हि आ)
(५) अक्ष स्यादिन्द्रिये चक्रे, व्यवहारेऽपि सम्मत । इति च (प च

हैं। अर्थात् साक्षात् आचार्य-देव हैं। हे **उत्कृष्ट संयम के धाम** ! आपका सयम इतना उत्कृष्ट एव श्रेष्ठ है कि उस उत्कृष्टता एव श्रेष्ठता के कारण से उत्कृष्ट-आत्मिक-अनन्त-गुणो [155] की अभिवृद्धि स्वयमेव होती है। अत आपका सयम अनन्त-गुण-सवर्द्धक है। हे **विद्या-विधायक-सयमिन्** [156] ! आपकी सयम-पूर्ण चर्या की यह विशेषता है कि वह आगम-निष्ठ होने से उसके द्वारा हम लोगो के लिए अगम का ज्ञान स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। अत आपका सयम विद्याविधायक है और ऐसे ही विशेषता-पूर्ण सयम को आप धारण करते हैं इसलिए आप विद्या विधायक-सयमी हैं। हे **गुरो** ! **विश्रुति-विभव**[157] ! विश्रुति (ख्याति) ही आपका अपूर्व-विभव हो गया है अर्थात् आपकी विश्रुति (प्रसिद्धि) सारे ससार मे व्याप्त है अत आप विश्रुति-विभव हैं । हे **सहजात्मन्** ! आपकी आत्मा अत्यन्त सहज एव सरल है अत आप सहजस्वभाव-धारी हैं। हे **परमगुरो** ! आपके पास जितने भी गुण विद्यमान हैं वे सारे के सारे सद्‌गुण ही है अत आप अल्प-काल मे ही स्वय सयम पोषक-निधान[158] हो गये हैं। अर्थात् आपकी हर चेष्टा मे विद्यमान-प्रत्येक-सद्‌गुणसयम की यथार्थता को प्रदर्शित करता हुआ सयम की ही पुष्टि करता है। हे परमार्थ के परम-मूर्ति[159]। जो धर्म उत्तमक्षमादि[160] दश-विधरूप है वे अत्यन्त प्रचण्ड हैं अत वे धर्म, साधारण-जन-ग्रहण दु साध्य है अर्थात् साधारण जन स्वीकार करने के लिए अपनी असमर्थता प्रकट करता है। फिर भी आपकी द्रव्य[161] और भाव रूप-सयम[162] की चर्या उन कठिनतम धर्मों को सहजरूप से ही धारण कर रही है अत आप उन प्रचण्ड धर्म-सपोषक-सहज सयम[163] के आगार है निधान हैं। हे **गुरो** ! हे **परम-निस्पृह** [164] ! आप पवित्रात्मा की पवित्र-जीवन-चर्या अत्यन्त स्वाधीन है अत आपकी उस आत्मा की स्वतन्त्र दशा भी अत्यन्त सर्वोच्च है, इस स्वतत्र-दशा को उपलब्ध होना हरेक के वश की बात नही है। इसे कोई भाग्यवान आत्मा ही प्राप्त कर सकता है और आप उस आत्म स्वाधीन-स्वतत्र दशा के सौभाग्य[165] को सहज रूप से उपलब्ध होकर आत्म शोभा को प्राप्त हो रहे हैं अत आपके समान सौभाग्य वाला दूसरा अन्य कोई नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि आपके समान सुकृतवाला[166] दूसरा अन्य क्या कोई हो सकता है ? हे **गुरो** ! मेरी धारणा है कि उस ही स्वाधीन चर्या के कारण से आप उत्कृष्ट-पुण्य का सचय कर रहे हैं। हे **विभो** ! **श्रमणाधिपते** ! आप हमारे लिए अर्थात् साधुवर्ग के लिए शिक्षा,[167] दीक्षा,[168] गणपोषण,[169] प्रायश्चित्त[170] आदि व्यवहार के अधिष्ठाता[171] हैं अत आप हमारे व्यवहार धर्म के निर्वाहक[172] हैं। ॥7॥

❁ ❁

(१)
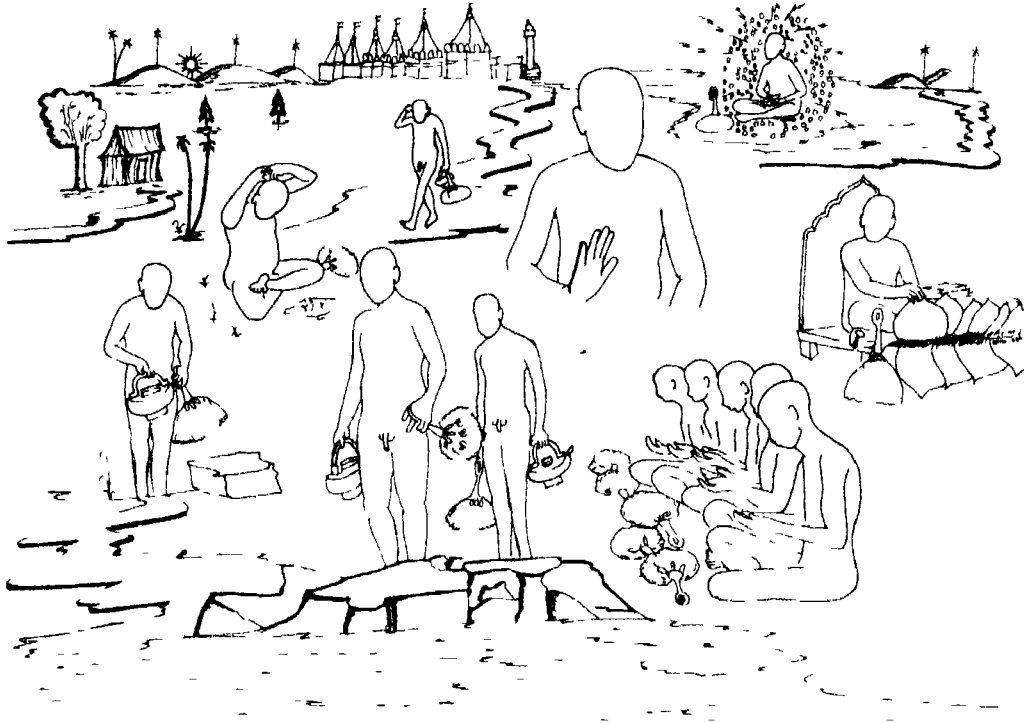
संयम श्रेष्ठ तुम्ही ने पाया, इस विध सयम आलय हो।
यतिवर संयम धारी जनको, एकमात्र गरिमामय हो।।
संयम के भी निलय तुम्ही हो, गुण अनत सवर्धक हो।
आगम मे निष्ठा होने से, सयम ज्ञान प्रवर्तक हो।।
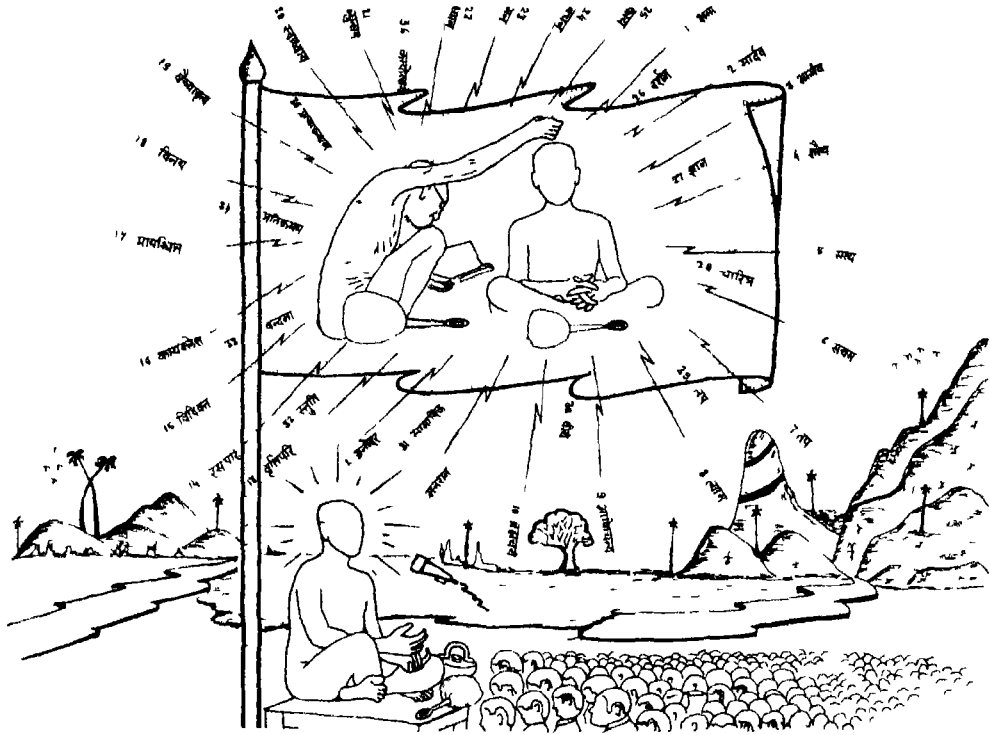
(२)

यश ही तेरा वैभव गुरुवर !, सरल आत्म सहजातम हो।
अल्पकाल में परम-गुरु बान, संयम-पोषक आतम हो।।
परमारथ की परम मूर्ति हो, दश धर्मों का वरण किया।
जनमानस को नही साध्य जो, उनका फिर अनुकरण किया।।
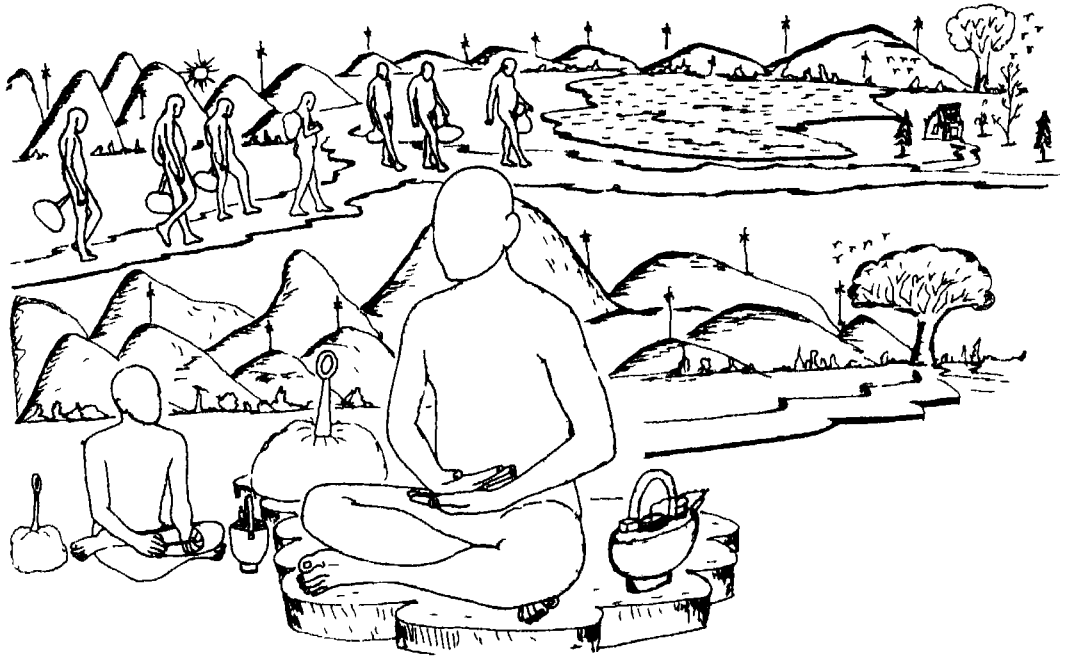
(३)

पराधीन नहीं जीवन-चर्या, स्वतंत्रता के आगर हो।
स्वतंत्र शोभित आत्म-तत्व से, गुरुवर विद्यासागर हो।।
यतिवर तुम अपनी चर्या से, पुण्य-कोष नित बढ़ा रहे।
साधुजनों के नायक बनकर, मोक्ष-महल पर चढ़ा रहे।।

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धे सप्तमकाव्यम्

गुरुभारतीग्राहकयन्त्रबन्धः

(चित्र क्रमांक—१६)

[चतुर्दिक्ष्वपि स पाऽधस्ता- त्प्रदर्शित.]
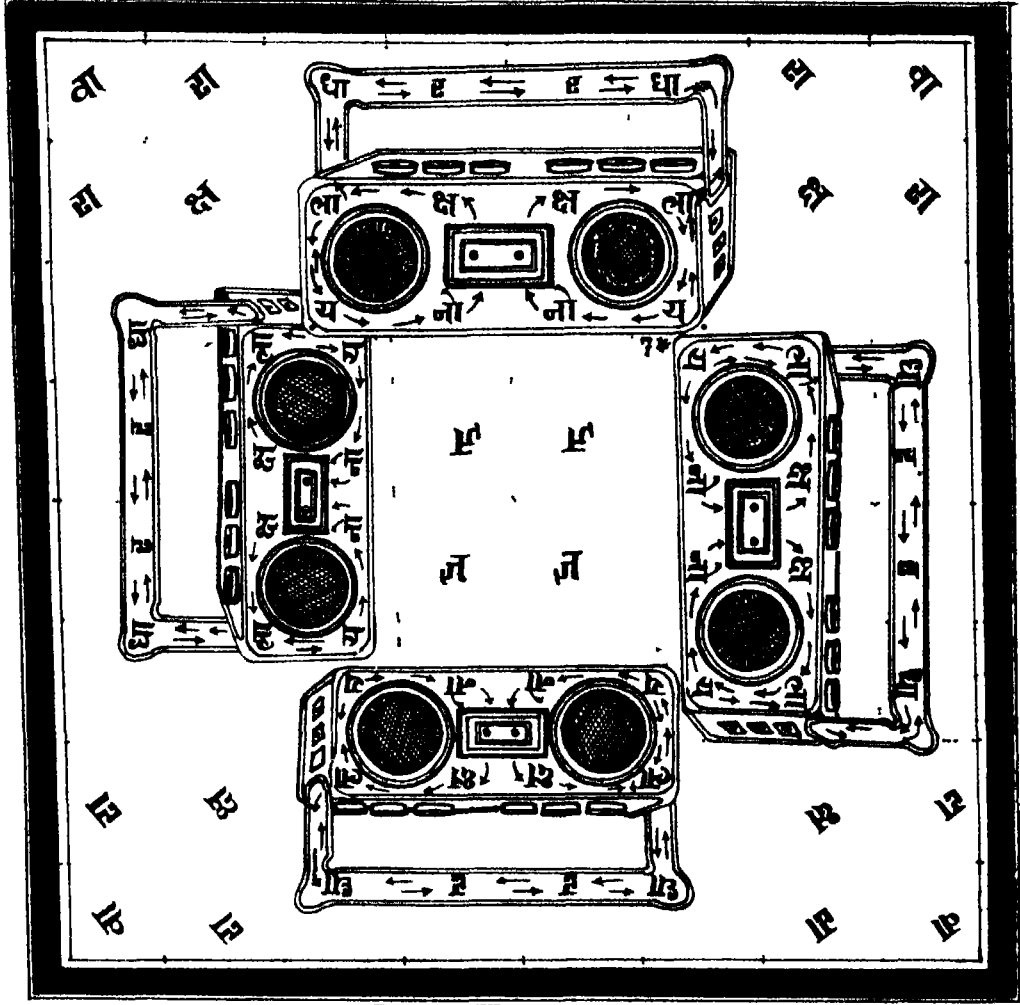
विद्याष्टकम्

यलाधार ! रधाऽऽलाय !
नोऽक्षलाय ! यनोऽक्षला: ।
यलाऽऽधार ! रधालाय -
नोऽक्षलायय ! नोऽक्षला: ॥7॥

वाराधारर ! धारावा
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा: ।
धाला: ! य ! नो नोऽयलाधा !
रक्ष नोऽजज ! नोऽक्षर ! ॥1॥

गुरु-भाग्नी ग्राहक-यंत्रबन्ध अर्थात् टेप-रिकार्डर-चित्र बन्ध सप्तम श्लोक (चित्रक्रमांक-१६) को पढ़ने की विधि

चित्र क्र० १६ मे एक चौसठ कोष्टकोवाला वर्ग है । इस वर्ग के अन्तर्गत **'विद्याष्टक'** का प्रथम मूल श्लोक **"वाराधारर ! धारावा, राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षरा· । धाला· ! य ! नो नोऽयलाधा, रक्षनोऽज्ञज्ञ ! नोऽक्षर ! ।"** विद्यमान है, इस श्लोक के अन्तर्गत चारो दिशाओ मे चार टेपरिकार्डर चित्रित है । इन चारो टेप रिकार्डर मे **'विद्याष्टक'** का सातवाँ श्लोक भी विद्यमान है, 'टेप' जिस तरह 'फॉरवर्ड' और 'बेकवर्ड' पोजिशन मे होता है, ठीक उसी प्रकार श्लोक को पढ़ना है श्लोक को पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है –

उत्तर दिशा मे चित्रित 'टेपरिकार्डर' के पूर्व-दक्षिण भाग के नीचे अर्थात् दायी गोलाकृति के दाई बाजू के नीचे के कोने मे अकित अक्षर **'य'** से शुरु करके दाई तरफ ऊपर की ओर बाण से निर्देशित **'ला'** अक्षर को पढ़ते हुए 'हेडिल' (हत्था) मे दाई ओर अकित **'धा'** से बायी ओर लिखित **'र', 'र', 'धा'** यहाँ से नीचे की ओर अकित **'ला'** फिर नीचे **'य'** दाई तरफ **'नो'** इसके ऊपर अकित **'क्ष'** से बाई ओर से गोल घूमते हुए **'ला' 'य'** (इसे दो बार पढ़ना है) फिर **'नो'** फिर ऊपर बाई तरफ से घूमते हुये **'क्ष'** और **'ला'** तक पढ़ने पर विद्याष्टक के सातवे श्लोक के प्रथम और द्वितीय पदो की प्राप्ति होगी । **(१) "यलाधार! रधालाय ! (२) नोऽक्षलाय ! यनोऽक्षला ।"**

इसी प्रकार 'टेपरिकार्डर' की बाई गोलाकृति के दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोने मे अकित अक्षर **'य'** से प्रारभ कर उसके ऊपर अकित **'ला'** और आगे 'हेडिल' मे अकित **'धा'** फिर दाई ओर अकित अक्षर **'र', 'र'** और **'धा'** को पढ़ते हुए नीचे की ओर अकित **'ला', 'य'** फिर बायी ओर का **'नो'** फिर उसके ऊपर **'क्ष'** फिर दाईं ओर अकित **'ला'** और फिर नीचे **'य'** (इसे दो बार पढ़ना है) और फिर से आगे का **'नो'** ऊपर का **'क्ष'** और इसके दाई ओर अकित अक्षर **'ला'** पर समाप्त करने पर सातवे श्लोक के तृतीय और चतुर्थ पदो" **(३) यलाधार ! रधालाय (४) नो क्षलायय ! नो क्षला "** की सिद्धि होगी ।

यहाँ विशेष ज्ञातव्य यह है कि इसी विधि का अनुसरण करते हुये शेष सभी ''टेपरिकार्डरो'' मे बधित, ''विद्याष्टक'' का सातवाँ श्लोक पूरी तरह से सभी मे पढ़ा जा सकता है । इस प्रकार **''गुरुभारती-ग्राहक-यत्र-बन्ध''** अर्थात् **''टेपरिकार्डर बन्ध''** मे मूल श्लोक सहित विद्याष्टक के सातवे श्लोक को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।

8
चतुरक्षर
बन्धः
विद्याष्टकस्य
अष्टमकाव्यम्_
यवयाक्षक्षयावा यऽ-।
याक्षयाक्ष - क्षयाक्षया: ॥
वा यया: क्षक्षया यवा
वाऽक्षवा: क्षक्षा। वाक्षवा: ॥
वा
य
य
क्ष

अथ पर पूर्वसम यावदत्रापि विद्याष्टकस्यादिम काव्य चतु षष्टीकोष्टकोपेतवर्गाकारमध्ये सस्थाप्य पुनस्तस्य वर्गाकारस्य चतुर्विदिक्ष्वपि सस्थिताश्च चतुश्चतुरक्षरान्प्रत्येकविदिग्विभागत्वेन सग्रह्य तासु प्रत्येकविदिग्विभागेष्वपि पृथक्पृथक् स्थानेषु विद्याष्टकस्याऽन्तिमञ्चाष्टमकाव्य सम्प्राप्नुवन्नागमविहितनिर्दोषोपदेशप्रदायक जगन्मङ्गलकारिवचनाधीश्वरमाध्यात्मविद्यामाध्यमेनाऽणुशक्तिसकटग्रस्तविश्वविनाशाऽपसारणसक्षमञ्चैत स्वनामधन्य ***विद्यासागरगुरुवर*** *चतुर्विदिक्चतुरक्षरबन्धस्वरूपाष्टमाऽन्तिमकाव्येनेह स्तोतुमाह–*

रावाराक्षक्षरावा राऽ-राक्षराक्षक्षराक्षराः ।
वा रारा क्षक्षरा रावा, वाऽक्षवा क्षक्ष ! वाक्षवाः ॥८॥

–अन्वयार्थः–

रावाराक्षक्षरावा राराक्षराक्षक्षराक्षरा (किन्तु) हे क्षक्ष ! (त्वदीया) वा रारा क्षक्षरा वा वाक्षवा अक्षवा ॥८॥

–संस्कृत-टीका–

रावाराक्षेति–

रावाराक्षक्षरावा (ध्वनिग्राहकेन्द्रियनाशकशब्दा) रावो[1] ध्वनिर्नाद स्वन शब्दो वेत्यर्थ । आरो ग्राहक इत्यर्थ । अक्षमिन्द्रिय हृषीक करण वेत्यर्थ । क्षो[2] नाशक उच्छेदको वेत्यर्थ । रावा शब्दा स्वना वेत्यर्थ । रोऽ[3]नुराग । अरा अदायक इत्यर्थ । क्षो[4]ऽहितोऽमङ्गलोऽभद्रोऽप्रशस्तकरो वेत्यर्थ । रा दायक उत्पादको वार्थ । किमुक्तमेतत् । ध्वनिग्राहकरूप चैतदिन्द्रिय ध्वनिग्राहकेन्द्रियमर्थाच्छ्रुति श्राव शब्दग्राह कर्ण श्रोत्रेन्द्रिय वार्थ । तस्य ध्वनिग्राहकेन्द्रियस्य कर्णस्य वा नाशकशब्दा ध्वनिग्राहकेन्द्रियनाशकशब्दा । अर्थात् कटुशब्दा निन्द्यशब्दा वेत्यर्थ । पुनरपि किंविशिष्टास्ते ।

–सन्दर्भाः–

(१) राव शब्दे निनादे वा ध्वनौ वाचि च भाषणे । इति च (प च)
(२) क्षो नाशे राक्षसेऽपि स्यात् । इति च (स हि आ)
(३) रोऽनुरागे निधावपि । इति च (प च)
(४) क्षो नाशेऽमङ्गलेऽहिते । इति च (प च)

राराक्षराक्षक्षराक्षरा (**अनुरागाऽदायकाऽहितदायकराक्षसमेघव्यवहारदायकाः**) रोऽनुराग । अरा अदायक इत्यर्थ । क्षोऽहितोऽ मङ्गलोऽभद्रोऽप्रशस्तकरो वेत्यर्थ । रा दायक उत्पादको वार्थ । क्षो राक्षस इत्यर्थ । क्षरो[५] मेघो घनाघनो वार्थ । अक्षो व्यवहार इत्यर्थ । रा दायक प्रदायक प्रयच्छको वार्थ । अनुरागस्याऽदायका अनुरागाऽदायका स्नेहविनाशका मैत्रीसबन्धोच्छेदका वेत्यर्थ । पुनरपि कथभूता । अहितदायका अर्थादभद्रदायकाऽमङ्गलोत्पादका वेत्यर्थ । पुनरपि किविशिष्टा । राक्षसमेघव्यवहारदायका अर्थाद्राक्षसमेघौ इव उग्रव्यवहारो राक्षसमेघव्यवहारस्तस्य राक्षसमेघव्यवहारस्य प्रदायका राक्षसमेघव्यवहारदायका अर्थाद्राक्षसमेघसमानाऽत्यन्तोग्रव्यवहारदायकास्ते शब्दा अनुरागविनाशका मैत्रीसबन्धोच्छेदका अहितप्रदायका भवन्ति वेत्यर्थ ।

(किन्तु) हे क्षक्ष ! (किन्तु हे अहितनाश ! अनिष्टहर !) किन्तु परन्तु पर वेत्यर्थ । (परन्तु हे गुरो ! इत्यध्याहार्य्य) क्षोऽहित इत्यर्थ । क्षो नाशो विनाशो वेत्यर्थ । क्षस्याऽहितस्य वा क्षो नाशोऽहितनाशस्तत्सम्बुद्धौ हे अहितनाश ! अथवा हे अनिष्टहर ! हे क्षक्ष ! वेत्यर्थ ।

(त्वदीया) वा रारा क्षक्षरा वा (शब्दा) (त्वदीया माङ्गलिका प्रेमवर्द्धका विनाशनिवारका वा शब्दा) त्वत्सम्बन्धिनस्त्वदीया इत्यर्थोऽर्थात्त्वद्गुरुवरस्य शब्दा मुखारविन्दविनि सृतवचनाऽमृतशब्द-निचया । वा[६] माङ्गलिका मङ्गलदायका मङ्गलस्वरूपा कल्याणकारका वेत्यर्थ । राऽरा प्रेमवर्द्धका धर्मानुरागसवर्द्धका वात्सल्यगुणप्रवर्द्धका वेत्यर्थ । क्षक्षरा अर्थाद् विनाशनिवारका अणुशक्तिसकटग्रस्तविश्वविनाशस्य निवारणनिमित्तसक्षमा अर्थात्तस्योग्रविनाशस्य प्रलयस्य वाऽपसारणस-क्षमा दूरीकरणसामर्थ्यक्षमा वार्थ । वा विकल्पार्थे वेति । रावा शब्दा नादा स्वना वेत्यर्थोऽथवा त्वन्मुखारविन्दविनि सृतवचनामृतशब्दनिचयास्ते वेत्यर्थ । पुनरपि कथम्भूतास्ते ।

वाक्षवा अक्षवा (समुद्रस्वभावधारका विद्यासागरा) व[७] समुद्र सागरो वेत्यर्थ । अक्ष स्वभाव । वा धारका वाहका वेत्यर्थ । अक्षो विद्या ज्ञान बोधो वार्थ । वा सागरा समुद्रा वेत्यर्थ । वस्य समुद्रस्येवाऽक्ष स्वभावो वाक्ष समुद्रस्वभाव इत्यर्थ । अर्थात् समुद्रसदृशगम्भीरस्वभाव इत्यर्थ । तस्य

—सन्दर्भाः

(५) क्षरो नाशे घनाघने । इति च (स हि आ)
(६) व समुद्रेऽपि माङ्गल्येऽनिले व्याघ्रनिवासयो । इति च (स हि आ)
(७) व सागरेऽपि चाऽवासे राहौ वस्त्रेऽपि बोधने । इति च (स हि आ)

समुद्रसमगम्भीरस्वभावस्य धारका समुद्रस्वभावधारका अथवा वाक्षवा इत्यर्थ । पुनरपि कथम्भूता अक्षवा अर्थाद् विद्यासागरा अक्षस्य ज्ञानस्य विद्याया वा वा समुद्रा सागरा वा ये ते अक्षवा अर्थाद् विद्यासागरा । अथवा त्वदीयवचनामृतनिचयास्त्वन्नामसार्थकविद्याया सागरै समुद्रैर्वाऽऽप्लाविता समन्विता अर्थाद् गम्भीरार्थप्रदायिन सन्ति वेत्यर्थ ॥८॥

✿ ✿

हिन्दी-टीका

हे अहितनाशक[१७३] **! गुरुदेव !** आप समस्त अहितो का नाश करने वाले हैं क्योंकि ससार मे अहित, अमङ्गलकारक[१७४] हैं, उस अमङ्गल को उत्पन्न करने वाला अहित, उसका नाश हो जाने से यह ससार स्वय मङ्गल बन जाता है अत आप अहितो के नाशक हैं अनिष्टो का हरण[१७५] करने वाले हैं । **ओ गुरुदेव !** इस ससार मे जिन शब्दो को 'कटुशब्द' कहा है, वे शब्द श्रुति-विनाशक[१७६] होते हैं अत वे निन्द्य[१७७] हैं। वे शब्द प्रथम तो मैत्रीभावो के घातक होते हैं, अनन्तर वे अप्रशस्तता[१७८] को बढ़ाने के लिए अमङ्गलकारी[१७९] होते हैं । इसीलिए विद्वज्जन कहते हैं कि वे राक्षस और मेघ-व्यवहार के वाहक[१८०] होते है अर्थात् जिनका स्वभाव अत्यन्त रौद्र[१८१] है, और सदा भय को उत्पन्न करने के लिए मन्दता /धीरता से रहित हैं ऐसे राक्षस और मेघ के स्वभाव /शीलता को धारण करने वाले हैं । राक्षस और मेघ कर्ण-कटु ध्वनि से लोगो को डराते हैं । कटु वचन से लोग दु:खी होते हैं / कटु वचनो से डरते हैं । अत वे श्रुति-विनाशक हैं, कटुक[१८२] हैं। परन्तु **ओ गुरुदेव !** आपके मुख कमल से विनि:सृत-शब्द निचयों[१८३] की महिमा अपरपार है क्योंकि प्रथम तो वे शब्द अत्यन्त ही माङ्गलिक [१८४] हैं । इस कारण वे ससार के समस्त अमङ्गल को हटाने में सक्षम हैं अर्थात् वे शब्द भव्य जीवों के अमङ्गलकारी पापमैल को धोने के लिए निर्मल-जल के समान हैं अथवा विश्व-विनाश को रोकने के लिए मङ्गलकारक है । द्वितीय, वे प्रेमवर्द्धक है अर्थात् रत्नत्रय-स्वरूप-पवित्र-आत्म धर्म[१८५] के प्रति अनुराग बढ़ाने के लिए वे अत्यन्त स्निग्ध-स्वभाव स्वरूप हैं । अथवा भव्य-जीवो के हृदय-कमल को विकसित करने के लिए सूर्य-किरण के समान हैं, अत वे प्रेमवर्द्धक हैं । तृतीय, वे समुद्र-स्वभाव के वाहक हैं, अर्थात् जिस प्रकार समुद्र अपने शब्दो से गम्भीर होता है उसी प्रकार आपके शब्द-निचय (समूह) अत्यन्त गम्भीर होते हैं। हे भगवन् ! मै उन शब्दो के विषय मे अत्यधिक क्या कहूँ. . ? । केवल उन

शब्दो के विषय मे भी कहने के लिए मेरी शब्द-राशि[९८] सीमित है क्योंकि आप स्वय शब्दो के सागर होने से आप विद्या सागर हैं और आप विद्यासागर होने से आपके शब्द भी विद्यासागर हैं अर्थात् आपके मुखारविन्द से विनि सृत प्रत्येक शब्द गम्भीर-अर्थ-प्रदायी हैं। अत वे स्वय विद्यासागर हैं उनकी महिमा को मैं अपने शब्दों मे कैसे बांध सकता हूँ ? जब शब्दो की महिमा को ही नही बांध सकता हूँ तो आपकी महिमा को मै कैसे बाध सकता हूँ ? (८)

(१)

अहित विनाशक अनिष्ट हारक, कटुक वचन श्रुति नाशक है ।
मैत्री भावों के वे घातक, आर्त-रौद्र भय-कारक हैं ।।
मन्द धीरता रहित शब्द वे, राक्षसगण के कहलाते ।
श्रीमुख से तेरे जो झरते, वे मङ्गल पथ बतलाते ।।
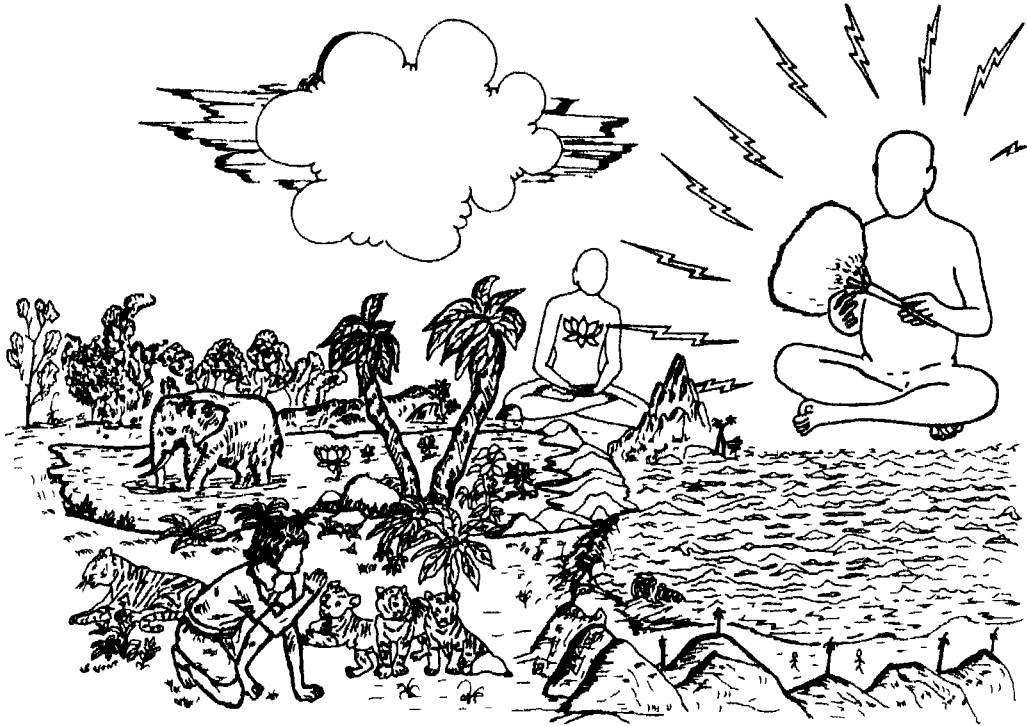
(२)

शब्दों की महिमा अद्‌भुत है, पाप मैल वे धो सकते।
प्रेम सनी वाणी सूरज से, हृदयोत्पल झट ही खिलते।।
सागर सम गम्भीर बने वे, शब्द पुञ्ज झरकर मुख से।
उनका गान करूँ मै कैसे, शब्द नहीं मेरे उर मे।।
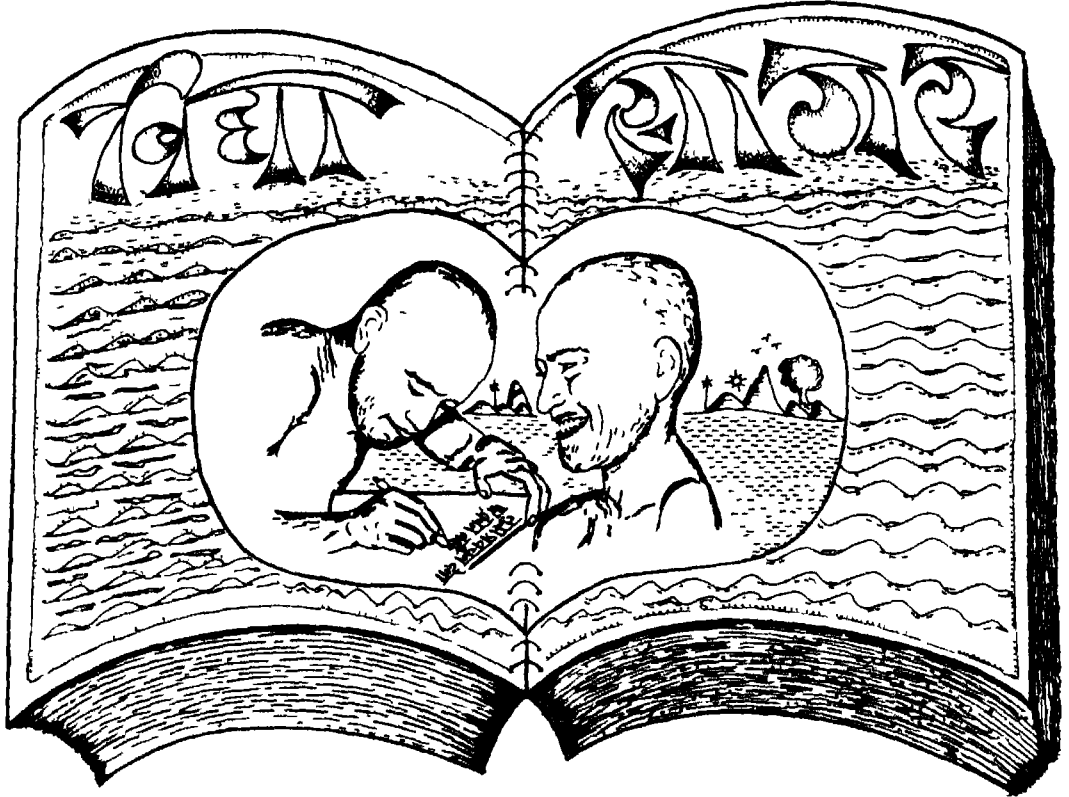
(३)

स्वयं शब्दमय सागर होकर, ''विद्यासागर'' आप बने।
''विद्यासागर'' होने से ही, ''विद्यासागर'' शब्द बने।।
इस विध ''विद्या'' के शब्दों की, महिमा कैसे गा सकता।
गुरुवर की महिमा भी कैसे, मै शब्दों में पा सकता।।

विद्याष्टकस्य सर्वतोभद्रप्रथममूलकाव्यबन्धेऽष्टमकाव्यम्

चतुर्विदिक्षु चतुरक्षरबन्धः

(चित्र क्रमांक—१७)
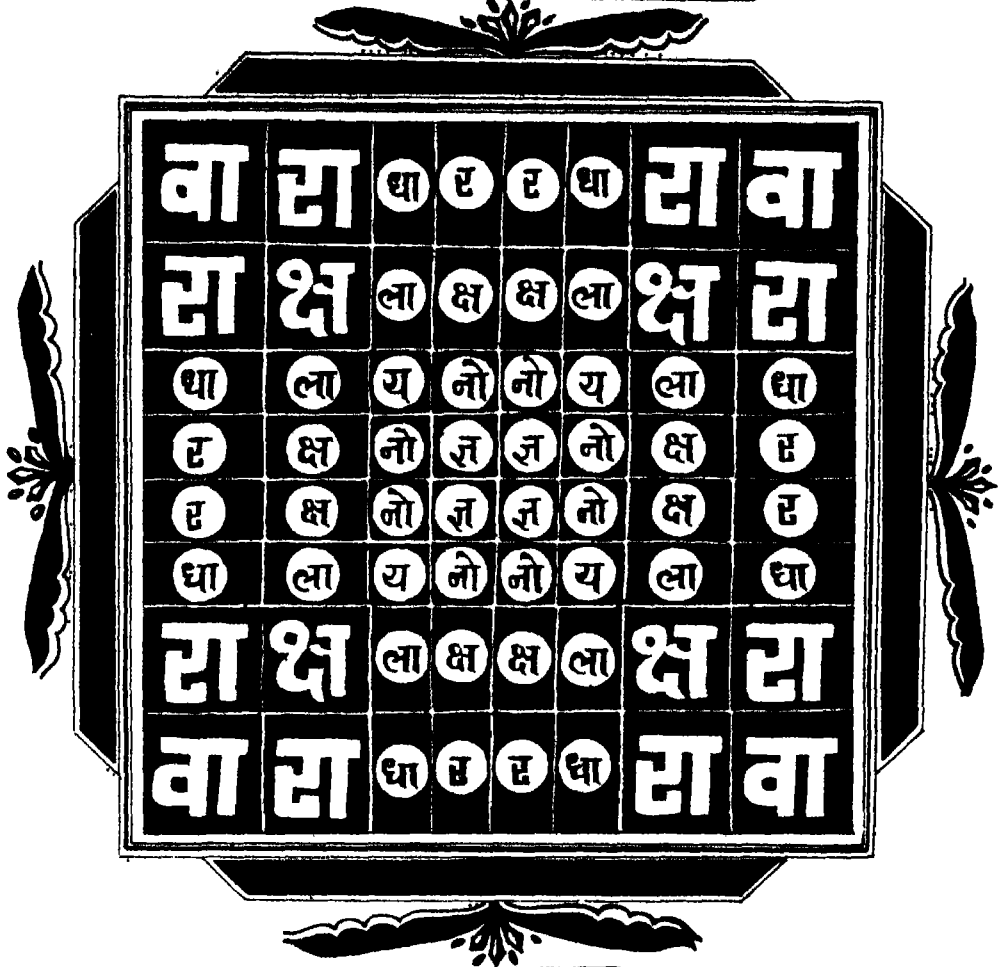
विद्याष्टकम्

रावाराक्षक्षरावा राऽ-।
राक्षराक्ष - क्षराक्षराः ॥
वा राराः क्षक्षरा रावा ।
वाऽक्षवाः क्षक्ष!वाक्षवाः॥8॥

वाराधारर ! धारावा-
राक्षलाक्ष ! क्षलाक्षराः।
धालाः'य'नो नोऽयलाधा
रक्ष नोऽजज ! नोऽक्षर ! ॥1॥

चतुरक्षरबन्ध
(कोष्टक के चारों दिशाओं में चार अक्षर वाले रचना क्रम)
अष्टम श्लोक (चित्रक्रमांक-१७) को
पढ़ने की विधि

चित्र क्र १७ मे एक चौसठ कोष्टको वाला वर्ग है । इस वर्ग के अदर "**विद्याष्टक**" के प्रथम मूल श्लोक के चार पदो को एक के नीचे एक क्रम से पश्चिम से पूर्व मे लिखा गया है। फिर आगे इन्ही चार पदो को विलोमक्रम से अर्थात् चार, तीन, दो और एक को पश्चिम से पूर्व मे लिखा गया है । इस तरह लिखने के बाद इस मूल श्लोक को चारो दिशाओ से पढ़ा जा सकता है और इस वर्ग के चारो कोनो मे बड़े-बड़े अक्षरो मे लिखे गये इन चार ही अक्षरो के भीतर चारो कोनो मे चार बार, "**विद्याष्टक**" का आठवॉ श्लोक, "**रावाराक्षक्षरावा रा राक्षराक्षक्षराक्षरा । वा रारा क्षक्षरा रावा वाऽक्षवा क्षक्ष । वाक्षवा ।।८।।**" पढ़ा जा सकता है । पढ़ने की विधि निम्न प्रकार है .-

पश्चिमोत्तर दिशा मे, वर्ग के कोने मे चार कोष्टको के भीतर विद्यमान, बड़े अक्षरो मे, गोल घूमते हुए '**रा**' अक्षर से प्रारभ कर '**वा**', '**रा**', '**क्ष**' (इसे दो बार पढ़ना है), '**रा**', '**वा**' और '**रा**' अक्षरो पर समाप्त करने पर आठवे श्लोक का प्रथम पद, "**रावाराक्षक्षरावा राऽ-।**" निकल आवेगा ।

इसी प्रकार पश्चिम-पूर्व मे अकित '**रा**' और '**क्ष**' को दो बार उच्चारण करे और उसी प्रकार उत्तर दक्षिण अकित '**रा**' और '**क्ष**' को दो बार पढ़ेगे तो आठवे श्लोक का द्वितीय पद, "**राक्षराक्षक्षराक्षरा** " निकल आवेगा ।

इसी प्रकार पश्चिम पूर्व दिशाकित '**वा**' और '**रा**' पढ़कर अब उत्तर दक्षिण '**रा**' और '**क्ष**' को पढ़े पश्चात् '**क्ष**' और '**रा**' को पढ़े फिर '**रा**' और '**वा**' को पढ़ने से, आठवे श्लोक का तृतीय पद, "**वा रारा क्षक्षरा रावा**" निकल आवेगा ।

इसी प्रकार कोष्टक मे लिखे हुए '**वा**' और '**क्ष**' अक्षरो को सीधे और उल्टे क्रम मे दो दो बार उच्चारण करने से आठवे श्लोक का चौथा पद, "**वाऽक्षवा क्षक्ष । वाक्षवा** " प्राप्त होगा।

इसी प्रकार उपरोक्त क्रम का अनुसरण करके शेष तीनो कोनो मे अकित चारो दीर्घाक्षरो मे पढ़ने का प्रयत्न करेगे तो भी आठवॉ श्लोक सपूर्ण रूप से निकल आवेगा । इस प्रकार मूल श्लोक के अन्तर्गत लिखित "**विद्याष्टक**" के आठवे श्लोक को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ।

✿ ✿ ✿

उपसंहारः—

१.

विद्यासागरश्रीदेव, नित्यं सस्तौति यो मुदा ।
स संप्राप्य सदा शुद्धिमात्मनोऽर शिव व्रजेत् ॥१॥

—अन्वयार्थः—

य मुदा नित्य हि विद्यासागरश्रीदेव सस्तौति, स सदा आत्मन· शुद्धि सम्प्राप्य अर हि शिव व्रजेत् ॥१॥

—भावार्थ—

जो भव्यात्मा रोमाचित होकर अत्यन्त हर्षके साथ नित्य ही सद्गुरु श्री विद्यासागर-आचार्य-देव की स्तुति करता है वह सदा ही आत्म शुद्धिको प्रप्त कर शीघ्र ही मोक्ष सुख को प्राप्त करता है ॥१॥

विद्यासागर को भजे, जो हर्षित मन लाय ।
आत्म-शुद्धि को पायकर, मुक्ति वरे सुखदाय ॥१॥

२.

यावदेमि न कैवल्यं विद्याब्धि वीतरागिणम् ।
स्तुवे भजे यजे भक्त्या नित्य "नियमवारिधिः" ॥२॥

—अन्वयार्थः—

अह नियमवारिधि यावत् कैवल्य न एमि (तावत्) वीतरागिण विद्याब्धिं नित्य हि भक्त्या स्तुवे भजे यजे ॥२॥

–भावार्थ–

मै (नियमसागर) मुनि जब तक लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त नही करता हूॅ (तावत्) तब तक वीतरागी विद्यासागर-सद्‌गुरुकी नित्य ही भक्ति-पूर्वक स्तुति करता हूॅ / भजता हूँ, और नित्य ही हृदय कमल मे उनकी पूजा करता हूँ ॥२॥

"नियम-सिन्धु" तब तक करूँ, "विद्या" थुदी महान् ।
हृदय-कमल पूजूँ सदा, पाऊँ केवल-ज्ञान ॥२॥

(बसन्ततिलका)

विद्याष्टक **'नियम-सागर'** ने लिखा है ।
भावानुवाद जिसका हमने किया है ॥
विद्यादिसागर-गुरो ! हमको सम्हालो ।
"सम्यक्त्व– सागर" बना निज मे मिला लो ॥

॥ इति विद्याष्टकम् ॥
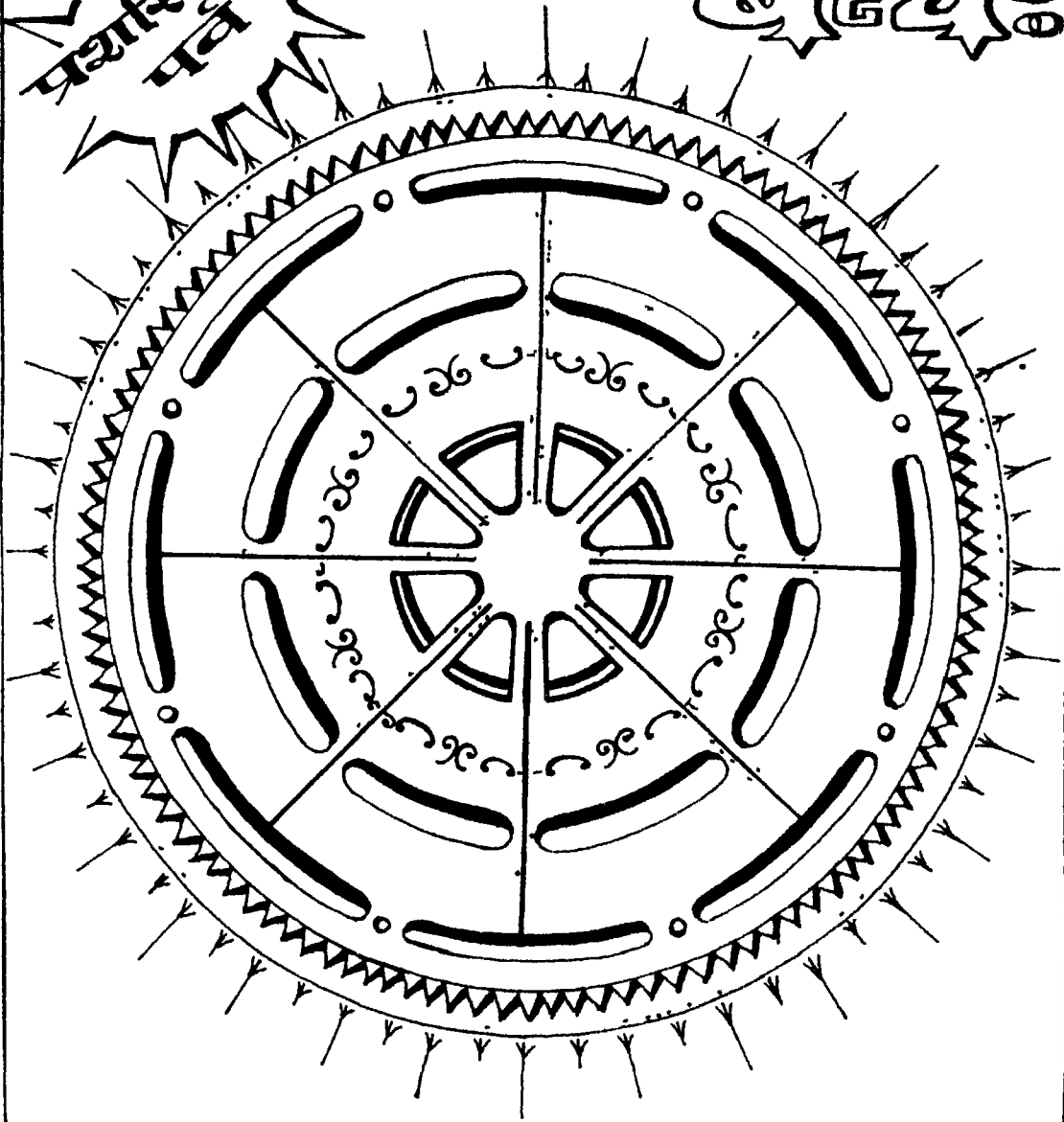
अथेदानीं समस्तविद्याष्टकगर्भितेन कृतिरचनाकालप्रतिपादकप्राकृतभाषैकगाथासमाहितेन सम्बोधनीयमराठीभाषैकवाक्यसमाहितेन सुमनोऽभिव्यक्तिप्रतिपादककन्नडभाषैककाव्यमयेन कृतिवैशिष्ट्यप्रदर्शयितृहिन्दीभाषापद्यैकेन जाप्यगुरुमन्त्रैकसमाहितेन कृति-कृतिकर्तृ-नाम-निगूढसस्कृतभाषावाक्यद्वयसमाहितगर्भेण कृतिसमाप्त्युद्घोषकाग्रेजीभाषालघुवाक्यैकगर्भितेन वैतेन समस्तसमाहितविषयेण गुरुसस्तुतिविषयकासतृप्तधारा मनोमङ्गलकामना सुमनोऽभिव्यक्ति कृतिवैशिष्ट्य दान-विवेक भोजनविवेक स्वसम्बोधन महद्गुरुकुन्दकुन्दान्वयसस्मरण च चरमे आचार्यसमन्तभद्रनमस्कृतिसमाख्यापकसस्कृतमन्त्रवाक्यैकसमेतप्रशस्तिलिखितस्थानोल्लेखकृद्धिन्दी भाषावाक्यैकगर्भकाव्यद्वयस्वरूपान्त्यमङ्गल कृतिरचनाकाल चैतत्सर्वमेव प्रतिपादयन्नत्रसप्तदशकाव्यसमुदायेन प्रतिपाद्यप्रशस्तिपर्व विश्वचक्रबन्धेन समाख्यातुमाह–

प्रशस्ति पर्व के १७ श्लोकों का मूल-पाठ

–अभिव्यक्तिः–

(कन्नड़)

कवि-मन पुलकितगोंडितु गुरुगले रमिसुत स्तुतियोलु नमो नमः ।
कल्पवृक्षसन्निभवायितु ई मुनि मनदोलु छवि नमो नमः ॥
कल्पनीयवो अकल्पनियविदु अरियद रचनेयु नमो नमः ।
कल्पिसिदन्ने कोडुव कल्पद्रुम निरुतागिरुवुदु नमो नमः ॥१॥

–विशेषता–

(हिन्दी)

कवि हो ना हो कवि-मन हरती यह स्तुति सबको प्यारी है।
कष्ट समय हो कष्ट मिटाती महिमा इसकी न्यारी है।।
करो पाठ गर नित्य नियम से साधन यह सुखकारी है।
कल्पित फलको अहो दिलाती जग जन मङ्गलकारी है ।।२।।

–अतृप्तधारा–

(सस्कृत)

विमुक्तश्चाऽसि वाधार- निस्तीर्णो रामकः शुचिः ।
A N R A N R A

निरारम्भोऽसि धाताऽसि स्तुतयक्षोऽ मरः कविः ।।३।।
N R A N R A

मह्या परो यमी वीर ! त्वं विद्यासागरः सुधाऽ– ।
N R A N R

दृष्टगस्त्वा सुराऽऽराध्यं क रक्त नौमि वा भुवि ।।४।।
A N R A N R

–कामना–

पनसः प्रणतो राति वीथि-दुःख स नाऽक्षतः ।
P P R P P R

स ना गिरानतो दक्षो, लाति भट्टानतिज्वणः ।।५।।
P P R P

रक्ष सेव्ये सन्नुतेऽव तु साक्षस्साधितोऽपि यः ।
P R P P R P

योगी लात्यगेहिम चाऽ यक्षवीतरराजपः ।।६।।
P R P P R P P R

–दान-विवेकः–

मणिं विद्मैंव्वासुमध्यं धारिणे चादराद्यतिः ।
P P R P

विद्यारूपं लाति सज्जागरायैव न चाधिये ॥७॥
P R P

–भोजन-विवेकः–

अट्टमत्ति यतिः कं विज्ञातुं स्वारीन् सुखं स्वकम् ।
P R P P

नोदराय कलिघ्नस्त्वघारीणामहिताय च ॥८॥
R P P

स्वसम्बोधनम्

नोऽट्टं श्रेष्ठमिदं त्वात्मन् ! परीतेप्सुस्वभावको ।
R P P

विधाय त्वं स्वपरीक्षां पश्यात्मनि रतिं मुदा ॥९॥
R P P

लाख गातु र्भवेप्सां त्वं योगेशं वसुधामणिम् ।
R P P R

मणिम्मिथ्या विवर्ज्याऽरं गुरुं संसार-त्तारकम् ॥१०॥
P V P R

गुरुम् विद्यासागरं त्वं भजस्व रक्ष कं मह–
P V P R

त्तारवीथिं समासाद्य येन त्वं फाल्गुनीमय ॥११॥
P V M

नोद्धुरचित्तगर्भेण क आत्माऽऽत्मन् ! ज्ञनुर्भव ।
R M V M R
न च द्वेषेण रागेण भव मन्द इहानुतः ॥१२॥
M V M

ज्ञत्वं मात्रमिदं चैत्य यदिनश्चेव केवलः ।
R M V M
चेद्भासि नोदितो गीतो मुदितः सन् विभासि के ॥१३॥
R M V

—भगवत्कुन्दकुन्दसंस्मृतिः-

वागीशं योऽक्षमानेशं वन्दे सद्धर्मचालितम् ।
M R M
महन्तं कुन्दकुन्दं दिग्वस्त्र एनं करण्डकम् ॥१४॥
V F E R E

—अन्त्यमङ्गलम्—

(आर्याछन्द)

वेद्यं विश्वसमस्तैः प्रशमितमतिशत्रुमित्रसकलगणैः ।
S G S G
दमितेन्द्रियान्तमदनं स्तिमितं त्वं भज गुरुं तमज्ञानहरम् ॥१५॥
S G S G

यद्राजितमदनाय प्रकीर्णकीर्तिः सुसाधकात्सुमताय ।
S G S G
रक्षितनवयुगप्रवहैकाय नमः काय-राग-विगताय ॥१६॥
S G S

—समय-बोधः —

(प्राकृत-गाथा)

पणवीससदट्ठारसे वस्सायोगे य वीरणिव्वाणे।
विज्जाट्ठकं सुलिहिदं कोपरगावम्मि गुरुभत्ता ॥१७॥

—प्रशस्ति-पर्वान्तर्गत प्रथम चौदह श्लोकों में विद्यमान मूल दो श्लोक—

रत्नत्रयस्तुतिशतक काव्य क्र. १०२

वाराधारर । धारावा–।
राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा ॥
धाला । य । नो नोऽयलाधा ।
रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ॥

विद्याष्टक काव्य क्र १

वाराधारर । धारावा–।
राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा ॥
धाला । य । नो नोऽयलाधा ।
रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ॥

॥ इति प्रशस्तिपर्वगतमूलश्लोकपाठः ॥

प्रशस्ति-पर्व –
(संक्षिप्त-परिचय

"विद्याष्टक" रूपी अद्भुत एव असाधारण कृति के अन्तर्गत पूज्य मुनिश्री ने आदि से अत तक जिस आश्चर्यजनक रचना को प्रस्तुत किया है, उसका वृत्तात शब्दो तक सीमित नही हो सकता। यह रचना चिन्तको के लिए चितन, युवाओ को अनुभव, भक्तो के लिए भक्ति, कलाकारो के लिए कला, एव भव्यो के लिए साक्षात् मुक्ति दर्शक है। रचना का प्रारम्भिक परिचय एव सम्पूर्ण विषय-सामग्री को पूर्व मे विस्तृत रूप से प्रस्तुति किया जा चुका है। महाराजश्री की इस कृति के अतिम भाग मे निहित **'प्रशस्ति-पर्व'** जो कि एक कल्पवृक्ष माफिक है अर्थात् जो माँगते हुओ को निरन्तर देता रहता है कभी अभाव नही होने देता। ऐसे प्रशस्ति पर्व के माध्यम से महाराजश्री ने अपने गहन चितन अभूतपूर्व कला एव ज्ञानाम्बार से सहित लेखनी से प्रशस्ति पर्व की मूल विषय वस्तु के साथ कुछ आश्चर्यजनक धाराओ को प्रवाहित किया है। ये धाराये सोचनीय एव विचारनीय है। ऐसी न जाने कितनी धाराये इस एक **'प्रशस्ति-पर्व'** मे से प्रस्फुटित हो सकती है। उक्त रचना से निम्न धाराये प्रवाहित है –

१ कृति रचियता का नाम।
२ कृति का नाम।
३ रत्नत्रय-स्तुति-शतक का यथाख्यात चारित्र प्रतिपादक एक सौ दूसरे नम्बर का श्लोक।
४ विद्याष्टक का प्रथम एव उसी मे अन्य सात श्लोक।
५ रचना काल।
६ 'विद्यासागराय नम' मन्त्र।
७ 'फार आनन्द मिलतो वाचा', मराठी बोध वाक्य।
८ 'समन्तभद्राय नम' मन्त्र।
९ 'प्रशस्ति गुना की है' यह वाक्य।
१० आदि एव अन्त्यमङ्गलाचरण।
११ 'दि एण्ड' यह अग्रेजी वाक्य।
१२ हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत, मराठी, अग्रेजी और कन्नड़ भाषा के पद्य एव बोध वाक्य।

उक्त विषय वस्तु को प्राप्त करने के लिए महाराजश्री ने विभिन्न अग्रेजी वर्णमाला के अक्षरो के माध्यम से उन्हे दर्शाया है। इनका सक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है –

(१) श्लोक क्रमाक तीन और चार मे जिन अक्षरो को अग्रेजी भाषा के **'N'** अक्षर से सकेतित किया गया है, उन अक्षरो को एक साथ क्रम से पढ़ने पर कृति रचियता का नाम अर्थात् **'मुनि नियम सागर'** प्राप्त होगा। इसी प्रकार इन्ही दोनो श्लोको मे **'A'** अक्षर से सकेतित वर्णों को पढ़ने पर कृति का नाम अर्थात् **'विरचित विद्याष्टक'** यह निकलेगा।

(२) इसी प्रकार क्रमाक तीन से चौदह तक के श्लोको मे अग्रेजी अक्षर **'R'** से चिन्हित बत्तीस वर्णों को क्रम से पढ़ने पर सर्वप्रथम **'रत्नत्रय– स्तुति-शतक'** का यथाख्यात-चारित्र-प्रतिपादक 'एक सौ दूसरे न का श्लोक' प्राप्त होगा एव इन्ही शब्दो को कृति मे चित्रित चित्रो के अनुसार तथा गत-प्रत्यागत क्रम से उन बत्तीस वर्णो मे बार-बार घूमने से **'विद्याष्टक'** के सभी श्लोको की प्राप्ति स्वत ही हो जायेगी।

(३) **'प्रशस्ति-पर्व'**, के अन्तर्गत समाहित सत्रह न की प्राकृत गाथा, जिसमे **'रचना-काल'** बताया गया है । इसी प्राकृत-गाथा को उक्त सत्रहवे श्लोक के अलावा पॉचवे से ग्यारहवे श्लोको के मध्य, अग्रेजी के **'P'** अक्षर से चिन्हित वर्णो के सग्रह से प्राप्त किया जा सकता है और उसी मे रचना का काल भी प्राप्त होगा ।

(४) श्लोक क्रमाक दश से चौदह तक अग्रेजी अक्षर **'V'** से चिन्हित वर्णो मे **'विद्यासागराय नम'** इस मत्र पद की प्राप्ति होगी ।

(५) **'फार आनन्द मिलतो वाचा'** अर्थात् बहुत आनन्द मिलता है पढ़ो यह मराठी भाषा का बोध-वाक्य, श्लोक क्रमाक ग्यारह से चौदह तक के श्लोको मे अग्रेजी अक्षर **'M'** से चिन्हित वर्णो के सग्रह से प्राप्त होगा ।

(६) अग्रेजी भाषा का वाक्य **'दि एण्ड' (The End)** श्लोक क्रमाक चौदह मे अग्रेजी के अक्षर **'E'** से चिन्हित अक्षरो को पढ़ने से प्राप्त होगा, जो कि ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक है।

(७) इसी प्रक्रिया के दौरान श्लोक क्रमाक पन्द्रह एव सोलह मे अग्रेजी भाषा के **'S'** अक्षर से चिन्हित वर्णो को पढ़ने से **'समन्तभद्राय नम'** यह मन्त्र-पद प्राप्त होगा ।

(८) श्लोक क्रमाक पन्द्रह और सोलह मे अग्रेजी अक्षर **'G'** से चिन्हित वर्णो मे **'प्रशस्ति गुना की है'** यह हिन्दी वाक्य प्राप्त होगा अर्थात् **'प्रशस्ति-पर्व'** की रचना गुना नगर मे हुई है।

इस तरह प्रशस्ति पर्व के अतर्गत निहित कला एव अध्यात्म की जो मिली-जुली ज्ञान-गगा प्रवाहित की गई है वह एक गूढ़ एव सशक्त भावाभिव्यक्ति है । विभिन्न भाषाओ एव श्लोक आदि को मिलाकर, इन श्लोको मे कुल २६ श्लोक, दो मत्र, अग्रेजी, कन्नड़, हिन्दी, मराठी भाषा के श्लोक एव बोध वाक्य तो समाहित है ही लेकिन और भी ऐसी विषय-समग्री का भण्डार इसमे भरा पड़ा है, जिसको अन्त करण मे जागृति एव रोचकता के उपरात इसकी गहराई मे उतरकर, इसमे से समेटा जा सकता है ।

(श्लोक-अन्वयार्थ-सस्कृतटीका-हिन्दीटीका समेत)

(प्रथम दो पद्य मूल पाठ मे देखें)

—असंतृप्त-धारा—

गुरुसस्तुति प्रति प्रवहित भूत पुनरिदमसतृप्त मे मनो यत एव स्वत एव काव्यद्वये विनि सृते मयाऽष्टकमिद पूरितेऽपि–

विमुक्तश्चाऽसि   वाधारनिस्तीर्णो रामकः शुचिः ।
निरारम्भोऽसि धाताऽसि, स्तुतयक्षोऽमरः कविः ॥३॥

—अन्वयार्थः—

अये (विद्यासिन्धो !) त्व स्तुतयक्ष अमर (असि) कवि धाता निरारम्भ वाधारनिस्तीर्ण विमुक्त असि । रामक शुचि च असि ॥३॥

—संस्कृत-टीका—

हे गुरो ! विद्यावारिधे ! त्व समस्तयक्षादिगणैश्च सस्तुतोऽसि । अपि धरायामिहामरोऽसि । महाकविरसि । लोकाधारत्वाद्धाताऽसि । सगमुक्तत्वान्निरारम्भोऽशेषजीवहिसाविरतोऽसि । वाधारनिस्तीर्णोऽर्थाद्वो वायुराधार आश्रय इत्यर्थ । निस्तीर्णो मुक्तकृत उद्धारितो वेत्यर्थ । व एवास्ति यस्याधारो वाधारोऽर्थाल्लोको वेत्यर्थ । वाधारस्य निस्तीर्णो वाधारनिस्तीर्णोऽर्थाल्लोकोद्धारित इत्यर्थ । अर्थाद्धे गुरो ! त्व लोकोद्धारितोऽसीत्यर्थ । मुक्त स्वाश्रितोऽसि सुन्दरात्मासि पवित्रात्मासि वेत्यर्थ ॥३॥

—हिन्दी-टीका—

हे गुरो ! विद्यासिन्धो ! तुम यक्षादिदेवताओ द्वारा श्लाघ्य हो / सस्तुत हो । लोकोद्धार में कृतकृत्य हो अविनाशी हो महाकवि हो धाता अर्थात् रक्षक हो निरारम्भ होने से समस्त जीव-हिंसा से दूर हो इस पृथ्वी तल पर स्वाश्रित हो मुक्त विचरण करने वाले महात्मा हो । आत्मा

से अत्यन्त पवित्र होने से सुन्दरात्मा हो । तुम्हारी सुन्दरात्मा की सस्तुति से मै सदा ही अतृप्त हूँ । अत स्तुति के लिए पुन उद्यत हो गया हूँ ॥३॥

मह्यां परो यमी वीर ! त्व विद्यासागर. सुधाऽ–।
दृष्टगस्त्वां सुराऽऽराध्यं कं रक्तं नौमि वा भुवि ॥४॥

–अन्वयार्थः–

हे वीर !त्व मह्या पर विद्यासागर असि । पर साधक सुधाऽदृष्टग (अमृतसमसौभाग्ययाता) असि। इह भुवि सुराऽऽराध्य क रक्त वा त्वा (अह) नौमि ॥४॥

–संस्कृत-टीका–

हे गुरो ! त्वमत्र वसुन्धराया परमवीरो विद्यासिन्धु सयमी चाऽसि । त्व सदात्मतत्परत्वादमृत–समसौभाग्ययातास्यतस्त्वा सुराराध्यात्मसाधनातत्परयतीश्वरमह स्तौमि नौमि वेत्यर्थ ॥४॥

–हिन्दी-टीका–

ओ गुरुवर ! हे वीर-विद्यासागर ! तुम इस भारत वसुन्धरा पर श्रेष्ठ विद्यासागर के नाम से विश्रुत सयमी हो तुम अत्यन्त श्रेष्ठ होने से अमृत-सम-सौभाग्य को प्राप्त होने वाले हो । ओ गुरुवर ! आज भी इस भारत-भूमि पर तुम अपनी आत्म-साधना मे निमग्न होने से सुराराध्य हो । अत तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

–मङ्गल-कामना–

पनसः प्रणतो राति, वीथिदुःखं स नाऽक्षतः ।
स ना गिरानतो दक्षो, लाति भट्टानतिञ्चणः ॥५॥

–अन्वयार्थः–

अक्षत प्रणत पनस स वीथिदु ख न राति । गिरानत दक्ष चण स ना भट्टाऽनति न लाति ॥५॥

—संस्कृत-टीका—

अभिन्नोऽखण्डो वा नतो नम्र कटको मार्गदु ख नाऽऽनयति । (तथा हि) वाणीविनम्रो दक्षश्चतुरो मानव स्ववैदुष्यत्वेन कदापि दुरभिमानत्व वक्रतामविनम्रता वा नाऽऽनयति स वेत्यर्थ ॥५॥

—हिन्दी-टीका—

पथ पर चलते समय कोई काँटा ऊपर मुख किये पड़ा हो तो पथ मे चलते राही के पग मे चुभने से दु खदायी हो सकता है परन्तु प्रणत अर्थात् विनम्र, नीचे मुख किये पड़ा काँटा अखण्डित होता हुआ राही को दु ख नहीं देता है । उसी प्रकार अपनी वाणी से अत्यन्त मधुर एव विनम्र पुरुष अपनी दक्षता एव चतुरता के कारण से वैदुष्य के मद को प्राप्त न होता हुआ किसी दूसरे को दु खदायी नही बन सकता है। किन्तु इससे विपरीत वैदुष्यके मदसे मत्त पुरुष स्व और पर के लिए दु खदायी होता है । अत यह अप्रमत्त यति उस वैदुष्यके मद से या मद के लिए कारणीभूत उस वैदुष्य से निरन्तर ही बचना चाहता है ॥५॥

रक्ष सेव्ये सन्नुतेऽव तु साक्षस्साधितोऽपि य. ।
योगी लात्यगेहिमञ्वाऽ– यक्षवीतरराजप ॥६॥

—अन्वयार्थः—

हे सन्नुते ! सेव्ये ! य साधित अपि साक्ष योगी अयक्षवीतरराजप तु अगेहिम (च) लाति योऽसौ (त्व) (त) रक्ष अव ॥६॥

—संस्कृत-टीका—

रक्षेति– हे सन्नुते ! हे सस्तुते ! अष्टकस्वरूपे ! वार्थ । **सेव्ये ! भजनीये ! सेवनीये !** वार्थ । यो योऽसौ पुरुष इत्यर्थ । साधितोऽपि सयमित सन्नपि स्वनियन्त्रित सन्नपि वेत्यर्थ । साक्षोऽक्षेण सहित साक्षो विवेकलोचिन्यथवा विवेकाक्षी वेत्यर्थ । योगी साधुर्योगसाधको वार्थ । अयक्षवीतरराजप - अयक्षोऽसयमान्तो, वीतो वि विशेषरूपेणेतो गत प्राप्तो वार्थ । रराज इच्छाधीश कामेश्वरोऽर्थात्सयम इत्यर्थ । प पालको रक्षक इति सामान्यशब्दार्थ । विस्तरेणेत उच्यते- अयस्याऽसयमस्य वा क्षोऽन्तो विनाशो वेत्ययक्षोऽथवाऽसयमविनाश इत्यर्थ । असयमनाश चाऽसौ वीत सम्प्राप्तो वेत्यसयमवीतोऽ

थवाऽयक्षवीत इति यावत् । रराज – र काम इच्छा वेत्यर्थ । राज स्वामी अधीशो वार्थोऽर्थाद्रस्य कामस्येच्छाया वा योऽसावधिपति स रराजोऽर्थात्कामाधिपतिरिच्छाधिपतिरथवेच्छास्वामी कामराजो वार्थ । समासविच्छेदे– कामस्य योऽसौ राजा कामराज सयम इत्यर्थ । तस्य कामस्याधिपतिमर्थात्सयम योऽसौ पाति रक्षत्यवति वासौ कामराजप सयमपोऽथवा रराजपो वेत्यर्थ । एतावता किमुक्त भवति– अयक्षश्चासौ वीतश्च अयक्षवीत, अयक्षवीतश्चासौ रराज अयक्षवीतरराज, अयक्षवीतरराजश्चासौ प (पालक)अयक्षवीतरराजपोऽर्थादसयमान्ताप्तसयमपोऽथवाऽयक्षवीतरराजप इत्यर्थ । तु किन्तु परन्तु वार्थ । य योऽसौ सयमिपुरुष । अगेहिम लाति– नास्ति गेह गृह वा यस्य सोऽगेही म शिवो भगवान्वेत्यर्थ । अगेहित्वाच्चासौ मोऽगेहिमस्तमगेहिममर्थाद्गृहरहितशिवस्वरूपत्व भगवद्रूपमथवा निर्ग्रन्थश्रमणत्वस्वरूप वा त साक्षाद्धि योऽसौ राति लाति ददाति सम्प्राप्नोति वेत्यगेहिमित्यर्थ । गृहविरहितशिवस्वरूप वेति यावत् त रक्ष त भर्गत्वस्वरूपसयमिन पुरुष रक्षाऽव परिपालय गोपय वेत्यर्थ । किमुक्त भवत्येतत्– **हे विद्याष्टकस्वरूप-सस्तुते** ! **हे भजनीये** ! यत्नशील सयमी विवेकलोचनक साधुरसयमान्तप्राप्तेच्छाधिपतिरक्षकोऽथवाऽसयमस्य विनाशे प्राप्ते सतीच्छाधिपतेरर्थात्सयमस्य सम्यक्चारित्रस्य वा रक्षक परिपालकोऽवगोपको वा सन्तिष्ठते । एवम्भूतमगेहिममर्थाद्गृहविरहितनिजीयस्वरूपत्वेन योऽसौ निर्ग्रन्थ साधु शिवस्वरूपत्व जिनत्व वा लाति सम्प्राप्नोति वा त **हे सन्नुते ! हे विद्याष्टक** ! **हे संस्तुते** ! त्व रक्षाऽव परिपालय वेत्यर्थ ॥६॥

–हिन्दी-टीका–

हे विद्याष्टक ! हे साधुजनसेव्य ! हे संस्तुत्य ! यत्नशील-यति सयमी होता है, इसके अलावा उनकी आँखे विवेकशील होने से वह असयमको नष्ट कर चुका हुआ होता है अत वह सयमका रक्षक है । इस प्रकार सद्गुणो को धारण करने वाले यति गृहविरहित अर्थात् समस्त परिग्रहो से रहित निर्ग्रन्थ होते हैं। अत वह निर्ग्रन्थ साधु आज कलियुग मे साक्षात् शिवस्वरूपत्व अथवा जिन-स्वरूपत्व को प्राप्त है । हे विद्याष्टक ! हे संस्तुत्य ! तुम उन निर्ग्रन्थ साधुओ को कलिकाल के अन्त तक सदा रक्षण करो ॥६॥

–दान-विवेकः–

मणि विप्रैर्व्वासुमध्यं धारिणे चाऽऽदराद्यतिः ।
विद्यारूपं लाति सज्जागरायैव न चाऽधिये ॥७॥

–अन्वयार्थः–

वासुमध्य विद्यारूप विज्ञ मणि यति आदरात् धारिणे सज्जागराय एव लाति न च अधिये (लाति) ।।७।।

–संस्कृत-टीका–

आत्मगत सम्यग्ज्ञानरूप ज्ञात च त रत्नमादराद्यतिर्धारिणे सुष्ठुजागरणशीलायैव प्रददाति लाति। न चाऽज्ञानिने लाति प्रददाति समर्पण च कुरुते वेत्यर्थ ।।७।।

–हिन्दी टीका–

दयालु श्रमण/साधु का कर्तव्य है कि सम्यग्ज्ञानरूपी रत्न-दान, विवेक एव आदर के साथ किसी दूसरे के लिए भी अवश्य दे, किन्तु आदर के साथ कैसे दे इस बात को उपरोक्त काव्य मे दर्शाया गया है अत इस काव्य मे 'आदर' शब्द और 'सज्जागराय' शब्द दोनो ही अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं काव्य का भाव इस प्रकार है– "अनादिकाल से आत्मा के अन्दर शक्तिरूप से विद्यमान सम्यग्ज्ञानरूपी विद्यामणि को जिसे, साधु ने अब अपनी ही आत्मा के द्वारा ही जान लिया, पहचान लिया है और प्राप्त कर लिया है ऐसे आत्मा के भीतर स्थित-सम्यग्ज्ञानरूपी विद्यामणि को, यति, आदर के साथ धारण करने वाले और सुजागृत रहने वाले के लिए ही देते है परन्तु अज्ञानी जनो के लिए नही देते । तात्पर्य यह है कि दान, पात्र को देखकर दिया जाता है । पात्र, दान को स्वीकार करने के लिए उत्सुक हो और सुजागृत हो अर्थात् उसका दुरुपयोग करने वाले न हो अप्रमत्त हो ऐसे पात्र के लिए यति विवेक के साथ ज्ञान-दान दे देते हैं । यहाँ सदर्भ मे 'दान-विवेक' को जताने का तात्पर्य यह रहा है कि शिष्य गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान अर्थात् उस विद्या के द्वारा लोकरजनादिको नही चाहेगा किन्तु अवश्य वह धर्म प्रभावना ही चाहेगा । "लोकैषणा मे धर्म प्रभावना नही होती तथा धर्म प्रभावना मे लोकैषणा नही रहती" यह बात सज्जन-पुरुषो द्वारा विचारनीय है ।।७।।

–भोजन-विवेकः–

अट्टमत्ति यति. कं विज्ञातुं स्वारीन् सुखं स्वकम् ।
नोदराय कलिघ्नस्त्वघारीणामहिताय च ।।८।।

–अन्वयार्थः–

यति क विज्ञातु, स्वारीन् विज्ञातु, स्वक सुख विज्ञातु च अट्ट अत्ति न उदराय अत्ति । तु (किन्तु) कलिघ्न. यति अघारीणा अहिताय च अट्ट अत्ति ॥८॥

–संस्कृत-टीका–

आत्मानमवगन्तुमात्मनो निजीय सुख च परिगन्तु श्रमणो भोजन कुरुते । न चोदराय । किन्तु पापहन्ता स श्रमण कषायरिपूणामहिताय चाऽपि भोजन कुरुते वेत्यर्थ ॥८॥

–हिन्दी-टीका–

इस लोक मे निर्ग्रन्थ श्रमण ससार से शरीर से एव समस्त प्रकार के भोगो से जब निस्पृह ही होता है तो भोजन क्यो करता है ? ऐसी आशका जन साधारण मे प्राय हुआ करती है। उसके निरसन के लिए उपरोक्त काव्य प्रयुक्त हुआ है । उसका भाव यह है– "श्रमण अपनी साधना के द्वारा आत्मा को जानने के लिए भोजन करता है, एव निजीय आत्मिक सुख की पहचान के लिए भोजन करता है अर्थात् आत्म-साधना को बढ़ाने के लिए भोजन करता है किन्तु उदर-पोषण अर्थात् शरीर सपोषण के लिए भोजन नही करता। फिर और किन कारणो से करता है ? वह साधु आत्मा के कषायरूपी शत्रुओ का अहित करने के लिए भोजन करता है । अर्थात् जो आत्मा को कसे / दु ख दे उसे कषाय कहते हैं ये चार प्रकार के होते हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ। ये आत्मा के आन्तरिक-शत्रु है, इन शत्रुओ को नाश करने के लिए श्रमण भोजन करता है ॥८॥

–स्वसम्बोधनम्–

नोट्टं श्रेष्ठमिद त्वात्मन् ! परीतेप्सुस्वभावको ।
विधाय त्व स्वपरीक्षां पश्यात्मनि रति मुदा ॥९॥

–अन्वयार्थः–

हे आत्मन् ! इद अट्ट नो श्रेष्ठ त्व परीतेप्सुस्वभावक असि । त्व स्वपरीक्षा विधाय, आत्मनि रतिं विधाय मुदा पश्य त्वं (वस्तुत) परीतेप्सुस्वभावकोऽसि ॥९॥

–संस्कृत-टीका–

अये निजात्मन् ! इद भोजन न श्रेष्ठ त्व विगतेच्छास्वभावकोऽसि । त्व स्वपरीक्षा विधायाऽऽत्मनि रति च विधाय प्रमुदाऽऽत्मनि पश्य त्व स्वभावतो प्रकृत्या वस्तुतो वा परीतकाङ्क्षास्वभावकोऽसीत्यर्थ ॥९॥

–हिन्दी-टीका–

भोजन-विवेक के सम्बन्ध मे श्रमण अपनी आत्मा को इस तरह सम्बोधता है– हे आत्मन् ! यह अन्न-पानरूप भोजन तुम्हारे लिए श्रेष्ठ नही है । तुम्हारा स्वभाव, निश्चय से इच्छा रहित स्वभाव है तुम स्वय का परीक्षण करते हुये आत्मा मे रमणता को प्राप्त कर आनन्द के साथ अपने मे झाँक कर देखो, तो तुम अपने मे ही परीतकाङ्क्षा-स्वभावरूप– स्वरूपताको पाओगे ॥९॥

लाख गातु र्भवेप्सां त्व योगेश वसुधामणिम् ।
मणिम्मिथ्या विवर्ज्याऽर गुरु ससार- तारकम् ॥१०॥

–अन्वयार्थः–

अये (आत्मन् !) त्व ईप्सा लाख । मिथ्या मणि गुरु अर विवर्ज्य, वसुधामणि ससारतारक योगेश गुरु त्व गातु भव ॥१०॥

–संस्कृत-टीका–

अये निजात्मन् ! त्व स्वकीयसमस्तकाङ्क्षामपाकुरु । मिथ्यामणिस्वरूप गुरु परित्यज्य भारतवसुन्धरारत्न ससारसन्तारक योगीश्वर **विद्यासागरगुरुवर** गातुमुद्यतो भवाऽथवा तस्य स्तावको भव वेत्यर्थ ॥१०॥

–हिन्दी-टीका-

हे आत्मन् ! यदि तुम अपना हित चाहते हो तो समस्त प्रकार की आकाङ्क्षाओ को अपने से हटा दो तथा मिथ्या गुरुरूपी मणि का शीघ्र ही परित्याग कर भारतवसुन्धरा रत्न ससारतारक योगीश्वर विद्यासागर गुरुवर की सस्तुति करने मे तुम सदा ही उद्यत रहो ॥१०॥

गुरु विद्यासागरं त्वं भजस्व रक्ष क मह-।
तारवीथि समासाद्य येन त्वं फाल्गुनीमय ॥११॥

—अन्वयार्थः—

हे मुने ! त्व विद्यासागर गुरु भजस्व । क रक्ष । महत्तारवीथि समासाद्य येन त्व फाल्गुनी अय ॥११॥

—सस्कृत-टीका—

अये साधो ! त्व सदा विद्यासागरगुरुवर सेवस्व । सासारिकसकल्पविकल्पजालादात्मान रक्षस्व । एव त्व महत्तारवीथि समासाद्याऽर्थाद्रत्नत्रयस्वरूपोज्जवलमोक्षमार्गमासाद्य येनाऽऽत्मनि त्व वासन्ती समानय ॥११॥

—हिन्दी-टीका—

हे श्रमण ! तुम विद्यासागर गुरुवर को सदा ही भजते हुये अपनी आत्मा की रक्षा करो। उनकी उपासना करते हुये तुम समस्त सकल्प विकल्पो से बचो और महान उज्ज्वल रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष-मार्ग मे स्थित होकर अपनी आत्मा मे फाल्गुनी वासन्ती को प्राप्त हो जाओ ॥११॥

नोद्धुरचित्तगर्भेण क आत्मात्मन् ! ज्ञनु-र्भव ।
न च द्वेषेण रागेण भव मन्द इहानुत ॥१२॥

—अन्वयार्थः—

हे आत्मन् ! उद्धुरचित्तगर्भेण त्व ना क आत्मा भव । ज्ञनु भव न च रागेण द्वेषेण इह मन्द अनुत भव ॥१२॥

—सस्कृत-टीका-

हे आत्मन् ! दृढचित्तगर्भेण त्व पुरुषो ब्रह्मात्मा जिनात्मा वा भव । ज्ञानिस्तोता भव। रागेण द्वेषेण न चेहाऽकर्मण्योऽश्लाघ्यो वा भवेत्यर्थ ॥१२॥

–हिन्दी-टीका–

हे आत्मन् ! तुम अपनी आन्तरिक चित्त की दृढ़ता से अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूप ध्यान की अचल आन्तरिक स्वय की योग्यता से जिनात्मत्वस्वरूप परम आत्म-ब्रह्म को प्राप्त हो जाओ तथा निश्चय से स्वय का सस्तोता तथा व्यवहार से परम गुरु विद्यासिन्धु के सस्तोता बन कर तुम स्वय ही स्वय मे स्वय का श्लाघ्य / सन्नुत हो जाओ किन्तु रागद्वेष के द्वारा इस मनुष्य पर्याय मे तुम अकर्मण्य एव अश्लाघ्य मत होओ ॥१२॥

ज्ञत्व मात्रमिद चैत्य यदिनश्चेव केवलः ।
चेद्भासि नोदितो गीतो मुदितः सन् विभासि के ॥१३॥

–अन्वयार्थः–

भो (आत्मन् !) यत् ज्ञत्व मात्र इद च एत्य इन इव केवल भासि चेत् (त्व) ना (आत्मा) उदित गीत मुदित सन् के (आत्मनि) विभासि ॥१३॥

–संस्कृत-टीका–

भो निजात्मन् ! यत्त्व ज्ञायकत्व च मात्रमिद सम्प्राप्य भानुरिव केवलो भासि चेत्तर्हि त्व मर्त्य आत्मा समुदित प्रकाशित सन्नथवा गीतोऽर्थात्समस्तैर्जनै सस्तुत सन्नथवाऽऽत्मनि प्रमुदित सन् स्वात्मना स्वात्मन्येव विभाससे ॥१३॥

–हिन्दी-टीका–

हे निजात्मन् ! यदि तुम आत्मा के स्वभाव-स्वरूप-ज्ञायक-दशाको प्राप्त होकर भानु के समान स्वय से स्वयं मे विलसित होते हो तो, हे पुरुषात्मा ! तुम स्वय से ही स्वय मे प्रकाशित होते हुए सस्तुत-प्रमुदित हो कर स्वय मे ही सदा भासित रहोगे ॥१३॥

–भगवत्कुन्दकुन्द-संस्मृतिः–

वागीश योऽक्षमानेशं वन्दे सद्धर्मचालितम् ।
महन्तं कुन्दकुन्दं दिग्वस्त्र एनं करण्डकम् ॥१४॥

–अन्वयार्थः–

य दिग्वस्त्र. एन वागीश अक्षमानेशं सद्धर्मचालित महन्त कुन्दकुन्द करण्डक वन्दे ॥१४॥

–संस्कृत-टीका–

योऽसावाचार्यदेवो दिग्वस्त्रोऽर्थाद्दिगम्बरोऽमु वागीशमर्थाद्यथोपलब्धद्वादशाङ्गरूपस्याद्वादाऽऽगम-श्रुतप्रतिपादनसक्षममक्षमानेशमर्थादात्मज्ञानाधीश्वर सद्धर्मचालितमर्थात्समीचीनरूप तीर्थंकरप्रतिपादितशुद्ध-सद्धर्मपरम्परासचालित महन्त करण्डकमर्थादलौकिकमहागुणग्राममञ्जूषा कुन्दकुन्द कुन्दकुन्दाभिधेयाचार्यप्रवर वन्दे नमस्करोमि त प्रणमामि वेत्यर्थ ॥१४॥

–हिन्दी-टीका–

दिशाये ही जिनके वस्त्र होने से स्वय दिग्वस्त्र अर्थात् दिगम्बर थे और स्याद्वादरूप आगम-श्रुत के ज्ञाता होने से जो वागीश अर्थात् स्याद्वादश्रुत के स्वामी थे तथा आत्मज्ञान के परिपूर्ण ज्ञाता होने से जिनको श्रमण-जन आत्म-ज्ञान के अधिपति कहते थे और जिन्होंने सद्धर्म की शुद्ध-परम्परा को अक्षुण्यरूप से सुरक्षित रखते हुये धर्म-प्रवर्तक बन कर सचालित किया था ऐसे महान गुणो के करण्डक भगवत्कुन्दकुन्द देवको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

–अन्त्यमङ्गलम्–

(श्लोक-१५ व १६)

(आर्या-छन्द)

वेद्यं विश्वसमस्तैः प्रशमितमतिशत्रु-मित्रसकलगणैः ।
दमितेन्द्रियान्तमदनं स्तिमितं त्वं भज गुरुं तमज्ञानहरम् ॥१५॥

–अन्वयार्थः–

अये (आत्मन् !) विश्वसमस्तैः वेद्य, प्रशमितमतिशत्रुमित्रसकलगणै वेद्य, दमितेन्द्रियान्तमदन स्तिमित तं अज्ञानहरं गुरू त्वं भज ॥१५॥

–सस्कृत-टीका–

विश्वसमस्तैरिति–

प्रशमिता च प्रशान्ता च वा येषा मति प्रशमितमतिस्तै प्रशमितमतिभिरर्थात्साधुसमूहै श्रमणसमूहै-र्वार्थ । कथम्भूतै श्रामाण्यपदोपलम्बनत्वात्प्रशमितकषायैस्तै साधुगणैरथवा प्रशान्तमतिगणैर्वार्थ । पुनरपि कथम्भूतै शत्रुभिरर्थात्कषायतीव्रोदयत्वात्परेषा कृते शत्रुत्वनिबद्धमतिभिस्तै शत्रुसमुदायैरित्यर्थ । पुनरपि कथम्भूतै । मित्रैरर्थात्कषायमन्दोदयत्वेन परेषा जीवाना कृते मित्रत्वप्रस्थापितमतिभिस्तैर्बन्धुवर्गैश्च शेषै सकलैर्गणैश्च विश्व-समस्तैश्च वेद्य, वेत्तु योग्य श्रीगुरुवरमर्थादितैश्चाऽशेषगणै शिक्षा-प्राप्तु योग्य विद्यासिन्धुगुरुवरमित्यध्याहार्य्य यावत् । त कथम्भूत दमितेन्द्रियान्तमदनमर्थाद् दमितानि चेन्द्रियाणि यस्य स दमितेन्द्रियस्त दमितेन्द्रियमन्तमदनमर्थादन्त विनष्ट च यस्य मदन काम वा तमन्तमदन विनष्टकाम वार्थोऽथवा विगतमोहादिपरिणामकमित्यर्थ । स्तिमित स्वस्मिन्स्थितमचल दृढ वेत्यर्थ । त गुरु त विद्यासिन्धुगुरुवर । अज्ञानहरमज्ञानविनाशक । त्व भज । **हे आत्मन् !** त्व भजस्व सेवस्व तस्योपासको भव वेत्यर्थ । ॥१५॥

–हिन्दी-टीका–

हे आत्मन् ! प्रशमितमति अर्थात् श्रमण अवस्थाको प्राप्त होने से जिन की मति कषायो से रहित होकर अत्यन्त निर्विकल्प हो गई है, ऐसे श्रमण गणो के द्वारा, और कषाय-उदय की तीव्रता के वश से जिन की मति अन्य लोगो के प्रति शत्रुता से निबद्ध हो रही है, ऐसे शत्रुसमूह के द्वारा तथा कषाय का मन्दोदय होने से जिनकी मति सब से मित्रता को धारण करने लगी है ऐसे मित्र-वर्ग के द्वारा तथा समस्त विश्व के द्वारा जो वेद्य हैं, जानने योग्य है और शिक्षा प्राप्त करने योग्य हैं ऐसे गुरुवर जो वर्तमान समय मे दमितेन्द्रिय हैं अर्थात् जिन्होने अपनी इन्द्रियो पर सम्पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली है तथा अन्त-मदन अर्थात् सारी वासनाये जिनकी अन्तता को प्राप्त हो गईं है स्तिमित अर्थात् गिरिवत् अपने आपमे जो अचलता या निश्चलता को प्राप्त हुवे है और ससार के गुरु होने से जो सदा ही भव्य जनो के अज्ञान को अपहरण करने वाले समझे जा रहे है ऐसे सद्गुरु को हे आत्मन् ! तुम सदा भजो और उनकी उपासना करो ॥१५॥

(आर्या-छन्द)

यद्राजितमदनाय प्रकीर्णकीर्ति· सुसाधकात्सुमताय ।
रक्षितनवयुगप्रवहैकाय नमः कायरागविगताय ॥१६॥

—अन्वयार्थः—

सुसाधकात् प्रकीर्णकीर्ति (यस्य) (तस्मै) सुमताय यद्राजितमदनाय रक्षितनवयुगप्रवहैकाय कायरागविगताय नम (नमस्करोमीत्यर्थ) ॥१६॥

—संस्कृत-टीका—

सुसाधकादिति—

सुसाधकात्— यस्य सयमसाधनाऽत्मसाधना वाऽतीवोत्तमा समीचीनाऽथवा सुष्ठुरसौ सुसाधक सुसाधकत्वाच्च यस्य कीर्ति प्रकीर्णा वितानिता वाऽसौ प्रकीर्णकीर्ति । तस्मै सुमतायाऽर्थाज्जिनमतस्य साक्षान्मूर्तिस्वरूपायेत्यर्थ । यद्राजितमदनाय योऽसौ गुरुर्मदन इव कामदेव इव राजितो विशोभितोऽसाविति राजितमदनस्तस्मै राजितमदनाय । रक्षितनवयुगप्रवहैकाय रक्षितश्च नवयुगो येन प्रवहैकेनाऽर्थाद्वायुश्रष्ठेन वासौ रक्षितनवयुगप्रवहैकस्तस्मै रक्षितनवयुगप्रवहैकायाऽथवा रक्षितनवयुगवायुश्रेष्ठाय । कायरागविगताय विगतश्च यस्य कायराग शरीरमोहोऽसौ कायरार्गविगतस्तस्मै कायरागविगताय नमो नमस्कार प्रणतिर्वास्त्वित्यर्थ ॥१६॥

—हिन्दी-टीका—

जिनकी सयमकी साधना सर्वोत्कृष्ट एव आगम के अनुकूल होने से सुसाधक है, और सुसाधक होने से ही जिनकी कीर्ति समस्त ससार मे व्याप्त है उन सुमत को अर्थात् जो जिन-मत की साक्षात् मूर्तिस्वरूप है और जो मदन अर्थात् कामदेव के समान सुशोभित दशाको प्राप्त हो रहे है तथा 'रक्षितनवयुगप्रवहैकाय' अर्थात् रक्षित हो गया है नवयुग जिस वायु-श्रेष्ठ के द्वारा अर्थात् जिस वायु —श्रेष्ठ के चलने से यह आधुनिक नवयुग धर्ममय परिणत हो कर स्वय रक्षित होने जा रहा है ऐसे 'कायरागविगताय' अर्थात् जिनका शरीरमोह सपूर्णरूप से तिरोहित हो चुका है, ऐसे विश्व के अज्ञानतम को तिरोहित करने वाले 'विद्यासिन्धु' गुरुवरको हे आत्मन् ! तुम नमस्कार करो ॥१६॥

-समय-बोधः-

(प्राकृत-भाषा)

पणवीससदट्ठारसे[२५१८] वस्सायोगे य वीरणिव्वाणे ।
विज्जाट्ठक सुलिहिदं कोपरगावम्मि गुरुभत्ता ॥१७॥
पंचविंशतिशताष्टादशे[२५१८] वर्षायोगे च वीर-निर्वाणे ।
विद्याष्टक सुलिखित कोपरग्रामे (च) गुरुभक्त्या ॥

-भाषानुवाद-

'विज्जाट्ठक' अर्थात् यह विद्याष्टक 'पणवीससदट्ठारसे' अर्थात् वीर निर्वाण सवत् पच्चीसौ अठारह (२५१८) मे 'वीरणिव्वाणे' वीर निर्वाण के दिन 'कोपरगावम्मि' महाराष्ट्र मे स्थित कोपरगाव के 'वस्सायोगे य' वर्षायोग मे 'गुरुभत्ता' गुरुभक्ति से प्रेरित होकर 'सुलिहिद' लिखा गया है / या उस दिन पूर्ण किया गया है ॥१७॥

इस प्रकार 'विद्याष्टक' मे 'प्रशस्ति-पर्व'
की सस्कृत टीका एव
हिन्दी भाषानुवाद
पूर्ण हुआ
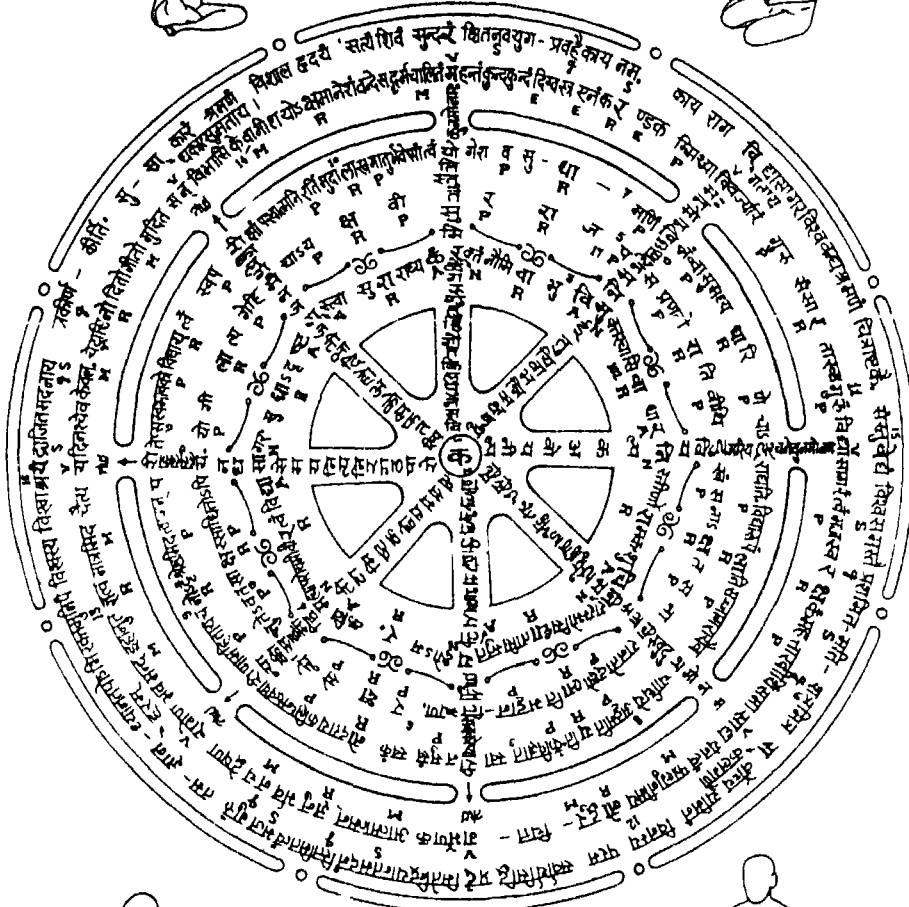
विद्याष्टकम्
विश्वचक्रबन्धः
विश्वचक्र मे जन्म मरण है बन्ध यही निर्बन्ध
अष्ट कर्म यह अष्टक तोड़े ओ गुरुवर निर्ग्रन्थ
निर्ग्रन्थो की परम्परा ही बनती है अरिहन्त
विद्यासागर हो भगवन तुम युगो युगो जयवन्त
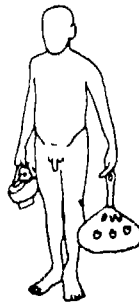
(चित्र क्रमांक—१८)

विश्व-चक्र-बन्ध पढ़ने की विधि

चित्र परिचयः–

'विद्याष्टक' मे चित्रित चित्र-क्रमाक अठारह **'विश्व-चक्र-बन्ध'** से नामाकित है । एक गोलाकार मे विभिन्न आठ किरणो एव वृत्ताकार पाँच पक्तियो को स्थापित किया गया है । ग्रन्थकर्ता के उपास्य **आचार्य श्री विद्यासागर महाराज** के गुरु **आचार्य ज्ञानसागर महाराज** को शीर्ष पर विराजमान करते हुए, चित्र के चारो ओर अपने आराध्य गुरु के रेखाचित्र, विभिन्न आकृतियो के माध्यम से रखे गये है ।

बन्ध का नामकरण :–

चित्र के नीचे लिखित **'विश्व-चक्र-बन्ध'** ही इस चित्र का नाम है । विश्व शब्द का आशय होता है **'समस्त'** अर्थात् समस्त से समाहित चक्र का बन्ध । जिस चक्र मे सपूर्ण **'विद्याष्टक'** की विषय-वस्तु गर्भित है ऐसा **'विश्व-चक्र -बन्ध'** । दूसरे शब्दो मे समस्त चक्रो मे अद्वितीय अर्थात् विश्व के इतिहास मे सरचित चक्रो एव वर्तमान चित्रालकार परपरा मे निहित चक्रो मे ऐसा चक्र अन्यत्र कही दृष्टिगोचर नही होता ।

चित्र मे निहित भाव :–

जिस प्रकार चक्रवर्ती पद को प्राप्त करने वाले राजा की आयुधशाला मे स्वयमेव देवकृत चक्र उत्पन्न हो जाता है । उसी प्रकार जीव के कल्याण मे निमित्तभूत इस **'विश्व-चक्र-बन्ध'** के द्वारा भव्य जीव **आचार्य विद्यासागर महाराज** की स्तुति कर, उनके गुणो को प्राप्त करके नि शकित रूप से ससार दुख रूपी चक्र को पार कर अनन्त पद अर्थात् अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतसुख और अनतवीर्य, से सहितशून्य रूपी चक्र यानि मोक्ष को प्राप्त कर सकता है ।

चित्र मे शीर्ष पर रेखाकित हैं समाधिस्थ **आचार्य ज्ञानसागर महाराज,** जो कालान्तर मे मुक्ति वरण करने वाले निकट भव्य है और वर्तमान मे निरतिचार सल्लेखना को धारण करने से स्वर्गादि

सुख को भोग रहे है । रचेयता के उपास्य गुरुवर **आचार्य विद्यासागर महाराज** अपने गुरु के सम्मुख गुरुभक्ति करते हुए, हाथ जोड़कर गुरुकुल निर्माण एव सस्कृति की सुरक्षा का प्रण लेते है और शिष्य-सघ का निर्माण कर स्व-पर कल्याण मे निरत है । चित्र के दाहिनी ओर ऊपर आचार्यश्री का गुरु-भक्ति-क्रिया का रेखाचित्र है तो बाई ओर के ऊपर के चित्र का भाव सघ को गुरुकुल का रूप देने की विचाराभिव्यक्ति का है । नीचे दाई ओर सस्कृति की रक्षा के रूप मे स्वय अपनी क्रियाओ की व्यस्तता का प्रतीकात्मक रेखाचित्र है तो नीचे ही बाई ओर भव्यो के तरण-तारण शिरोमणि आचार्यश्री के आशीर्वाद का प्रतीकात्मक रेखाचित्र है।

चित्र में समाविष्ट विषय-वस्तु –

'विश्व-चक्र -बन्ध' मे पूर्वोक्त **'प्रशस्ति-पर्व'** के सम्पूर्ण श्लोको एव कुछ अन्य मन्त्र और बोध वाक्यो को समाहित किया गया है चित्र को वृत्ताकार स्थिति प्रदान की गई है । वृत्त मे केन्द्र, व्यास एव अर्द्धव्यास होता है । वृत्त का ऊपरी भाग उत्तरी गोलार्द्ध, अध भाग दक्षिणी गोलार्द्ध, बाई ओर का भाग पश्चिमी गोलार्द्ध एव दाई ओर का भाग पूर्वी गोलार्द्ध कहलाता है । उक्त वृत्ताकार के केन्द्र से आठ किरणे प्रकट हो रही है । केन्द्र को घेरे हुए वर्णाक्षरो से सहित पाँच गोलाकार पक्तियाँ है इस वृत्त मे लिखे हुए वर्णों मे से कुछ वर्णो पर अग्रेजी वर्णमाला के अक्षरो को सकेत स्वरूप लिखा गया है, जो कि प्रशस्ति-पर्व प्रतिपादक सत्रह श्लोको एव अन्य विषय-वस्तु को पृथक्-पृथक् करने मे सहायक है । चित्र मे वर्णित सत्रह श्लोको को क्रमश प्राप्त करने की विस्तृत विधि को निम्नप्रकार उल्लेखित किया जा सकता है ।

प्रशस्ति-पर्व संबंधी सत्रह श्लोकों को पढ़ने की विधि

प्रथम कन्नड़ भाषा के पद्य को पढ़ने की विधि :–

प्रथम पद्य, वृत्त की अर्द्धलम्बाकार की चार किरणो मे स्थित है, जो कि कन्नड़ भाषा का है केन्द्र मे स्थित **'क'** अक्षर के ऊपर '१' (एक) अक लिखा गया है । उस एक अक का आशय है कि प्रथम श्लोक का प्रारभ उक्त स्थान से होता है । अत **'क'** अक्षर स ऊपर की ओर जो प्रथम किरण निकली है उसमे स्थित शब्दो को पढ़ने पर वृत्ताकार मे स्थित ऊपर से दूसरी पक्ति के नीचे **'म'** अक्षर तक पढ़ने पर **'कवि मन पुलकितगोंडितु गुरुगले रमिसुत स्तुतियोलु नमो**

नम.' यह प्रथम पद्य की प्रथम पक्ति प्राप्त होगी। अब दाहिनी ओर घूमकर दूसरी किरण मे पुन **'क'** अक्षर से पढ़ना प्रारम्भ कर वृत्ताकार की ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे **'म'** अक्षर तक पढ़ने पर श्लोक की दूसरी पक्ति **'कल्पवृक्ष सन्निभवायितु ई मुनि मनदोलु छवि नमो नम ।'** प्राप्त होगी । पुन दाहिनी ओर की तीसरी किरण मे स्थित अक्षरो को उसी केन्द्र के **'क'** अक्षर से प्रारभ कर वृत्ताकार मे लिखित ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे स्थित **'म'** अक्षर तक पढ़ने पर पद्य की तृतीय पक्ति **'कल्पनीयवो अकल्पनियविदु अरियद रचनेयु नमो नम ।'** प्राप्त होगी । इसी प्रकार पुन दाहिनी ओर घूमकर चौथी किरण मे लिखित अक्षरो को केन्द्रके **'क'** अक्षर से वृत्ताकार मे लिखित ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे स्थित **'म'** अक्षर तक पढ़ने पर **'कल्पिसिदन्ने कोडुव कल्पद्रुम निरुतागिरुवुदु नमो नम.'** यह चौथी पक्ति प्राप्त होगी ।

द्वितीय हिन्दी भाषा के पद्य को पढ़ने की विधि

'प्रशस्ति-पर्व' मे लिखित द्वितीय हिन्दी भाषा का पद्य भी चित्र मे वृत्त की अर्द्धलम्बाकार की ही चार किरणो मे स्थित है । इन किरणो का क्रम दाहिनी दिशा से गोल घूमते हुए, जिस किरण मे कन्नड़ का पद्य समाप्त हुआ है उससे आगे की किरण से प्रारभ होगा । केन्द्र मे लिखित **'क'** अक्षर के नीचे दो न का अक लिखा हुआ है, जो द्वितीय पद्य के आरम्भ होने का बोधक है । अब **'क'** अक्षर से उक्त दो अक लिखित किरण मे लिखे हुए शब्दो को पढ़ते हुए, वृत्ताकार मे ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे लिखे **'है'** अक्षर तक पढ़ने पर पद्य की प्रथम पक्ति अर्थात् **'कवि हो ना हो कवि मन हरती यह स्तुति सबको प्यारी है ।'** प्राप्त होगी । इसी प्रकार पुन केन्द्र के **'क'** से अगली किरण के अक्षरो को पूर्ववत् ही वृत्ताकार मे ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे लिखे **'है'** अक्षर तक पढ़ने पर पद्य की द्वितीय पक्ति **'कष्ट समय हो कष्ट मिटाती महिमा इसकी न्यारी है ।'** प्राप्त होगी । अब पुन यही प्रक्रिया अपनाते हुए केन्द्र के **'क'** से दाहिनी ओर घूमने पर अगली किरण के अक्षरो को पढ़ते हुए वृत्ताकार मे ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे लिखे **'है'** शब्द तक पढ़ने पर **'करो पाठ गर नित्य नियम से साधन यह सुखकारी है ।'** यह तृतीय पक्ति प्राप्त होगी । चतुर्थ पक्ति है **'कल्पित फल को अहो दिलाती जग जन मङ्गल कारी है ।'** इसे प्राप्त करने के लिए भी पूर्ववत् प्रक्रिया अपनाते हुए केन्द्र के **'क'** से अगली किरण मे स्थित अक्षरो को पढ़कर, पुन वृत्ताकार मे ऊपर से दूसरे न की पक्ति के नीचे लिखित **'है'** अक्षर तक पढ़ने पर प्राप्त किया जा सकता है ।

इस प्रकार **'विघाष्टकं'** की विशेषता को प्रदर्शित करने वाले इस पद्य को पढ़ने की विधि पूर्ण हुई।

चित्र में संस्कृत के श्लोकों को पढ़ने की विधि

पूर्व के प्रथम और द्वितीय न के कन्नड़ और हिन्दी भाषा के दो पद्य किरणो मे निहित हैं। सस्कृत भाषा के सभी श्लोक वृत्ताकार मे लिखी गई पाँचो पक्तियो मे निहित है। जो क्रमश अदर से बाहर की ओर आने पर एक-एक पक्ति मे दो अथवा तीन श्लोक के रूप मे प्राप्त होगे।

श्लोक क्रमांक तीन और चार को पढ़ने की विधि

वृत्ताकार मे लिखी सबसे छोटे गोले की पक्ति अर्थात् प्रथम पक्ति मे श्लोक क्रमाक तीन और चार निहित है। उक्त पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दायी ओर लिखे तीन अक से अकित अक्षर **'वि'** से पढ़ना प्रारभ करते हुए दाहिनी ओर वृत्ताकार मे घूमने पर पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के बायी ओर लिखे, **'कवि'** शब्द तक पढ़ने पर तृतीय श्लोक **"विमुक्तश्चाऽसि वाधार-निस्तीर्णो रामक शुचि । निरारम्भोऽसि धाताऽसि स्तुतयक्षोऽमर कवि ॥३॥"** प्राप्त होगा। पुन उस **'कवि'** शब्द से आगे लिखे **'म'** अक्षर (जिस पर चौथे श्लोक के प्रारभ का बोधक चार अक लिखा गया है) से पढ़ना प्रारभ करके गोल घूमते हुए, जिस तीन अक लिखित **'वि'** अक्षर से तीसरा श्लोक पढ़ना प्रारभ किया था, उसी **'वि'** अक्षर पर पढ़ना समाप्त करने पर चतुर्थ श्लोक **"महा परो यमी वीर ! त्व विद्यासागर सुधाऽ –। दृष्टगस्त्वा सुराऽऽराध्य क रक्त नौमि वा भुवि ॥४॥"** प्राप्त होगा।

श्लोक क्रमांक पाँच और छः को पढ़ने की वधि

वृत्ताकार मे लिखी अदर से बाहर की ओर की द्वितीय पक्ति मे श्लोक क्रमाक पाँच और छ को लिखा गया है। उक्त पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाईं ओर पाँच अक से अकित अक्षर **'प'** से पढ़ना प्रारभ करके दाहिनी ओर गोलाकार से घूमते हुए वृत्त के उत्तरी गोलार्द्ध के बाईं ओर लिखे **"ज्वण"** शब्द पर पढ़ना समाप्त करने पर पाँचवाँ श्लोक अर्थात् **"पनस प्रणतो राति वीथि दुख स नाऽक्षतः । स ना गिरानतो दक्षो लाति भट्टानतिज्वण ॥५॥"** प्राप्त होगा। इसी **'ज्वण'** शब्द के आगे **'र'** अक्षर लिखा है उस पर छ अक अकित है जो कि छठवे श्लोक के प्रारभ का बोधक है। इस **'र'** अक्षर से प्रारभ कर पुन गोलाकार मे जिस **'प'** अक्षर से पाँचवाँ श्लोक पढ़ना प्रारभ किया था उसी **'प'** पर पढ़ना समाप्त करने पर छठवाँ श्लोक अर्थात् **"रक्ष सेव्ये सन्नुतेऽव तु साक्षस्साधितोऽपि य । योगी लात्यगेहिमज्वाऽयक्षवीतरराजप. ॥६॥"** प्राप्त होगा।

श्लोक क्रमांक सात को पढ़ने की विधि

चित्र मे वृत्ताकार मे लिखी अदर से बाहर की ओर की तृतीय पक्ति मे यह श्लोक निहित है। उक्त पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दायी ओर **'मणि'** शब्द पर सात अक लिखा है जो कि सातवे श्लोक के प्रारभ का बोधक है। उस **'मणि'** शब्द से पढ़ना प्रारभ कर दाहिनी ओर घूमते हुए उस वृत्ताकार पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध की दाईं ओर लिखे **'चाधिये'** शब्द पर पढ़ना समाप्त करने पर सातवॉ श्लोक अर्थात् **"मणि विन्नैंव्वासुमध्य धारिणे चादराधति. । विद्यारूप लाति सज्जागरायैव न चाधिये ॥७॥"** प्राप्त होगा।

श्लोक क्रमांक आठ को पढ़ने की विधि

चित्र मे वृत्ताकार मे लिखी अदर से बाहर की ओर की तृतीय पक्ति के ही दक्षिणी गोलार्द्ध के दायी ओर जहा सातवॉ श्लोक समाप्त हुआ है, उसी के आगे **'अट्टमति'** शब्द आठ अक से अकित लिखा हुआ है। अर्थात् आठवाँ श्लोक यहॉ से प्रारम्भ होगा एव दाहिनी ओर से गोल घूमते हुए वृत्ताकार पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के बायी ओर लिखे **'च'** अक्षर पर पढ़ना समाप्त करने पर आठवाँ श्लोक अर्थात् **"अट्टमत्ति यति क विज्ञातु स्वारीन् सुख स्वकम्** । **नोदराय कलिघ्नस्त्वधारीणामहिताय च** ॥८॥" प्राप्त होगा।

श्लोक क्रमांक नौ को पढ़ने की विधि

वृत्ताकार मे लिखी उसी तृतीय पक्ति मे यह नौवाँ श्लोक भी निहित है। जिस **'च'** अक्षर पर आठवाँ श्लोक पढ़ना समाप्त किया था ठीक उसी के आगे **'नो'** शब्द जो कि नौ अक से अकित है, लिखा है। इस **'नो'** शब्द से पढ़ना प्रारभ कर गोल घूमते हुए पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के बाईं ओर लिखे **'मुदा'** शब्द पर पढ़ना समाप्त करने पर नौवॉ श्लोक अर्थात् **"नोऽट्ट श्रेष्ठमिद त्वात्मन्** । **परीतेप्सुस्वभावको । विधाय त्व स्वपरीक्षा पश्यात्मनि रति मुदा** ॥९॥" प्राप्त होगा।

श्लोक क्रमाक दस को पढ़ने की विधि

श्लोक क्रमाक-दस वृत्ताकार मे लिखी (अदर से बाहर की ओर) तृतीय एव द्वितीय पक्ति मे लिखा गया है। इसे पढ़ते समय सर्वप्रथम तृतीय वृत्ताकार पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के बाईं ओर लिखे, दस अक से अकित **'लाख'** शब्द से पढ़ना प्रारभ करते हुए उसी पक्ति मे लिखे

सात अक से अकित **'मणि'** शब्द तक पढ़ने पर दसवे श्लोक की प्रथम पक्ति अर्थात् **"लाख गातु र्भवेप्सा त्व योगेशं वसुधामणिम् ।"** प्राप्त होगी। अब द्वितीय पक्ति को प्राप्त करने के लिए, तृतीय पक्ति मे सात अक से अकित **'मणि'** शब्द के ठीक ऊपर चतुर्थ पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाईं ओर **'म्मिथ्या'** शब्द लिखा है उस **'मणि'** शब्द को **'म्मिथ्या'** शब्द के साथ जोड़कर चतुर्थ पक्ति मे दाहिने घूमते हुए **'तारक'** शब्द पर पढ़ना समाप्त करने पर दसवे श्लोक की द्वितीय पक्ति अर्थात् **'मणिम्मिथ्या विवर्ज्याऽर गुरु ससारतारकम् ॥१०॥"** प्राप्त होगी ।

श्लोक क्रमांक ग्यारह को पढ़ने की विधि

यह श्लोक वृत्ताकार मे लिखी (अदर से बाहर की ओर)चतुर्थ पक्ति मे निहित है । जिस **'तारक'** शब्द पर दसवा श्लोक पढ़ना समाप्त किया था, उसके ठीक बाद ग्यारह के अक से अकित **'गुरु'** शब्द लिखा है । इस **'गुरुं'** शब्द से पढ़ना प्रारभ करते हुए उसी पक्ति मे दाहिने से गोल घूमते हुए, पक्ति मे दक्षिणी गोलार्द्ध के दाईं ओर लिखे **'फाल्गुनीमय'** शब्द तक पढ़ने पर ग्यारहवाँ श्लोक अर्थात् **'गुरुम् विद्यासागर त्व भजस्व रक्ष क मह–। त्तारवीथि समासाद्य येन त्व फाल्गुनीमय** ॥११॥" प्राप्त होगा ।

श्लोक क्रमाक बारह को पढ़ने की विधि

चतुर्थ पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के दायी ओर बारह के अक से अकित **'नो'** शब्द से पढ़ना प्रारभ कर गोल घूमते हुए, उसी पक्ति के पश्चिमी गोलार्द्ध मे लिखे **'इहानुत'** शब्द पर पढ़ना समाप्त करने पर बारहवाँ श्लोक अर्थात् **"नोद्धुरचित्तगर्भेण क आत्माऽऽत्मन् । ज्ञनुर्भव । न च द्वेषेण रागेण भव मन्द इहानुत ॥१२॥"** प्राप्त होगा ।

श्लोक क्रमांक तेरह को पढ़ने की विधि

चतुर्थ वृत्ताकार पक्ति के पश्चिमी गोलार्द्ध मे तेरह के अक से अकित **'ज्ञत्व'** शब्द से पढ़ना प्रारम्भ करके उसी पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के बाई ओर लिखे **'के'** शब्द पर पढ़ना समाप्त करने पर, तेरहवॉ श्लोक अर्थात् **"ज्ञत्व मात्रमिद चैत्य यदिनश्चेव केवल । चेद्भासि नोदितो गीतो मुदित सन् विभासि के ॥१३॥"** प्राप्त होगा ।

श्लोक क्रमांक चौदह को पढ़ने की विधि

चतुर्थ वृत्ताकार पक्ति मे चौदह के अक से अकित (पक्ति के नीचे) **'वागीश'** शब्द लिखा है । इस **'वागीश'** शब्द से पढ़ना प्रारभ कर इसी पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के बाईं ओर लिखे **'करण्डक'** शब्द पर पढ़ना समाप्त करेगे एव इसके ठीक बाद लिखे **मिथ्या** शब्द मे से **'म्'** को अनुस्वार के रूप मे ग्रहण कर **'करण्डकम्'** शब्द पर समाप्त करने पर चौदहवॉ श्लोक अर्थात् **'वागीश योऽक्षमानेश वन्दे सद्धर्मचालितम् । महन्त कुन्दकुन्द दिग्वस्त्र एन करण्डकम् ।।१४।।''** प्राप्त होगा ।

श्लोक क्रमाक पन्द्रह को पढ़ने की विधि

वृत्ताकार मे लिखी पाँचवी अर्थात् अतिम पक्ति मे इन श्लोको को लिखा गया है । इस पक्ति मे **'विद्याष्टक'** के आदि मे लिखे गये **'मङ्गलाचरण'** की पक्तियॉ भी निहित है । अर्थात् इस पॉचवी पक्ति मे आदि एव अन्त्यमङ्गल को एक साथ लिखा गया है । अत इन श्लोको को पढ़ते समय थोड़ी सावधानी रखनी पड़ेगी । आदि के मङ्गलाचरण की चारो पक्तियो अर्थात् चारो चरणो के बीच मे पन्द्रहवे एव सोलहवे श्लोक को लिखा गया है । सर्वप्रथम पन्द्रहवे श्लोक को पढ़ेगे । पाँचवी वृत्ताकार पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध मे पन्द्रह के अक से अकित **'वेद्य'** शब्द से पढ़ते हुए आगे मोटे अक्षर मे झुके हुए बाण से चिन्हित नीचे की ओर लिखे **'कलगणै'** शब्द को पढ़ने पर पन्द्रहवे श्लोक की प्रथम पक्ति **''वेद्य विश्वसमस्तै प्रशमितमतिशत्रुमित्रसकलगणै ।''** प्राप्त होगी । अब द्वितीय पक्ति को प्राप्त करने के लिए उसी वृत्ताकार पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध मे लिखे मोटे अक्षर **'द'** से पढ़ना प्रारम्भ कर दक्षिणी गोलार्द्ध के बायी ओर **'ज्ञान'** शब्द तथा उस **'ज्ञान'** शब्द से बाण चिन्ह से चिन्हित नीचे की ओर लिखे **'हरम्'** शब्द तक पढ़ने पर द्वितीय पक्ति **''दमितेन्द्रियान्तमदन स्तिमित त्व भज गुरू तमज्ञानहरम् ।।१५।।''** प्राप्त होगी ।

सोलहवाँ श्लोक भी इसी पॉचवी पक्ति मे से प्राप्त करेगे । वृत्ताकार पाँचवी पक्ति के पश्चिमी गोलार्द्ध मे सोलह के अक से अकित मोटे अक्षर **'य'** से पढ़ना प्रारभ करके गोल घूमते हुए आगे मोटे अक्षर मे लिखे **'सा'** शब्द एव उस **'सा'** शब्द से बाण चिन्ह से चिन्हित नीचे की ओर लिखे **'धकात्सुमताय'** शब्द तक पढ़ने पर सोलहवे श्लोक की प्रथम पक्ति **''यद्पराजितमदनाय प्रकीर्णकीर्ति सुसाधकात्सुमताय ।''** प्राप्त होगी । इसी प्रकार अब द्वितीय पक्ति प्राप्त करेगे । पाँचवी वृत्ताकार पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध मे लिखित मोटे अक्षर 'र' से पढ़ना प्रारभ कर दाहिनी ओर गोल घूमते

हुए, दायी ओर लिखे मोटे अक्षर **'वि'** एव बाण चिन्ह से चिन्हित नीचे की ओर लिखे **'गताय'** शब्द को पढ़ने पर श्लोक की द्वितीय पक्ति **"रक्षितनवयुग प्रवहैकाय नम काय-राग विगताय ।।१६।।"** प्राप्त होगी ।

इस पॉंचवी वृत्ताकार पक्ति मे आदि मङ्गलाचरण भी लिखा है । अर्थात् पन्द्रहवे और सोलहवे श्लोक को पढ़ते समय जो पक्तियॉं बीच मे छोड़ दी गईं थी वे आदि मङ्गलाचरण की है ।

आदि मङ्गलाचरण को पढ़ने की विधि

पॉंचवी पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाईं ओर लिखे मोटे अक्षर **'वि'**, जिसे अग्रेजी के **'V'** अक्षर से चिन्हित किया गया है, उस **'वि'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर गोल घूमते हुए पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध मे पन्द्रह के अक से अकित मोटे अक्षर **'वे'** तक पढ़ने पर आदि मङ्गलाचरण का प्रथम चरण **"विद्यासागर विश्व वन्द्यश्रमण चित्राष्टकै. सत्तुवे "** प्राप्त होगा । पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के दायी ओर लिखे मोटे अक्षर **'स'** जिस पर नीचे की ओर झुका हुआ बाण चिन्ह अकित है उस **'स'** से पढ़ना प्रारभ करते हुए दक्षिणी गोलार्द्ध मे लिखे मोटे अक्षर 'द' पर पढ़ना समाप्त करने पर आदि मङ्गलाचरण का द्वितीय चरण **"सर्वोच्च यमिन विनम्य परम सर्वार्थसिद्धिप्रद"** प्राप्त होगा । पॉंचवी पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के बाई ओर लिखे **'ज्ञान'** शब्द, जिस पर नीचे की ओर झुका बाण चिन्ह अकित है, उस **'ज्ञान'** शब्द से पढ़ना प्रारभ करके पश्चिमी गोलार्द्ध मे सोलह के अक से अकित मोटे अक्षर मे लिखे **'य'** शब्द तक पढ़ने पर मङ्गलाचरण का तृतीय चरण **"ज्ञानध्यानतपोऽभिरक्त मुनिप विश्वस्य विश्वाश्रयम् ।"** प्राप्त होगा । अब पॉंचवी पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध की बाई ओर लिखे मोटे अक्षर **'सा'**, जिस पर नीचे की ओर झुका बाण चिन्ह अकित है, उस **'सा'** से पढ़ना प्रारभ कर उत्तरी गोलार्द्ध मे लिखे मोटे अक्षर 'र' तक पढ़ना समाप्त करने पर चतुर्थ चरण **"साकार श्रमण विशाल हृदय सत्य शिव सुन्दरम्"** प्राप्त होगा ।

प्रारभ के सोलह श्लोको को छोड़कर शेष सत्रहवॉं श्लोक (प्राकृत भाषा का) एव अन्य मत्र तथा विभिन्न भाषा के बोध वाक्यो को चित्र मे अग्रेजी वर्णमाला के अक्षरो से चिन्हित किया गया है अर्थात् अग्रेजी वर्णमाला के अक्षरो से चिन्हित वर्णो के सग्रह से विभिन्न मत्र एव बोध वाक्य प्राप्त होगे । सर्वप्रथम प्राकृत भाषा मे लिखे सत्रह न के श्लोक को प्राप्त करेगे ।

श्लोक क्रमांक सत्रह को पढ़ने की विधि

श्लोक क्रमाक सत्रह प्राकृत भाषा का श्लोक है । इसे अग्रेजी भाषा के अक्षर **'p'** से सकेतिक किया गया है । चित्र मे **'p'** से चिन्हित वर्णो के सग्रह से यह श्लोक प्राप्त होगा । इस श्लोक को चित्र मे वृत्ताकार मे लिखी (अदर से बाहर की ओर) द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ पक्ति मे लिखा गया है । द्वितीय वृत्ताकार पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दायी ओर सत्रह के अक से अकित एव **'p'** से चिन्हित वर्ण **'प'** से पढ़ना प्रारभ कर उसी वृत्ताकार पक्ति मे गोल घूमते हुए **'p'** से चिन्हित वर्ण क्रमश **'प', 'ण', 'वी', 'स', 'स', 'द' 'ट्टा', 'र', 'से' 'व', 'स्सा' 'यो', 'गे', 'य', 'वी' 'र',** को सग्रह करेगे और फिर उससे ऊपर लिखी तृतीय न की पक्ति मे लिखे **'p'** से चिन्हित वर्णो को पढ़ेगे । सर्वप्रथम तृतीय पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाई ओर लिखे **'णि'** को पढ़ेगे फिर क्रमश **'व्वा', 'णे' 'वि' 'ज्जा' , 'ट्ट', 'क' 'सु' 'लि', 'हि', 'द' 'को' 'प' 'र', 'गा', 'व',** को पढ़ेगे । इसके उपरान्त उसी के ऊपर लिखी चतुर्थ पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दायी ओर लिखे **'म्मि', 'गु', 'रू', 'भ', 'त्ता',** को पढ़ने पर, सत्रहवा श्लोक "**पणवीससदट्ठारसे वस्सायोगे य वीरणिव्वाणे । विज्जाट्ठक सुलिहिद कोपरगावम्मि गुरू-भत्ता ।।१।।**" प्राप्त होगा ।

'कृतिकार का नाम' पढ़ने की विधि

चित्र मे जिन वर्णो को अग्रेजी भाषा के **'N'** (एन)वर्ण से चिन्हित किया गया है, उनके सग्रह से कृतिकार का नाम प्राप्त होता है । वृत्ताकार मे लिखी प्रथम पक्ति (अदर से बाहर की ओर) मे यह वाक्य लिखा है । पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाई ओर **'N'** से चिन्हित **'मु'** शब्द से पढ़ना प्रारभ कर, उस पक्ति मे गोल घूमते हुए क्रमश **'नि', 'नि', 'य', 'म', 'सा','ग', 'र'** को पढ़ने पर यह वाक्य **'मुनि नियम सागर'** प्राप्त होगा ।

कृति का नाम पढ़ने की विधि

चित्र मे जिन शब्दो को **'A'** (ए) वर्ण से चिन्हित किया गया है उनके सग्रह से कृति का नाम प्राप्त होगा । यह भी वृत्ताकार की प्रथम पक्ति मे ही प्राप्त होगा । उस पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाई ओर तीन अक से अकित एव **'A'** वर्ण से चिन्हित अक्षर **'वि'** से प्रारभ कर पुन क्रमश **'र', 'चि', 'त', वि' 'द्या', 'ष्ट', 'क'** को पढ़ने पर **'विरचित विद्याष्टक'** यह वाक्य प्राप्त होगा ।

रत्नत्रय-स्तुति-शतक का यथाख्यात-चारित्र-प्रदिपादक एक सौ दूसरे न. का श्लोक पढ़ने की विधि

चित्र मे **'R'** से चिन्हित वर्णों के सग्रह से **रत्नत्रयस्तुतिशतक** का **यथाख्यातचारित्र** प्रतिपादक एक सौ दूसरे न का श्लोक प्राप्त होगा । इसे वृत्ताकार मे लिखी प्रथम, द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ पक्ति मे लिखा गया है । सर्वप्रथम प्रथम वृत्ताकार पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाई ओर **'102'** एव **'R'** से चिन्हित **'वा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर उस पक्ति मे गोल घूमते हुए क्रमश **'रा'**, **'धा'**, **'र'**, **'र'**, **'धा'**, **'रा'**, **'वा'**, तक पढ़ने पर प्रथम चरण प्राप्त होगा । तदुपरात द्वितीय पक्ति मे प्रवेश कर पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध मे लिखे **'R'** से चिन्हित **'रा'** पुन **'क्ष'** **'ला'**, **'क्ष'**, **'क्ष'**, **'ला'**, **'क्ष'** , **'रा'**, को पढ़ने पर द्वितीय चरण प्राप्त होगा । तदुपरात तृतीय पक्ति मे प्रवेश कर, पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध मे लिखे **'धा'** से पढ़ना प्रारभ कर क्रमश **'ला'** **'य'**, **'नो'** **'नो'**, **'य'**, **'ला'**, **'धा'**, को पढ़ने पर तृतीय चरण प्राप्त होगा । चतुर्थ पक्ति मे प्रवेश कर पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध मे **'R'** से चिन्हित 'र' पुन 'क्ष', 'नो', 'ज्ञ', 'ज्ञ', 'नो' 'क्ष', 'र' को पढ़ने पर चतुर्थ चरण प्राप्त होगा । इस प्रकार **(१) "वाराधारर । धारावा (२) राक्षलाक्ष । क्षलाक्षरा । (३) धाला । य । नो नोऽय लाधा (४) रक्ष नोऽज्ञज्ञ । नोऽक्षर ॥ १०२॥"** यह चार चरण वाला उक्त श्लोक प्राप्त होगा ।

विद्याष्टक का प्रथम एवं अन्य श्लोको को पढ़ने की विधि

चित्र मे जिन वर्णों को अग्रेजी के **'R'** (आर) वर्ण से चिन्हित किया गया है उनको विधिवत् पढ़ने पर सर्वप्रथम विद्याष्टक का प्रथम श्लोक दो बार तदुपरात शेष सात श्लोक उसी प्रथम श्लोक के वर्णो को न्यूनाधिक एव गत-प्रत्यागत से पढ़ने पर प्राप्त हो जायेगे । **रत्नत्रयस्तुति शतक** का श्लोक भी चित्र मे **'R'** से चिन्हित वर्णो के सग्रह से ही प्राप्त होता है । लेकिन उक्त श्लोक, वृत्ताकार की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पक्ति मे गोलाकार मे घूमने से प्राप्त हुआ था और **विद्याष्टक** के प्रथम श्लोक की प्राप्ति भी उन्ही पक्तियो मे तो होगी परन्तु गोल न घूमकर उन वर्णो को किरण के रूप मे सग्रहित करने पर होगी। केन्द्र से जो आठ किरणे निकली है उन्ही आठो किरणो के बीच प्रथम से चतुर्थ वृत्ताकार पक्ति मे **'R'** से चिन्हित एक-एक वर्ण

लिखा है जो लगभग एक के ऊपर एक होने से **'किरण'** रूप मे कल्पित होता है । अत इसी कल्पना को ध्यान मे रखकर उक्त श्लोक को प्राप्त करेगे । प्रथम वृत्ताकार पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध के ऊपर की ओर **'R'** से चिन्हित एव **'102'** अक से अकित **'वा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर, ठीक उसके ऊपर द्वितीय पक्ति मे **'R'** मे चिन्हित **'रा'** पुन उससे ऊपर तृतीय पक्ति मे 'R' से चिन्हित **'धा'** और फिर उससे ठीक ऊपर चतुर्थ पक्ति मे **'R'** से चिन्हित **'र'** अक्षर को पढ़ने पर **'वा रा धा र'** ये चार वर्ण प्राप्त होगे । पुन उसी चतुर्थ पक्ति के **'र'** को एक बार और पढ़ते हुए उसी क्रम से नीचे की ओर **'धा'**, **'रा'** और **'वा'** को पढ़ने पर प्रथम चरण **'वाराधारर धारावा'** प्राप्त होगा ।

प्रथम वृत्ताकार पक्ति के पूर्वी गोलार्द्ध के नीचे की ओर 'R' से चिन्हित वर्ण **'रा'** से पढ़ना प्रारभ कर उसके ऊपर क्रमश द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ पक्ति मे 'R' से चिन्हित वर्ण **'क्ष'**, **'ला'** और **'क्ष'** को पढ़ने पर **'राक्षलाक्ष'** प्राप्त होगा । पुन उसी चतुर्थ पक्ति के **'क्ष'** को एक बार फिर पढ़ते हुए उसी क्रम से नीचे की ओर आते हुए प्रथम पक्ति तक 'R' से चिन्हित उन्ही वर्णो **'ला'**, **'क्ष'** और **'रा'** को पढ़ने पर द्वितीय चरण **'राक्षलाक्षक्षलाक्षरा'** पूर्ण रूप से प्राप्त हो जायेगा ।

प्रथम वृत्ताकार पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के दाई ओर 'R' से चिन्हित **'धा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर, पूर्ववत् क्रमश द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पक्ति मे एक के ऊपर एक लिखे **'ला'**, **'य'** **'नो'** को पढ़ने पर **'धालायनो'** यह प्राप्त होगा । उसी **'नो'** को पुन पढ़ते हुए उसी क्रम से नीचे प्रथम पक्ति तक लिखित **'य'**, **'ला'**, **'धा'** को पढ़ने पर **'धालायनोनोयलाधा'** यह तृतीय चरण पूर्ण रूप से प्राप्त होगा ।

पुन प्रथम वृत्ताकार पक्ति के दक्षिणी गोलार्द्ध के दाई ओर **'R'** से चिन्हित 'र' अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर, पूर्ववत् प्रक्रिया से, ऊपर चतुर्थ पक्ति तक के क्रमश **'क्ष'**, **'नो'**, **'ज्ञ'**, को पढ़ने पर **'रक्षनोज्ञ'** प्राप्त होगा । उस **'ज्ञ'** को दुबारा पढ़कर उसी क्रम से नीचे प्रथम पक्ति तक **'नो'** **'क्ष'**, **'र'**, को पढ़ने पर **'रक्षनोज्ञज्ञनोक्षर'** यह चतुर्थ चरण प्राप्त होगा ।

इसी श्लोक के चारो चरणो को इसी प्रक्रिया के अनुसार चित्र मे एक बार और प्राप्त किया जा सकता है ।

प्रथम वृत्ताकार पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाई ओर **'R'** से चिन्हित **'वा'** अक्षर से पढ़ना

प्रारभ कर, उसके ऊपर, द्वितीय, तृतीय, एव चतुर्थ पक्ति मे लिखे **'R'** से चिन्हित क्रमश **'रा', 'धा, 'र',** को पढ़ने पर एव पुन उस **'र'** को दुबारा पढ़कर उसी क्रम से नीचे प्रथम पक्ति तक **'धा' 'रा' 'वा'** को पढ़ने पर **'वाराधाररधारावा'** प्रथम चरण पूर्ण रूप से प्राप्त हो जायेगा।

प्रथम वृत्ताकार पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के बाईं ओर **'R'** से चिन्हित **'रा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर उसके ऊपर की द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ पक्ति के क्रमश **'क्ष', 'ला',** और **'क्ष'** को पढ़ने पर **'राक्षलाक्ष'** प्राप्त होगा। पुन उसी **'क्ष'** को दुबारा पढ़कर उसी क्रम से नीचे प्रथम पक्ति तक **'ला', 'क्ष', 'रा'** तक पढ़ने पर द्वितीय चरण **'राक्षलाक्षक्षलाक्षरा'** पूर्ण रूप से प्राप्त होगा। प्रथम वृत्ताकार पक्ति के पश्चिमी गोलार्द्ध के ऊपर की ओर **'R'** से चिन्हित **'धा'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर उसके ऊपर की द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ पक्ति तक एक के ऊपर एक लिखे **'ला', 'य', 'नो',** को पढ़ने पर **'धालायनो'** प्राप्त होगा। पुन उस **'नो'** को दुबारा पढ़कर उसी क्रम से नीचे प्रथम पक्ति तक **'य', 'ला', 'धा'** को पढ़ने पर **'धालायनोनोयलाधा'** यह तृतीय चरण प्राप्त होगा।

प्रथम वृत्ताकार पक्ति के पश्चिमी गोलार्द्ध के नीचे की ओर 'R' से चिन्हित **'र'** से पढ़ना प्रारभ कर उसके ऊपर की द्वितीय, तृतीय एव चतुर्थ पक्ति तक एक के ऊपर एक लिखे **'क्ष', 'नो', 'ज्ञ'** को पढ़ने पर **'रक्षनोज्ञ'** प्राप्त होगा। पुन उस **'ज्ञ'** को दुबारा पढ़कर उसी क्रम से नीचे प्रथम पक्ति तक **'नो', 'क्ष', 'र'** को पढ़ने पर चतुर्थ चरण **'रक्षनोज्ञज्ञनोक्षर'** प्राप्त होगा।

'रचना काल' को पढ़ने की विधि

प्रशस्ति पर्व मे लिखित प्राकृत गाथा मे रचना काल को बताया गया है। जिसे चित्र मे **'P'** से चिन्हित किया गया है। प्राकृत की उस गाथा को पढ़ने की पूर्व मे दी गई विधि के अनुसार पढ़ने पर यह **'रचनाकाल'** प्राप्त हो जायेगा।

'विद्यासागराय नम.' मन्त्र पढ़ने की विधि

उक्त मत्र को चित्र मे अग्रेजी वर्णाक्षर से चिन्हित वर्णो के माध्यम से समाहित किया गया है। चित्र की चतुर्थ वृत्ताकार पक्ति (अदर से बाहर की ओर) के उत्तरी गोलार्द्ध के दाहिनी ओर, केन्द्र से निकली किरण के अत मे **'V'** से सकेतित **'वि'** अक्षर से पढ़ना प्रारभ कर, सभी किरणो

के अत के अक्षर, क्रमश **'द्या'**, **'सा'**, **'ग'**, **'रा'**, **'य'**, **'न'**, **'म'**, को पढ़ने पर **'विद्यासागराय नमः'** मत्र प्राप्त होगा ।

'दि एण्ड' यह वाक्य पढ़ने की विधि

चित्र मे वृत्ताकार मे लिखी चतुर्थ पक्ति के उत्तरी गोलार्द्ध के दाई ओर **'E'** से चिन्हित तीन वर्ण **'दि'**, **'ए'**, **'ण्ड'**, को क्रम से पढ़ने पर ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक **'दि एण्ड'** यह अग्रेजी भाषा का वाक्य प्राप्त होगा ।

॥ इस प्रकार विश्व-चक्र-बन्ध को पढ़ने की विधि समाप्त हुई ॥

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

परिशिष्ट-1
पारिभाषिक शब्द

पारिभाषिक-शब्द

(हिन्दी गद्यानुवाद के साकेतिक शब्दो पर आधारित

जैनागम के गूढतम शब्दो की व्याख्या ।)

1 **कर्म** = ससारी जीव ने अपने राग-द्वेषादि भावो से जिन पुद्‌गल/जड़ परमाणुओ को ग्रहण कर अपनी आत्मा के भीतर घोल दिया है या बाधा है, उनको कर्म कहते है । वे ज्ञानावरण अर्थात् ज्ञानका घातक, आदि के भेद से आठ प्रकार के है ।

2 **पाप-पुण्यकर्म** = जो आत्मा को दु ख दे उसे पाप-कर्म कहते है, और जो आत्मा को सुख दे उसे पुण्य कर्म कहते है ।

3. **यथाख्यात-सयम** = सयम के वैसे सात भेद है । उन सातो भेदो मे से जो अत्यन्त-उत्कृष्ट है, वीतराग है, मोहनीय कर्म के बन्ध और उदय से रहित है उसे यथाख्यात सयम कहते है यह सयम यद्यपि ग्यारहवे गुणस्थान से चौदहवे गुणस्थान तक के जीवो को होता है तथापि **'विद्याष्टक'** के अन्दर जिस श्लोक मे यथाख्यात-सयम का नाम आया है, वहा ग्यारहवे गुणस्थान को लेकर स्तुति की गई है ।

4 **सवर-तत्त्व** = आने वाले नवीन कर्मो को विशुद्ध-भावो के द्वारा रोकना सवर कहलाता है और सवर का जो भाव है वही सवर -तत्त्व है ।

5 **गुणश्रेणी-निर्जरा** = पूर्व-बद्ध-कर्मो का आत्मा से अलग हो जाने को निर्जरा कहते है और मोक्षमार्गस्थ-जीवो के उत्तरोत्तर जो निर्जरा होती है, वह गुण-श्रेणी-निर्जरा कहलाती है । यह निर्जरा चौथे गुणस्थान से बारहवे गुणस्थान तक होती है ।

6 **क्षीणमोह** = जिस श्रमण के मोहनीय अट्ठाईस कर्म सारे नष्ट हो चुके हो उनको क्षीण-मोह कहते है । इनका सयम, यथाख्यात-सयम होता है ।

7 **मोहनीय-कर्म** = आत्मा से पूर्व मे बन्धा हुआ वह कर्म, जो अपने प्रभाव से जीव की धर्म-श्रद्धा को और चारित्ररूप-भावो को नही होने देता हो उसे मोहनीय कर्म कहते है ।

8 **मोहनीय-कर्म की 28 प्रकृतियाँ** = दर्शन-मोहनीय-कर्म के तीन और चरित्र मोहनीय-कर्म के पच्चीस, इस तरह मोहनीय-कर्म की कुल अट्ठाईस मूल-प्रकृतियां है । अनन्तानुबन्धी– क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यान-क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यान-क्रोध-मान-माया-लोभ, सज्वलन-क्रोध-मान-माया लोभ, के सोलह, और हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुसकवेद, ऐसी नौ नोकषाय, और दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृति–मिथ्यात्व– सम्यग्मिथ्यात्व-और सम्यक्प्रकृति, ऐसे मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियॉ है । ये कर्म जड़ है । आत्मा से बधते है और इनका फल जीव भोगता है ।

9 **अन्तर्मुहूर्त्त** = अड़तालीस मिनट के अन्दर के काल को अन्तर्मुहूर्त्त कहते है ।

10 **ज्ञानावरणीय-कर्म** = जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का घात करता है उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

11 **दर्शनावरणीय-कर्म** =जो कर्म आत्मा के दर्शन-गुण का घात करता है उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते है ।

12 **अन्तराय-कर्म** = जो कर्म जीव के इष्ट कार्यो मे विघ्न डालता हो उसे अन्तराय-कर्म कहते है ।

13 **वीतराग** = राग रहित अवस्था को वीतराग कहते है ।

14 **परम-उपेक्षा-सयम** = समस्त पाप-प्रवृत्ति से छूटकर, रागादि भावो से भी उपेक्षित (रहित) होने के बाद जो आत्मा की अत्यन्त निर्मल-दशा प्रकट होती है उस सयम को परम-उपेक्षा-सयम कहते है ।

15 **परमात्म-पद** = आत्मा की अरहन्त-अवस्था को या सिद्ध-अवस्था को प्राप्त होने के

बाद जो आत्मा की परम-दशा प्रकट होती है उसे परमात्म-पद कहते है ।

16	**परमार्थभूत-सयम** =	परमार्थ का अर्थ होता है, मोक्ष । उस मोक्ष को प्राप्त करने के लिए साधनभूत जो सयम होता है उसे परमार्थ भूत सयम कहते है ।
17	**सयम** =	मोक्ष की प्राप्ति के लिए अपनी इन्द्रियो को जीतना और जीवो की रक्षा करना ही सयम है ।
18	**असयम** =	भोगो मे स्वछन्द प्रवृत्ति और जीवो की रक्षा न करना ही असयम है ।
19	**केवल-ज्ञान** =	जो ज्ञान समस्त द्रव्यो की त्रैकालिक-अवस्थाओ को स्पष्ट और युगपत् (एक साथ) जानता हो और देखता हो उसे केवल ज्ञान कहते है।
20	**परम-वीतराग** =	राग-रहित उत्कृष्ट (सर्वोच्च) अवस्था ही परम-वीतराग है ।
21	**ज्ञाता-दृष्टा** =	जो बिना हर्ष-विषाद किये केवल जानता हो और देखता हो उसे ज्ञाता-दृष्टा कहते है ।
22	**राग** =	मोहनीय-कर्म के उदय से उत्पन्न आत्मा के मोह जनित भाव को राग कहते है ।
23	**द्वेष** =	मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न आत्मा के क्रोध या अहकार आदि भाव को द्वेष कहते है ।
24	**निर्विकल्प-ज्ञान-दशा** =	ज्ञान की जिस अवस्था मे आत्मा मे रागादि विकल्प न हो, वही निर्विकल्प-ज्ञान-दशा है ।
25	**परम-समाधि-स्वरूप सयम** =	समस्त शुभाशुभ से छूटकर निर्विकल्प-आत्म दशा मे प्रविष्ट होकर उसी मे अधिक स्थिरता पाने के बाद जो आत्मा की सयम-दशा प्रकट होती है उसको परम-समाधि-स्वरूप-सयम कहते है। यह निर्ग्रन्थ श्रमणो को ही सभव है ।
26	**वीतरागी** =	रागादि-विकल्प-दशा-रहित-आत्मा को वीतरागी कहते है ।
27	**द्रव्य** =	जो अपनी ध्रुवताके कारण, अवस्थाओ से बदलता हुआ भी नित्य रहता

है वही द्रव्य है, अथवा जो सत्-स्वरूप होता है या गुणो का समुदाय-स्वरूप होता है उसको द्रव्य कहते है ।

28. गुण = जो कि द्रव्य की सब अवस्थाओ मे विद्यमान रहता हो उसे गुण कहते है ।

29 पर्याय = द्रव्य की अवस्था को पर्याय कहते है ।

30 सवेदन और ज्ञान= जानना-मात्र ज्ञान है, और अनुभव मात्र, सवेदन है ।

31. ज्ञायक = जो जानता है उसे ज्ञायक कहते है । आत्मा मे ज्ञान-गुण जानता है वही ज्ञायक है ।

32 सवेदक = जो वेदन अर्थात् अनुभव करता है उसे सवेदक कहते है ।

33. असद्रूप = जिसका अस्तित्व नही होता है वह असद्रूप है ।

34 सराग = राग सहित अवस्था को सराग कहते है ।

35 परात्मा = आत्मा से भिन्न दूसरी आत्मा को परात्मा कहते है ।

36. पर-द्रव्य = निज के अलावा जो दूसरे द्रव्य है, वे ही पर-द्रव्य है ।

37 सराग-पर्याय = राग सहित आत्मा की अवस्था को सराग-पर्याय कहते है ।

38 वीतराग-पर्याय = राग रहित आत्मा की अवस्था को वीतराग-पर्याय कहते है ।

39 ज्ञायक और सवेदक मे अन्तर = जानने वाला ज्ञायक और अनुभव करने वाला सवेदक होता है, यही दोनो मे अन्तर है ।

40 विनाश-रहित-संयम = जिस सयम से पतित होना नही पड़ता, उसे विनाश रहित-सयम कहते है । बारहवे गुणस्थान का यथाख्यात-सयम विनाश-रहित अर्थात् पतन रहित होता है ।

41 अतिम-गुण-स्थान-त्रय = गुणस्थान चौदह होते है । उनमे अन्तिम तीन गुणस्थानो को, "१ **क्षीणमोह** २ **सयोग केवली** ३ **अयोग केवली**" के नाम से कहा

है । इन तीन गुणस्थानो के समुदाय को अन्तिम-गुणस्थानत्रय जानना।

42. **गुणस्थान** = मोह और मन,वचन, कायकी प्रवृत्ति के कारण जीवके अतरग परिणामो मे प्रतिक्षण होने वाले उतार चढ़ाव का नाम गुणस्थान है । परिणाम यद्यपि अनन्त हैं, परन्तु उत्कृष्ट मलिन-परिणामो से लेकर उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामो तक तथा उससे ऊपर जघन्य वीतराग परिणामो से लेकर उत्कृष्ट वीतराग-परिणाम तक की अनन्त वृद्धियो के क्रमको वक्तव्य बनाने के लिए चौदह श्रेणियो मे विभाजित किया गया है । वे १४ गुणस्थान कहलाते है । साधक अपने अतरग प्रबल पुरुषार्थ द्वारा अपने परिणामो को चढ़ाता है, जिसके कारण कर्मो व सस्कारो का उपशम, क्षय वा क्षयोपशम होता हुआ अन्त मे जाकर सर्म्पूण कर्मो का क्षय हो जाता है, वही उसका मोक्ष है ।

43 **अक्षर** = जो नाश न हो, पतन-अवस्था को प्राप्त न हो उसे अक्षर कहते है।

44 **अच्युत** = जो पतन-शीलता से रहित हो उसे अच्युत कहते है ।

45. **प्रतिपाती-स्वभाव-सयम** = जिस सयम को प्राप्त करने के उपरात यह आत्मा कर्मोपशमन के कारण से पुन नियम से पतन अवस्था को प्राप्त हो जाय और अपने सयम के शिखर से नीचे गिर जाय, उसे प्रतिपाति-स्वभाव-सयम कहते है अर्थात् ग्यारहवे गुणस्थान का सयम प्रतिपाति-स्वभाववाला होता है । इसी कारण इस सयम मे स्थित जीव नियम से नीचे गिरता है ।

46 **बारहवे गुणस्थान का सयम** = मोहनीय-कर्म की सम्पूर्ण अट्ठाईस प्रकृतियो के क्षय के बाद, शेष समस्त घाति कर्मो को नाश करने योग्य आत्मा के जहॉ अत्यन्त निर्मल-वीतराग-परिणाम प्रकट होते है, उस गुणस्थान-विशेष-सयम को बारहवे गुणस्थान का सयम जानना ।

47. **अप्रतिपाति-स्वभाव-सयम** = समस्त मोहनीय कर्म क्षय होने से जिस सयम से आत्मा का पतन भी न होता हो, और अन्तर्मुहूर्त के भीतर सर्वज्ञ-परमात्मा बनता हो, उस सयम को अप्रतिपाति-स्वभाव-सयम कहते है । यथाख्यात-सयम इसी का नाम है ।

48. पचम-काल = सर्वज्ञ देवने कालके दो भेद बतलाए है १ उत्सर्पिणी और २ अवसर्पिणी। ये दोनो ही दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण के होते है। दोनो को मिलाने पर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कल्प-काल बनता है परन्तु उत्सर्पिणी के छहछह विभाग है। कुल मिलकर काल के बारह विभाग हो जायेगे। उनका नाम इस प्रकार है– अवसर्पिणी के छह भेद– १ सुषमा-सुषमा २ सुषमा ३ सुषमा-दुषमा ४ दुषमा-सुषमा ५ दुषमा ६ दुषमा-दुषमा। उत्सर्पिणी के ६ भेद अवसर्पिणी के विरुद्ध क्रम से चलते है अर्थात् ६ दुषमा-दुषमा ५ दुषमा ४ दुषमा-सुषमा ३ सुषमा-दुषमा २ सुषमा १ सुषमा-सुषमा। यहाँ अवसर्पिणी के पचमकाल का नाम और उत्सर्पिणी के पचम काल का नाम दुषमा है इसी को कलियुग भी कहा जाता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का प्रथम काल, सुषमा-सुषमा का प्रमाण चार कोड़ाकोडी सागरोपम, द्वितीय सुषमा का तीन कोड़कोड़ी सागरोपम, तृतीय सुषमा-दुषमा का दो काड़ाकोड़ी सागरोपम, चतुर्थ दुषमा-सुषमा का ब्यॉलीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम और पचम दुषमा का इक्कीस हजार वर्ष तथा षष्ठ-दुषमा का इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण होता है अभी वर्तमान मे अवसर्पिणीका पचम काल दुषमा चल रहा है, और इसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है। महावीर निर्वाण 2520 (2520+3 वर्ष 8 माह 15 दिन = 2523 वर्ष 8 माह 15 दिन) की अपेक्षा (21000-2523 वर्ष $8^1/_2$ माह =18476 वर्ष $3^1/_2$ माह) अठारह हजार चार सौ छहत्तर वर्ष साढ़े तीन माह, पचम काल के शेष है।

49 वात्सल्य = माँ अपने बच्चो के प्रति और गाय अपने बछड़े के प्रति जैसे अनुराग करती है वैसे सहधर्मियो के प्रति अनुराग करना, वात्सल्य कहलाता है।

50 योगीश्वर = योग-साधना-रत साधु को योगी कहते है। ऐसे योगियो मे ईश्वर अर्थात् जो प्रधान होते है उन्हे योगीश्वर कहते है। अर्थात् योगियो के स्वामी, आचार्य परमेष्ठी, जो स्वय योग साधना मे रत रहते है और दूसरो

को भी योग-साधना कराते है वे योगीश्वर कहलाते है ।

51. जिन = जिन्होने अपनी इन्द्रियो को जीत कर स्वाधीनता वीतरागता तथा ध्यान और तपस्या के बल पर, अपनी आत्मा के कर्मरूपी शत्रु को जीत लिया है, उन्हे जिन कहते है । जिन, अरहन्त, अरिहन्त, जिनेश्वर, ब्रह्मा, आप्त इत्यादि समानार्थक है ।

52 जिन-स्वरूप = जिनको देखने पर, 'जिन' को (अरहन्त भगवान को) देखने जैसा प्रतिभास होता हो वे जिन-स्वरूप है ।

53. रत्नत्रय = जिनागम मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहा है। बुराई पर आस्था न रखना सम्यग्दर्शन है, बुराई को बुरा समझना सम्यग्ज्ञान है, बुराई को त्याग कर अच्छाई पर चलना सम्यक्चारित्र है । ये तीनो जीव को शाश्वत सुख प्राप्त कराने के लिए साधन है ।

54 सकल-सयम = निर्ग्रन्थ श्रमणो के सयम को सकल सयम कहते है । जिसमे एकेन्द्रिय आदि से लेकर पचेन्द्रिय तक के समस्त जीवो की हिसा का त्याग करना, अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर रागद्वेष रहित सदा वीतराग परिणामो को रखना अनिवार्य है ।

55 यतीश्वर = जो श्रमण सयम को पालन करने मे सदा यत्नशील रहते है उन्हे यति कहते है ऐसे यतियो मे जो प्रधान होते है उन्हे यतीश्वर कहते है।

56 निर्मम = ममत्व भावो से रहित साधु निर्मम होता है ।

57 असयम भाव = इन्द्रिय-सयम और प्राणी-सयम-रहित भाव को, असयम-भाव कहते है। अर्थात् अपनी इन्द्रियो को न जीतना और प्राणियो की रक्षा न करना ही, असयम-भाव है ।

58 उपसर्ग = आकस्मिक कष्ट या आपत्ति को उपसर्ग कहते है । वह चार प्रकार का होता 1 देवकृत् 2 मनुष्यकृत् 3 पशुकृत् 4 प्रकृतिकृत् अर्थात् नैसर्गिक । जैसे अकाल पड़ना, हिम-पात आदि होना, भूकप आना,

घर पहाड़ इत्यादि का टूटना, तीव्र-वायु चलना, गर्मी पड़ना आदि ।

59 **आराध्य** = उपासना करने योग्य या पूजा करने योग्य को आराध्य कहते है ।

60. **भगवान** = आत्मा के अनन्त-गुणो की सुन्दरता से युक्त आत्मा को भगवान कहते है। या जो केवल-ज्ञान से युक्त हो उन्हे भगवान कहते है ।

61 **श्रमण** = जो सतत आत्म-सिद्धि के लिए श्रम करते है उन्हे श्रमण कहते है।

62 **उपासक** = देव-गुरु-शास्त्र की पूजा मे या आत्म-गुणो की पूजा मे निरत आत्मा उपासक कहलाता है ।

63 **शैथिल्य** = आत्म-सयम की शिथिलता के भाव को शैथिल्य कहते है ।

64 **श्रमणता** = श्रमण गुणो की पूर्णता ही श्रमणता है ।

65 **श्रमण-सस्कृति** = जिन अचार विचार और आस्था के माध्यम से श्रमणो ने मोक्ष प्राप्त किया है उस यर्थाथ परम्परा की सस्कृति को श्रमण-सस्कृति कहते है।

66. **यथार्थ परम्परा** = जिनागम के अनुरूप जो यथार्थ श्रमण सस्कृति की परम्परा है, उसे यथार्थ-परम्परा कहते है ।

67. **धर्म** = ससार के समस्त दु खो से छुड़ाकर जो भव्य जीवो को मोक्ष-सुख मे पहुचाता है, उसे धर्म कहते है ।

68 **यथार्थ-धर्म** = जो धर्म स्वय समस्त दोषो से मुक्त हो और भव्य जीवो को मोक्ष दिलाने मे समर्थ हो, उसे यथार्थ-धर्म कहते है ।

69 **तुलायन्त्र-दण्ड-भाव** = जैसे तराजू की डडी वह जिस प्रकार यथार्थता का सूचक होती है, उसी प्रकार जिन के धार्मिकता के न्याय-वचन यथार्थता के सूचक हो, ऐसे भाव ।

70 **धार्मिक न्याय-वचन** = मोक्ष-मार्ग मे यथार्थता की विधेयता को धार्मिक न्याय कहते है।

71 **विधायक** = प्रस्तुति-करण, विधान करना ।

72 समीचीन = जो यथार्थ होता है, सत्य होता है निर्दोष होता है उसे समीचीन कहते है।

73 मोक्ष-मार्ग = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता को मोक्षमार्ग कहते है। सच्चाई का श्रद्धान, सच्चाई का ज्ञान और सच्चाई का आचरण यही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है । इन तीनो की अभेदता / एकता निश्चय-मोक्ष मार्ग है । भेदता / अनेकता, व्यवहार मोक्ष-मार्ग है ।

74 श्रमण-मार्ग = जिस मार्ग मे आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए श्रमण-लोग निरन्तर परिश्रम करते रहते है, ऐसा रत्नत्रय-स्वरूप मोक्ष-मार्ग ही श्रमण मार्ग है ।

75 महा-पुरुष = आत्म गुणो की अपेक्षा से जो महान होते है, वे महापुरुष कहलाते है ।

76 न्यायाधीश = धार्मिक-क्षेत्र मे आगम के अनुरूप यथार्थ और अयथार्थता का निर्णायक ही न्यायाधीश है ।

77 सदोष-श्रमण = दोष सहित श्रमण को ही सदोष श्रमण कहते है । सकल्पित व्रतो मे दोष उत्पन्न होने से, श्रमण सदोष हो जाता है ।

78 दोष-परिहार = दोषो के निवारण को दोष-परिहार कहते है ।

79 प्रायश्चित्त = व्रतादि मे दोष लग जाने पर आत्म-शुद्धि के लिए जो दण्ड स्वीकार किया जाता है उसे प्रायश्चित्त कहते है ।

80 दण्ड-विधेयता = दण्ड अर्थात् प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्त देने की सुयोग्यता ही विधेयता है।

81 समुचित-पात्रता = सुयोग्य पात्रता ही समुचित-पात्रता है ।

82 परमार्थ-क्षेत्र = रत्नत्रय-स्वरूप मोक्षमार्ग पूर्णरूप से आध्यात्मिक है। उस आध्यात्मिक क्षेत्र को ही परमार्थ-क्षेत्र कहते है ।

84 न्याय-विधाता = न्याय-विधायक कर्ता को न्याय विधाता कहते है ।

85. दानेश्वर = दान के अधिपति या स्वामी को दानेश्वर कहते है ।

86. चतुर्विध-दान = 1 आहार-दान 2 औषध-दान 3 अभयदान 4 ज्ञान-दान, ऐसे चार प्रकार के दानो को चतुर्विध-दान कहा है ।

87 अभय-दान = सभी जीवो के प्रति करुणा का भाव और तदनुरूप प्रवृत्ति ही अभय-दान है ।

88. ज्ञान-दान = आत्म कल्याण मे कारणीभूत सम्यग्ज्ञान को जगाने के लिए वाणी या उपकरण (शास्त्र) आदि का दान करना ज्ञान-दान है ।

89. श्रमणेश = जो श्रमणो के स्वामी होते है, वे श्रमणेश है ।

90 सन्त शिरोमणि = जो सन्तो मे शिरोमणि है । उन्हे सन्त शिरोमणि कहते है ।

91 लौकिक = जो विषय, ससार सबधी या लोक सबधी हो उसे लौकिक कहते है।

92 तारण-तरण = जो दूसरो को तारते हो और स्वय भी तरते हो वे तारण-तरण है।

93 अनाथ = जिनके कोई रक्षक या स्वामी न हो उन्हे अनाथ कहते है ।

94 मोह = जो प्राणी को शराबी की तरह मतवाला बनाता हो उसे मोह कहते है ।

95 ससारी-प्राणी = जो आत्मा कर्मोदय के कारण से देह और प्राणो को धारण करता है उसे ससारी प्राणी कहते है ।

96 परमार्थ-ज्ञान = परमार्थ का अर्थ होता है मोक्ष । उस मोक्ष को प्राप्त करने के लिए जो ज्ञान होता है, उसे परमार्थ-ज्ञान कहते है । अर्थात् आत्म-तत्त्व सबधी अध्यात्म-ज्ञान ही परमार्थ-ज्ञान है ।

97 वात्सल्याधिपति = जिनमे सहधर्मियो के प्रति उत्कृष्ट वात्सल्य हो ।

98 मुनि-धर्म = सर्व सग (परिग्रह) त्यागरूप जो मुनियो का धर्म होता है, उसे मुनि-धर्म कहते है ।

99 **स्व-चर्या** = अपनी निज-सयम की क्रिया ही स्वचर्या है ।

100. **आत्म-धर्म** = आत्मा का निज-स्वभाव, जानना और देखना है । राग-द्वेष या हर्ष-विषाद करना, आत्मा का स्वभाव नही है । जो स्वभाव नही वह धर्म नही और जो स्वभाव होता है वही धर्म होता है । जानना और देखना ही आत्म-धर्म है ।

101 **परमार्थ-ज्ञान-दान** = आत्म तत्त्व सबधी अध्यात्म ज्ञान का उपदेश, पढ़ना पढ़ाना एव ज्ञानोपकरण अर्थात् तत्सबधी ज्ञान की उत्पत्ति मे निमित्तभूत शास्त्र आदि का देना परमार्थ-ज्ञान-दान है ।

102 **श्रमणोत्तम** = जो श्रमणो मे उत्तम अर्थात् श्रेष्ठ हो वे श्रमणोत्तम है ।

103 **साधक** = जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र मे स्थित होकर अपनी निज आत्मा की साधना करते है, उन्हे साधक कहते है ।

104 **सयमाधिपति** = जो सयम के स्वामी हो अर्थात् जिनका सयम अत्यन्त उत्कृष्ट हो अथवा सयमियो के जो अधिपति हो, उन्हे सयमाधिपति कहते है ।

105 **आत्म शुद्धि** = आत्म-अपराधो का सशोधन ही आत्मशुद्धि है ।

106 **उपास्य** = जो उपासना के योग्य हो वह उपास्य है ।

107 **आयतन** = जिन स्थानो के निमित्त से आत्मा का उद्धार सभव हो, उन्हे आयतन कहते है । आयतन छह है । 1 परमार्थ-देव 2 परमार्थ-गुरु और ३ परमार्थ-शास्त्र । तथा इन तीनो के उपासक, इस तरह कुल छह है ।

108. **विद्यावारिधी** = विद्या अर्थात् ज्ञान, वारिधी अर्थात् सागर । जो ज्ञान के अगाध सागर है वे विद्यासागर है अथवा साक्षात् विद्यावारिधि है ।

109 **विद्वत्समुदाय** = विद्वानो का समुदाय ।

110 **विद्वज्जन-ज्ञान-दान** = अर्थात् विद्वानो के लिए आगम का यथार्थ-ज्ञान-दान ।

111 **आध्यात्मिक** = साधको को आत्मा के निकट पहुँचाने वाला अलौकिक आत्म-तत्त्व,

आध्यात्मिक कहलाता है ।

112 **भव्य-जीव** = जो जीव अपने भव्य-स्वभाव के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा मोक्षादि पर्यायरूप (अवस्थारूप) परिणत हो सकता हो, उसे भव्य जीव कहते है । तथा इससे विपरीत लक्षणवाला जीव, अभव्य होता है ।

113. **आत्म-कल्याण** = जीवका रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष-मार्ग मे लगना ही आत्मकल्याण है ।

***औदारिक-देह** = मनुष्य गति और तिर्यंचगति के जीवो का जो शरीर होता है उसे औदारिक देह कहते है ।

114 **अनाथनाथ** = जो अनाथो के नाथ है, वे अनाथनाथ है ।

115 **परिग्रह** = "परि आ समन्तात् आत्मान गृह्णातीति परिग्रह " इस व्युत्पत्ति के अनुसार, जो आत्मा को चारो ओर से ग्रहण करे, ससार मे जकड़ के रखे उसे परिग्रह कहते है । अथवा "मूर्च्छा परिग्रह " अर्थात् आत्मा का मूर्च्छा-भाव (कषाय सस्कारित तीव्र इच्छा आदि का भाव) ही परिग्रह है । परिग्रह दो प्रकार का है 1 अन्तरग परिग्रह 2 बहिरग परिग्रह । अन्तरग परिग्रह भी चौदह प्रकारका है– 1 मिथ्यात्व (उल्टी-श्रद्धा), 2 क्रोध 3 मान (अहकार) 4 माया (कुटिलता) 5 लोभ (आशा) 6 हास्य (हसना) 7 रति (रागभाव) 8 अरति (द्वेष-भाव) 9 शोक (दु ख) 10 भय 11 जुगुप्सा (ग्लानि) 12 स्त्रीवेद (पुरुष की इच्छा) 13 पुरुष-वेद (स्त्री की इच्छा) 14 नपुसक वेद (स्त्री-पुरुष दोनो की इच्छा) । बहिरग परिग्रह दस प्रकार का होता है । 1 क्षेत्र (खेत) 2 वास्तु (घर) 3 हिरण्य (चादी) 4 सुवर्ण (सोना) 5 धन (गाय-भैस आदि) 6 धान्य (चावल-गेहूँ) 7 दासी (नौकरानी) 8 दास (नौकर) 9 कुप्य (वस्त्र) 10 भाण्ड (बर्तन) । इस प्रकार सब मिलकर परिग्रह चौबीस प्रकार का होता है । इनके निमित्त से आत्मा के भीतर जो अहकार ममकारादि भाव पैदा होते है इन भावो को ही 'मूर्च्छा' कहा है और यही परिग्रह है ।

116. चेतनाचेतन-परिग्रह = चेतन अर्थात् जीव अचेतन अर्थात् जड़। जीव-पदार्थ और जड़-पदार्थ का परिग्रह ही चेतनाचेतन-परिग्रह है।

117. श्रुतजलधि = जिनागम के ज्ञान को श्रुत कहा है। उस श्रुत-जलधि को अर्थात् श्रुत-समुद्र को जो धारण करते है वे श्रुत-जलधि है।

118. प्रमत्त = जो आत्मा को कसे/दु ख दे, उसे कषाय कहते है। ऐसे कषाय के तीव्रोदय के वश से जब आत्मा मे सक्लेश-भाव पैदा होता है वह सक्लेश-भाव प्रशस्त हो या अप्रशस्त तब आत्मा अपने स्वरूप मे न जागता हुआ कषाय भावो का सवेदक रहता है। ऐसी अवस्था का नाम प्रमत्त-अवस्था है। इसे प्रमत्त भी कह सकते है तथा सराग भी।

119 अप्रमत्त = जो आत्मा कषाय-मन्दता के कारण से प्रशस्त और अप्रशस्त सक्लेश भावो का सवेदक न होता हुआ अपनी आत्मा मे ही जाग्रत रहता है, वह उसकी अप्रमत्त-अवस्था है। अप्रमत्त-अवस्था को ही वीतराग-अवस्था कहा जा सकता है क्योकि वीतराग-अवस्था मे कषाय-भावो का सवेदन नही रहता।

120 यक्षराक्षस-देवगण = व्यन्तर-जाति-देवो के प्रकार।

121 समर्चित = पूजित, समाराधित्।

122 सम्यग्ज्ञान = पदार्थो के सच्चे स्वरूप को समस्त-दोषो से रहित जाननेवाला ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

123 तत्त्व = जो पदार्थ जिस स्वरूप मे विद्यमान है उसका उसी रूप मे होना तत्त्व कहलाता है।

124 जिनागम = जिनेन्द्र भगवान ने भव्य जीवो के आत्म कल्याणार्थ जो परमार्थ-तत्त्वो का उपदेश दिया है वह गुरु परम्परा से आज भी उपलब्ध है। उसी परम्परागत जिनवाणी को ही जिनागम कहते है।

125 यथागम = जैसा आगम है वैसा अर्थात् जिनागम के अनुसार।

126. सम्यक्चारित्र = जिन कार्यों को करने से आत्मा को कर्म-बन्ध होता है उन कार्यों को न करना सम्यक्चरित्र कहलाता है । इसके दो भेद है 1 व्यवहार-सम्यक्चारित्र और 2 निश्चय सम्यक्चारित्र । बुरे पच पापरूप कार्यों को करने से आत्मा को पाप कर्म का बन्ध होता है । उन पच पापो से बचना चाहिए और व्यवहार सम्यक्चारित्र मे लगना चाहिये । हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पच पाप है । तथा अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाच व्यवहार सम्यक्चारित्र है । पच पापो का त्याग किये बिना आत्म-ध्यान करना असभव है । और आत्म-ध्यान के बिना निश्चय-सम्यक्चारित्र को (आत्मानुभूति) को पाना असभव है । वीतराग-आत्मानुभूति को निश्चय-सम्यक्चारित्र कहते है ।

127 आगम-ज्ञान = सर्वज्ञ-देव, अरहन्त-प्रभुने ससारी प्राणियो के हितार्थ, षड्द्रव्य, पच अस्तिकाय, नव पदार्थ, सप्त-तत्त्व का जो उपदेश दिया है उसको आगम कहते है । उसका ज्ञान ही आगम-ज्ञान है ।

128. शास्त्रज्ञ = आगम-शास्त्रो के ज्ञाता-पुरुष को शास्त्रज्ञ कहते है ।

129 विचक्षण = जो अपनी विशेष बुद्धिमत्ता के द्वारा कुशल एव चतुर हो ।

130 अन्त करना = नाश करना ।

131 विहीन = रहित ।

132 स्तोक मति-सस्तोता= स्तोक अर्थात् अल्प । मति अर्थात् बुद्धि । स्तोता अर्थात् स्तुति करने वाला। अल्प बुद्धि होकर भी स्तुति करने वाला स्तावक ।

133 गुरु-सम-सयम-विभव= गुरु-सदृश-सयम अर्थात् चारित्रका वैभव ही गुरु-सम-सयम-विभव है।

134 सयम-विभव = सम्यक्चारित्र का वैभव या धन ।

135 आराध्य-आयतन-अवस्था = उपास्य अवस्था को प्राप्त होना ।

136 अबुध-बुध = मूर्खो का मुखिया अथवा मूर्ख शिरोमणि । गोबर गणेश ।

137 **खोटा-विभव** = खोटा सयम का वैभव अर्थात् मिथ्या चारित्र ।

138. **सस्तोता** = अच्छी तरह स्तुति करने वाला ।

139 **अक्षय का कारण** = अक्षय सुख का कारण अर्थात् मोक्ष का कारण ।

140 **मोक्ष** = आत्मा की वह अवस्था जिसमे द्रव्य-कर्म नही अर्थात् पुद्गलरूप जड़रूप, पाप और पुण्य कर्मों का अस्तित्व नही, भाव-कर्म नही अर्थात् राग द्वेषादिरूप परिणामो की उत्पत्ति नही, नो-कर्म नही अर्थात् देह का कोई सम्बन्ध ही नही अर्थात् देह-रहित, समस्त-कर्म-रहित। विकारी परिणाम-रहित अवस्था ही मोक्ष है ।

141 **औपचारिकता** = एक मे दूसरे की आरोपकता का भाव या व्यवहारिकता का भाव औपचारिकता है । अर्थात् कारण मे कार्य का उपचार करना, औपचारिकता कहलाती है । जैसे, सयम अक्षय-सुख (मोक्ष) का कारण होने से सयम को अक्षय-सुख या मोक्ष कहना यह औपचारिक कथन है । यहाँ सयम कारण है और अक्षय-सुख (मोक्ष) कार्य ।

142 **अबुध-सस्तुत** = बुद्धि हीनो के द्वारा आराधित या पूजित ।

143 **अबुध-समाराधित** = मूर्ख जनो के द्वारा सेवित ।

144 **सरागात्मा** = आत्मा की वह अवस्था जिस समय वह राग-द्वेष आदि परिणामो मे तन्मय रहता है । (यह अवस्था निरन्तर अबाधरूप से प्रथम गुणस्थान से लेकर छट्टे तक होती है, आगे सप्तम से वीतराग-अवस्था होती है)

145 **वीतराग-सम्यग्ज्ञान** = ज्ञान की वह परिणति जिस परिणति मे राग का कोई सद्भाव नही और आत्मा तथा ज्ञान सराग नही अर्थात् वीतराग-पर्याय-परिणत-ज्ञान ही वीतराग सम्यग्ज्ञान है ।

146 **सराग-सम्यग्ज्ञान** = राग-पर्याय-परिणत-ज्ञान ही सरागसम्यग्ज्ञान है । पर्याय अर्थात् अवस्था, सराग अर्थात् राग से सहित ।

147. रागेन्द्र = राग का अधिपति या स्वामी । अर्थात् असयम ।

148 सुधियो के सुधि = विद्वानो के विद्वान । महा विद्वान । महापण्डित ।

149 शुद्धात्मा = कषाय-भावो को छोड़ने से ही आत्म शुद्धि होती है ऐसी आत्मशुद्धि से युक्त आत्मा को शुद्धात्मा कहते है ।

150 विपश्चित् = बुद्धिमान, ज्ञानी ।

151 ज्ञान सागराभावविभव = आचार्य गुरुवर श्री ज्ञान सागर जी की समाधि के पश्चात् के साक्षात् निधि या वैभव । अर्थात् उनके परम शिष्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज ।

152. सयम-प्रधान = जो सयम मे प्रधान अर्थात् श्रेष्ठ हो, वे सयम-प्रधान है ।

153 निर्मल-सयम = मल अर्थात् दोष । निर्मल अर्थात् दोष रहित । जिनका सयम समस्त दोषो से रहित हो वह निर्मल-सयम है ।

154 यतिवर = यतियो मे श्रेष्ठ अथवा श्रमणो मे श्रेष्ठ । याने श्रेष्ठ साधु या मुनिवर ।

155 आत्मिक-अनन्त-गुण = आत्मा के अनन्त-गुण ।

156 विद्या-विधायक-सयम = जिनकी सयम रूप चर्या को देखने से विद्या अर्थात् आगम का ज्ञान स्वयमेव प्राप्त होता हो वही विद्या-विधायक-सयम है ।

157 विश्रुति-विभव = जिनकी विश्रुति अर्थात् ख्याति सारे ससार मे व्याप्त हो वे विश्रुति-विभव है ।

158 सयम-पोषक-निधान = जिस आत्मा के सारे सद्गुण सयम के सपोषक हुये हो वे सयम-पोषक-निधान कहलाते है ।

159 परमार्थ की परम-मूर्ति= सहजरूप से जो परमार्थ की उपासना मे निरत रहते है वे मुनिवर परमार्थ की परम-मूर्ति है ।

160 उत्तम-क्षमादि-दश-धर्म = 1 उत्तम क्षमा (क्रोध का त्याग) 2 उत्तम-मार्दव (अहकार का त्याग) 3 उत्तम-आर्जव (कुटिलता का त्याग) 4 उत्तम शौच (लोभ

का त्याग) 5 उतम सत्य (असत्य मात्र का त्याग) 6 उत्तम-सयम (असयम मात्र का त्याग) 7 उत्तम तप (बाह्य और आभ्यन्तर बारह प्रकार के दुर्द्धर तपो का धारण) 8 उत्तम -त्याग (समस्त भोग और उपभोग की सामग्री तथा इच्छाओ का त्याग) 9 उत्तम-आकिञ्चन्य (त्याग करने को अब कुछ भी न बचे ऐसी अवस्था) 10 उत्तम-ब्रह्मचर्य (निरन्तर निज मे रमण) । ये उत्तम-दश-धर्म आत्मा के स्वभावस्वरूप उत्तम गुण है ।

161 द्रव्य-सयम = षट् कायिक जीवो की रक्षा करना तथा पाच इन्द्रिय और एक मन को वश करना द्रव्य-सयम कहलाता है । जीव छह प्रकार के होते है 1 पृथ्वी 2 जल 3 अग्नि 4 वायु 5 वनस्पति 6 त्रस (अर्थात् जो अपनी रक्षा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है वह त्रस-जीव है । वे चार प्रकार के है । द्वीन्द्रिय-जीव (लट आदि) 2 त्रीन्द्रिय-जीव (खटमल चीटी आदि) 3 चतुरिन्द्रिय-जीव (मक्खी, भ्रमर इत्यादि) 4 पचेन्द्रिय-जीव (हाथी सर्प-पक्षी-मनुष्य-देव-नारकी इत्यादि) ये सब त्रस-जीव कहलाते है । इन्द्रियाँ पाच होती है– 1 स्पर्शेन्द्रिय (शीत-उष्णादिका ज्ञान जिससे होता हो) 2 रसनेन्द्रिय (जिससे रस का ज्ञान होता हो) 3 घ्राणेन्द्रिय (जिससे सुगन्ध और दुर्गन्ध का ज्ञान होता हो) 4 चक्षु इन्द्रिय (जिससे वर्ण का ज्ञान होता हो) 5 कर्णेन्द्रिय (जिससे शब्द का ज्ञान होता हो) 6 मन (जिससे हेयोपादेय अर्थात् छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य आदि का ज्ञान होता हो)

162 भाव सयम = द्रव्य-सयम के बिना भाव-सयम की प्राप्ति नही होती, अत द्रव्य-सयम को धारण करके आत्म-विशुद्धि-पूर्वक निजात्मा मे रमण करते हुये उसी मे स्थिरता पाने का नाम भाव-सयम है ।

163 प्रचण्ड धर्म सपोषक सहज सयम = जिनका सयम उत्तम क्षमादि धर्मों को अत्यन्त सहजरूप से सपोषित करता है उनका वह सयम, प्रचण्ड धर्म सपोषक सहज-सयम कहलाता है ।

164. परम-निस्पृह = ससार की समस्त आकाक्षाओ के जाल से मुक्त, परम-सतुष्टि को धारण

करने वाला, सदा विरक्त, हमेशा कर्म-बन्ध के कार्यों से बचनेवाला उदास साधु, या अत्यन्त तीव्र वैरागी-श्रमण अथवा ज्ञान-ध्यान-तप ही जिनका कर्तव्य होने से आत्म-रसिक साधु, परम निस्पृह कहलाता है।

165 **आत्म स्वाधीन स्वतन्त्र-चर्या की दशा का सौभाग्य =** जिस साधु की मन-वचन काय की समस्त चेष्टाये अत्यन्त स्वाधीन हो, उस साधु की चर्या ही स्वतन्त्र चर्या होती है। चर्या स्वतन्त्र होने से साधु का सयम अत्यन्त ही निर्मलता से पलता है । अत चर्या की स्वतन्त्रता को प्राप्त साधु अत्यन्त भाग्यवान होता है।

166 **सुकृतवाला =** पुण्यवान या भाग्यवान । अथवा जिसने अच्छे कर्म किये हुये हो वह व्यक्ति।

167. **शिक्षा =** शिक्षण पाना, नम्रता या विनय को प्राप्त करना या जीवन को उन्नत बनाने की कला को शिक्षा कहते है ।

168 **दीक्षा =** समस्तता का त्याग करना या सन्यास लेना ।

169 **गण-पोषण =** गण (सघ) की अभिवृद्धि करना शिष्यो की सख्या को बढ़ाना ।

170 **प्रायश्चित्त =** व्रतो मे दोष उत्पन्न होने पर आत्म-शुद्धि के लिए दण्ड स्वीकृति ।

171. **व्यवहार- अधिष्ठाता =** यतियो के व्यवहार-धर्म निर्वाहक अथवा सरक्षक आचार्य-देव, व्यवहार-अधिष्ठाता है ।

172 **व्यवहार धर्म निर्वाहक =** भव्य जीवो के आत्म-कल्याण के लिए दीक्षा, शिक्षा, गण-पोषण प्रायश्चित्त आदि व्यवहार-धर्म के अधिष्ठाता ही व्यवहार-धर्म-निर्वाहक है।

173 **अहित-नाशक =** ससार के समस्त अहितो का नाश करने वाले एव मङ्गल को बढ़ाने वाले।

174 **अमङ्गल कारक =** जो ससार मे दु ख, अशान्ति, हिसा और पाप को बढ़ाता हो वही अमङ्गल कारक है । इसी का दूसरा नाम अहित-कारक है ।

175. **अनिष्ट-हारक =** जो अमङ्गल है वही अनिष्ट है और जो अनिष्ट है वही ससार के

लिए अमङ्गल है। इस अमङ्गल को हरण करने वाले साधु-विशेष को अनिष्ट-हारक कहा है।

176. **श्रुति-विनाशक** = श्रुति को नाश-करने वाले अर्थात् कानो के लिए अप्रिय अर्थात् कटुक/कठोर शब्द ही श्रुति विनाशक है।

177 **निन्द्य** = निन्दा करने योग्य अप्रशसनीय।

178 **अप्रशस्तता** = अशुभता, अप्रशसनीयता।

179 **अमङ्गलकारी** = अमङ्गल को उत्पन्न करने वाला।

180 **राक्षस और मेघ व्यवहार-वाहक-शब्द** = राक्षस और मेघ अर्थात् बादलो की गर्जना और इनके व्यवहार की यहाँ तुलना की गई है। ऐसे शब्द और व्यवहार को ही, 'राक्षस-मेघ-व्यवहार-वाहक-शब्द' कहा है।

181 **रौद्र-स्वभाव** = भयकर, भय को उत्पन्न करने वाला। अशान्ति, दुख और हिसा की प्रकृति से आपूरित स्वभाव।

182 **कटुक** = कठोर, कड़वा, अमधुर।

183 **विनि सृत शब्द निचय** = गुरु के मुख से निकले शब्द समूह अर्थात् गुरु के मुख से निकली हुई वाणी-याने गुरुवाणी।

184 **माङ्गलिक** = मङ्गलकारक, शुभ, पुण्य-वर्द्धक, कल्याण कारक।

185 **रत्नत्रय-स्वरूप -आत्म-धर्म** = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान•और सम्यक् चारित्र को रत्नत्रय कहते है। इस रत्नत्रय को धारण करने से हर आत्मा परमात्मा बन सकता है। यह रत्नत्रय, आत्म कल्याण का साधन होने से आत्म-धर्म है।

186 **शब्द-राशि** = शब्दो का समूह, वचन वर्गणा, शब्दकोश।

187 **लोकालोकप्रकाशक-केवल-ज्ञान** = ज्ञान आत्मा का गुण है, जानना उसका स्वभाव है। जिस ज्ञान-विशेष के भीतर लोक और अलोक के समस्त पदार्थ युगपत् (एक साथ) प्रकाशित होते हो, उस ज्ञान को 'लोकालोक-प्रकाशक-केवल-ज्ञान' कहा है।

(इस प्रकार पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या समाप्त हुई)
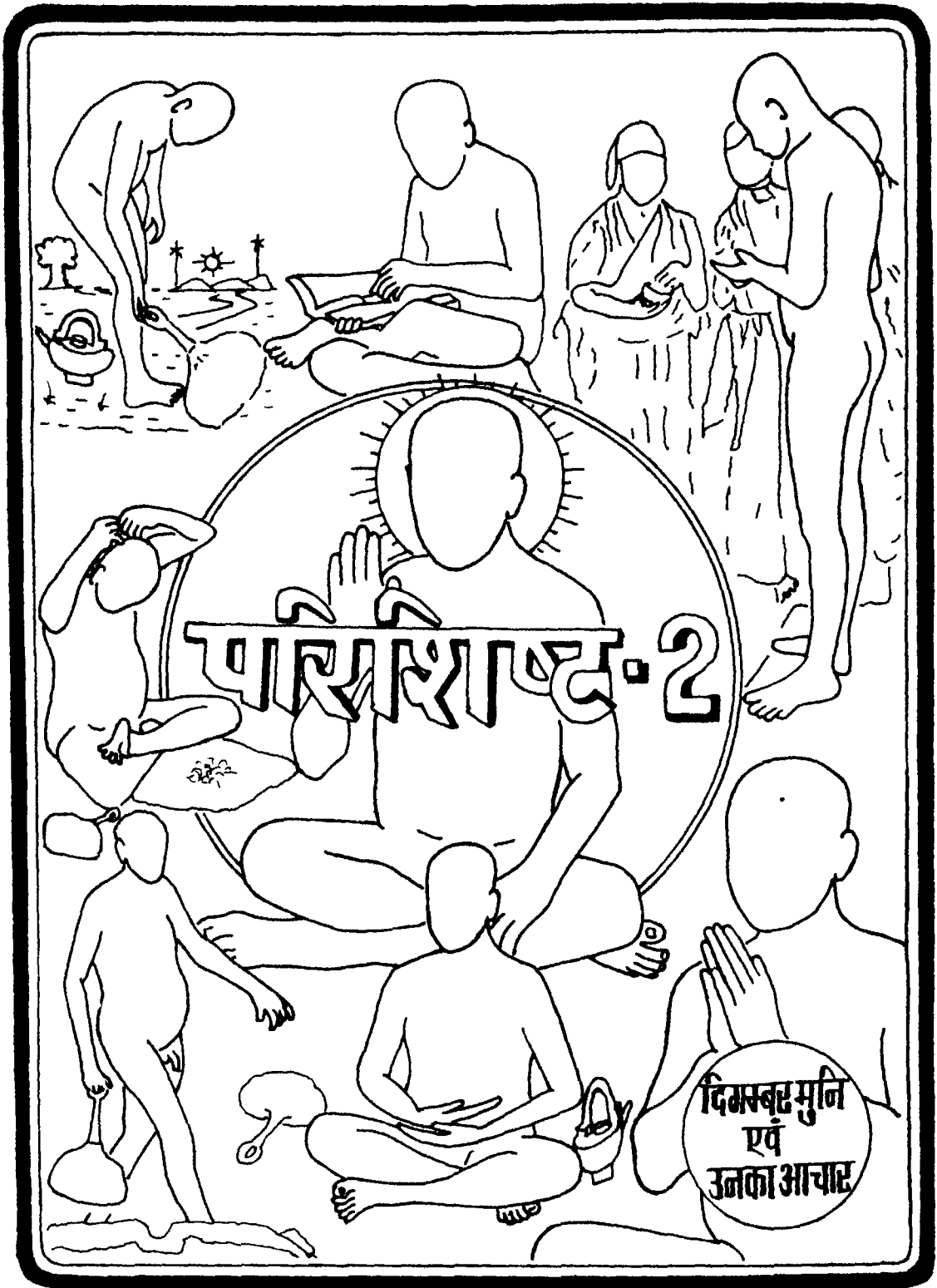
परिशिष्ट-2
दिगम्बर मुनि
एवं
उनका आचार

दिगम्बर मुनि और उनका आचरण

धर्म और दर्शन मानव जीवन के लिये आवश्यक ही नही अपितु अनिवार्य है। जब मानव चिन्तन-सागर मे निमग्न होता है तब दर्शन की और जब उस चिन्तन का अपने जीवन मे उपयोग करता है, तब धर्म की उत्पत्ति होती है। मानव जीवन की विभिन्न समस्याओ के समाधान हेतु धर्म और दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म और दर्शन परस्पर मे सापेक्ष है, एक दूसरे के पूरक है। चिन्तको ने धर्म मे समीचीन बुद्धि, भावना और क्रिया, ये तीन तत्व माने है। बुद्धि से ज्ञान, भावना से श्रद्धा और क्रिया से आचार अपेक्षित है। जैन दृष्टि मे इन्ही को सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र कहा जाता है। धर्म-दर्शन का विषय सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्धित है। विश्व के किसी भी प्रदेश का मानव इन दोनो के अभाव मे अपनी समस्याओ का समाधान प्राप्त नही कर सकता, और न जीवन को गतिशील ही बना सकता है। भौतिकता से ऊबकर विश्व का प्रत्येक मानव आध्यात्मिकता की शरण मे पहुँचता है और धर्म-दर्शन के आश्रय मे ही उसे शान्ति-लाभ होता है। दर्शन, मानव की अनुभूतियो की तर्क पुरस्सर व्याख्या कर सम्पूर्ण विश्व के आधार भूत सिद्धान्तो का अन्वेषण करता है। धर्म आध्यात्मिक मूल्यो द्वारा सम्पूर्ण विश्व का विवेचन करता है। जीव के विविध मूल्यो का निर्धारण और उनकी उपलब्धि का साधन धर्म दर्शन ही है। यह दोनो मानवीय ज्ञान की योग्यता मे, यथार्थ मे तथा चरमोपलब्धि मे विश्वास करते है। दर्शन मे बौद्धिकता की आवश्यकता है तो धर्म मे आध्यात्मिकता की।

ऐतिहासिक दृष्टि से धर्म-दर्शन एव श्रमणो की उत्पत्ति का पता लगाना असम्भव है। जैन श्रमणो का अस्तित्व वैदिककाल के पूर्व से विद्यमान है। चूकि इतिहास इस परम्परा के मूल तक नही पहुँच पाया है। उपलब्ध पुरातत्व-सम्बन्धी तथ्यो के निष्पक्ष विश्लेषण से यह निर्विवाद सिद्ध हो गया है कि श्रमण परम्परा अनादिकालीन है। वर्तमान कल्पकाल मे चौबीस तीर्थंकर हुए है, जिनमे अन्तिम तीर्थंकर महावीर है। इनके पूर्व धर्म-देशना के व्याख्याता तेईस तीर्थकर और हो चुके है। इन सभी ने श्रमण वेष धारण कर मुक्ति-साधना एव प्रकृति के विभिन्न रहस्यो की व्याख्याये की है और मानव-जीवन को सुन्दर, सरस मधुर एव व्यवस्थित बनाने का उपदेश दिया है और यही परम्परा विच्छिन्न होते हुये समता और अहिसामय धर्म की व्याख्या करती है। व्यक्ति

की सत्ता, स्वाधीनता और सह-असतित्त्व की भावना का प्रवर्तन श्रमणो द्वारा ही होता है । सहिष्णुता, उदारता और धैर्य के सन्तुलन के साथ वैज्ञानिक सत्यान्वेषण की परम्परा का प्रादुर्भाव भी श्रमणो द्वारा ही सम्भव है । जैन श्रमण परम्परावादी या रूढ़िवादी नही होते । उनकी चिन्तन– पद्धति, सहिष्णु, क्रान्तिनिष्ठ और प्रगतिशील होती है । जैन श्रमण नर में नारायण की शक्ति निहित होने का ज्ञान कराते है और व्यक्ति को परमात्मा बनने की प्रेरणा देते है । जैन श्रमणो ने मानव-जीवन की प्रत्येक क्रिया को अहिसा के मापदण्ड द्वारा मापा है । जो क्रिया अहिसा मूलक है, रागद्वेष और प्रमाद से रहित है वह सम्यक् है तथा जो हिसामूलक है वह मिथ्या है ।

श्रमण आत्म कल्याण और समाजोत्थान दोनो ही दृष्टियो से उपयोगी है । मुनि-आचार, पुरुषार्थ मार्ग का द्योतक है । मुनि परम पुरुषार्थ के हेतु ही निर्ग्रन्थ पद धारण करते है । वे विमल-स्वभाव की प्राप्ति हेतु अतरग और बहिरग दोनो प्रकार के परिग्रह का त्याग करते है । वास्तव मे दिगम्बर वेष आकिचन्य की पराकाष्ठा है और है अहिसा की आधारशिला । कषाय और वासना से हिसक-परिणति होती है तथा आकिचन्यत्व न स्वीकार करने पर अहकार का उदय होकर अहिसा धर्म की उच्चकोटि की परिपालना मे विक्षेप उत्पन्न हो सकता है । अतएव मुनि के लिये दिगम्बर वेष परमावश्यक है निर्ग्रन्थत्व के कारण ही मुनि कचन और कामिनी इन दोनो वस्तुओ का त्याग कर मोह रूपी अधकार का उपशमन करते है। अतएव यहॉ सक्षेप मे दिगम्बर मुनि के आचार की सक्षिप्त विधि प्रस्तुत है–

मुनि के अट्ठाईस मूलगुण होते है । इन मूल-गुणो का भली प्रकार पालन करते हुये मुनि आत्मोत्थान मे प्रवृत्त होते है ।

पच महाव्रत :–

हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का मन, वचन, काय और कृत-कारित, अनुमोदना से त्याग करना ही पचमहाव्रत है ।

मुनि, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक और त्रसकायिक (दो इन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक) इन षट्काय जीवो का घात नही करते हुए, राग-द्वेष, काम-क्रोधादि विकारो को उत्पन्न नही होने देते इस प्रकार अहिसा महाव्रत का पालन करते है ।

प्राणो पर सकट आने पर भी असत्य भाषण नही करते और सत्य महाव्रत का पालन करते है ।

किसी की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण नही करते अत अचौर्य महाव्रत का पालन करते है ।

पूर्णरूपेण शील का पालन करते है । प्रत्येक स्त्री को माता-बहिन के समान देखते है । इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करते है । अतरग और बहिरग सभी प्रकार के परिग्रहो का त्याग करके अपरिग्रह महाव्रत का पालन करते है । शौच-क्रिया एव शुद्धि आदि के लिये काष्ठ का कमण्डलु और प्राणीरक्षा के लिये सयम की प्रतीक, मोर के पखो की पिच्छिका ग्रहण करते है ।

पाँच समीतियाँः-

सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहते है । ये पॉच प्रकार की होती है– ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन ।

1 ईर्या की समिति **ईर्यासमिति** है अर्थात् आलस्य से रहित होकर चार हाथ आगे की जमीन देखते हुए गमन-आगमन आदि करना ।

2 भाषा की समिति भाषा समिति है अर्थात् शास्त्र और धर्म से अविरूद्ध पूर्वापर (प्रत्यक्ष-परोक्ष) विवेक सहित निष्ठुर आदि वचन न बोलना ।

३ एषणा, आहार की समिति **एषणा समिति** है अर्थात् लोक-निन्दा से रहित विशुद्ध आहार का ग्रहण करना ।

4 आदान और निक्षेप की समिति **आदान निक्षेपण समिति** है अर्थात् नेत्र से देखकर और पिच्छिका से परिमार्जित करके यत्नपूर्वक किसी वस्तु को उठाना और रखना ।

५ प्रतिष्ठापन की समिति **प्रतिष्ठापन समिति** है अर्थात् जन्तु से रहित प्रदेश मे सम्यक् प्रकार से देखकर मल-मूत्र आदि का त्याग करना ।

इस प्रकार प्रमाद त्याग के हेतु भूत पॉच समितियो का मुनि पालन करते है ।

पंचेन्द्रिय निग्रह –

पचेन्द्रिय सम्बन्धी लुभावने विषयो से राग एव बुरे लगने वाले विषयो से द्वेष नही करते एव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँचो इन्द्रियो को वश मे रखते है ।

षडावश्यक-

जो वश मे नही वह अवश है, अवश के कार्य आवश्यक है । ये आवश्यक छ है । जिन्हे मुनि दृढ़ता के साथ पालन करते है– सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ।

सामायिक अर्थात् समस्त परिस्थितियो मे समता भाव रखना । त्रिकाल सामायिक करते है। तीर्थंकरो की स्तुति करते है । उन्हे नमस्कार कर उनकी वन्दना करते है । प्रमाद से लगे हुए दोषो का शोधन करने रूप प्रतिक्रमण करते है । भविष्य मे लगने वाले दोषो का परिहार करने के लिए मन, वचन, काय से योग्य विषयो का त्याग प्रत्याख्यान है । तप की वृद्धि अथवा कर्मो की निर्जरा के लिए कायोत्सर्ग करते है । खड़े होकर दोनो भुजाओ को नीचे की ओर लटकाकर, पैर के दोनो पजो को एक सीध मे चार अगुल के अतराल से रखकर आत्मध्यान मे लीन होना कायोत्सर्ग है ।

शेष सात गुण :-

स्नान नही करना, दन्त- घर्षण नही करना, पृथ्वी पर शयन करना (शीत, गर्मी, बरसात सभी ऋतु में), खड़े होकर दोनो हाथ से अजुलि बनाकर, उसमे से आहार करना, दिन मे एक बार भोजन करना, नग्न रहना और केश-लुञ्च करना ।

मुनि इसके अतिरिक्त बाईस प्रकार के परीषहो को भी सहन करते है । आहार के दौरान बत्तीस प्रकार के अन्तराय को टाल कर आहार करते है । अतराय आने पर दुबारा अगले चौबीस घटे तक जल आदि भी ग्रहण नही करते है ।

मुनियो द्वारा सहन किये जाने वाले बाईस परीषह निम्न है–

1 **क्षुधा** – भूख के दुख को शान्त भाव से सह लेना ।

2 **तृषा** – पिपासा (प्यास) रूपी अग्नि को धर्मरूपी जल से शात करना ।

3 **शीत** – शीत की वेदना को शान्त भावो से सहन करना ।

4 **उष्ण** – गर्मी की वेदना को शान्त भावो से सहन करना ।

5 **दशमशक** – डाश, मच्छर, बिच्छू, चीटी आदि के काटने से हुई वेदना को शात भावो से सहना ।

6. **नाग्न्य** – नग्न रहते हुए भी मन मे किसी प्रकार का विकार नही करना ।

7. **अरति** – अप्रीति के कारण उपस्थित होने पर भी सयम मे अप्रीति नही करना ।

8. **स्त्री** – स्त्रियों के हाव-भाव, प्रदर्शन आदि उपद्रवो को शात भाव से सहना । उन्हे देखकर मोहित नही होना ।

9. **चर्या** – मार्ग मे गमन करते समय खेदखिन्न नही होना ।

10 **निषद्या** – ध्यान के लिए नियमित काल पर्यंत स्वीकार किये हुये आसन से च्युत नही होना ।

11. **शय्या** – विषम, कठोर, ककरीले आदि स्थानो मे एक करवट से निद्रा लेना और अनेक उपसर्ग आने पर भी शरीर को चलायमान नही करना ।

12 **आक्रोश** – दुष्ट जीवो के द्वारा कहे हुए कठोर शब्दो को शात भाव से सहना ।

13 **वध** – तलवार आदि के द्वारा प्रहार करने वालो से भी द्वेष नही करना ।

14 **याचना** – प्राणो के वियोग का अवसर होने पर भी आहार आदि को नही मागना ।

15 **अलाभ** – भिक्षा प्राप्त न होने पर सतोष धारण करना ।

16. **रोग** – अनेक रोग होने पर भी उनकी वेदना को शान्त भावो से सह लेना ।

17. **तृण स्पर्श** –चलते समय पाव मे तृण कण्टक वगैरह के चुभ जाने से उत्पन्न हुये दुख को सह लेना ।

18. **मलपरिषहजय**–जलकायिक-जीवो की हिसा से बचने के लिये स्नान न करना तथा अपने मलिन शरीर को देखकर ग्लानि नही करना ।

19. **सत्कार पुरस्कार**–अपने मे गुणो की अधिकता होने पर भी यदि कोई सत्कार पुरस्कार न करे तो चित्त मे कलुषता न करना । सम्मान को सत्कार कहते है और कोई कार्य करते समय प्रधान बना लेना यह पुरस्कार है ।

20. **प्रज्ञा** – ज्ञान की अधिकता होने पर भी मान नही करना ।

21. **अज्ञान** – ज्ञानादिक की हीनता होने पर लोगो के द्वारा किये हुए तिरस्कार को शान्त भावो से सहना ।

22. **अदर्शन** – बहुत समय तक कठोर तपश्चर्या करने पर भी मुझे अवधिज्ञान तथा चारण आदि ऋद्धियो की प्राप्ति नही हुई इसलिए व्रत धारण करना व्यर्थ है, इस प्रकार अश्रद्धा के भाव नही होना ।

इन बाईस परीषहो को सक्लेशरहित भावो से जीतकर मुनि महाराज कर्मों का सवर एव निर्जरा करते है ।

मुनि कष्ट आने पर सभी प्रकार के उपसर्गों को भी शातिपूर्वक सहते है । उनके लिये शत्रु-मित्र, महल-श्मशान, कचन-काच, निन्दा-स्तुति, सब समान है । यदि कोई उनकी पूजा करता है तो उसे भी आशीर्वाद देते है और यदि कोई तलवार से वार करता है तो उसे भी । उन्हे न किसी से राग होता है, न द्वेष । उस राग-द्वेष को दूर करने के लिये ही साधु, समता-भाव की उपासना करते है । नग्न रहने के कारण उनकी निर्विकारिता स्पष्ट प्रतीत होती है । वे विकार छिपाने के लिये न तो लगोटी ग्रहण करते है और न किसी प्रकार का सकोच । आतरिक विकारो का अभाव, नग्नता धारण करते ही हो जाता है।

साधु जीवन स्वाभाविक रहता है । किसी भी प्रकार का आडम्बर उनके पास नही रहता। सिर, दाढ़ी और मूछो को केशो को द्वितीय से चतुर्थ महीने के अन्तराल मे अपने हाथ से उखाड़ डालते है ।

इस तरह जैन धर्म मे साधु को बिल्कुल निरपेक्ष रखने का ही प्रयत्न किया गया है । फिर भी मुनि को शरीर बनाये रखने के लिये भोजन की आवश्यकता होती है उसके लिये उन्हे गृहस्थो के घर जाना पड़ता है । वहाँ जाकर भी वे किसी से कुछ मागते नही है । केवल आहार के समय वे गृहस्थो के घर के सामने से निकलते है । उस समय यदि गृहस्थ शुद्ध भोजन तैयार कर द्वार पर उनकी प्रतीक्षा करते हुए कहते है कि– हे स्वामी अत्र तिष्ठ-तिष्ठ (आईये-यहाँ ठहरिये-ठहरिये) आदि ऐसे शब्द उच्चारण करने पर वे ठहर जाते है । तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हे गृह मे ले जाकर, श्रावक, ऊँचे आसन पर बैठाते है फिर पूजानमस्कार आदि करते है । फिर, मन-शुद्धि, वचन-शुद्धि, काय-शुद्धि और आहार-जल शुद्ध है कहकर, इस तरह नवधा-भक्ति करते है । इस नवधा भक्ति से ही साधु गृहस्थ की श्रद्धा, भक्ति, शुद्धि, कर्त्तव्य, प्रसन्नता और अवज्ञा

आदि की पहचान करते है । भोजनशाला मे दोनो हाथो को धोकर उनको आपस मे जोड़कर अजुलि बना लेते है और खड़े होकर अहार लेते है । गृहस्थ द्वारा जो भी आहार दिया जाता है उसे वे शरीर के अनुकूल होने पर ग्रहण करते है । आहार करते समय यदि आहार मे कोई जीव या बाल आदि दिखाई दे तो वही आहार लेना बन्द कर देते है और दूसरे दिन तक कुछ भी ग्रहण नही करते। इसे **अंतराय** कहते है । शास्त्रो मे इस प्रकार के 32 अतराय बताये गये है–

1 आहार करते समय, ऊपर से कौआ आदि बीट कर दे तो वह **'काक'** नामा अतराय है।

2 अशुद्ध या अपवित्र वस्तु से पैर लिप्त होने पर **'अमेध्य'** अतराय है ।

3 भोजन के समय वमन हो जावे तो **'छर्दि'** नामा अन्तराय है ।

4 कोई पुरुष या स्त्री चलते-चलते मुनि को रोक देवे (घेर लेवे या स्पर्श कर लेवें) तो वह **'रोधन'** नामा अतराय है ।

5 किसी व्यक्ति के शरीर से चार अगुल प्रमाण रूधिर (खून) व राध बहती दिखे तो **'रूधिर'** नामा अतराय है ।

6 दुख शोक आदि से साधु के अश्रुपात हो जावे अथवा निकटवर्ती लोगो के मरणादि का अतिरोदन, विलाप आदि सुनाई दे तो वह **'अश्रुपात'** नामा अतराय है ।

7 सिद्ध भक्ति करने के पश्चात् दाता के घर से यदि किसी प्रकार से साधु को विक्षेप हो जावे और भोजन के लिए अन्य घर मे जाना पड़े, तब घुटने के नीचे स्पर्श होने पर **'जान्वध '** नामा अतराय है।

8 साधु के पैरो द्वारा चढ़ी जाने वाली ऊँचाई की क्षमता से अधिक ऊँचे स्थान पर जाने का प्रसग आये तो **'जानु-परिव्यतिक्रम'** नामा अतराय है ।

9 गृह द्वार इतना छोटा हो कि नाभि से नीचे मस्तक झुकाना पड़े तो वह **'नाभ्यधोनिर्गमन'** नामा अतराय है।

10 नियम या यम रूप से त्यागी हुई वस्तु भक्षण मे आ जाये तो **'स्वप्रत्याख्यात-सेवन'** नामा अतराय है।

11 साधु के सामने कोई जीव को मार डाले तो वह **'जीव-वध'** नामा अन्तराय है ।

12 आहार करते समय यदि साधु से कोई काक आदि पक्षी ग्रास झपटकर ले जावे तो वह **'काकादि-पिड हरण'** नामा अतराय है ।

13 साधु के हाथ से ग्रास गिरने पर **'पाणि-पतन'** नामा अतराय है ।

14 साधु के हाथ मे कोई द्वीन्द्रियादि जीव आकर मर जावे तो वह **'पाणि-जतु-वध'** नामा अतराय है ।

15 मृतक पचेन्द्रिय शरीर अथवा किसी कारण से मासादि दिखाई दे तो वह **'मास-दर्शन'** नामा अतराय है ।

16 साधु के ऊपर मनुष्य, देव, तिर्यंचादि कृत उपसर्ग आ जावे तो वह **'उपसर्गनामा'** अन्तराय है ।

17 भोजन करते समय साधु के दोनो पैरो के बीच से कोई पचेन्द्रिय जीव निकल जावे तो वह **'पादान्तर जीव'** नामा अन्तराय है ।

18 दाता के हाथ से प्रमाद-पूर्वक भोजन जमीन पर गिर जाये वह **'भाजन-सपात'** नामा अतराय है ।

19 साधु के शरीर से रोगादि के कारण मल निकल जावे तो वह **'उच्चार'** नामा अतराय है ।

20 रोगादि के निमित्त से भोजन करते समय साधु के शरीर से मूत्र निकल जावे तो वह **'प्रस्रवण'** नामा अन्तराय है ।

21 भिक्षा को भ्रमण करते हुए मुनि का चाण्डालादि के घर प्रवेश हो जावे तो वह **'अभोज्य-गृह प्रवेशनामा'** अन्तराय है ।

22 मूर्च्छादि के कारण साधु का पतन (गिरना) हो जावे तो वह **'पतन'** नामा अतराय है ।

23 किसी कारण से भोजन करते-करते बैठ जावे तो वह **'उपवेशन'** नामा अतराय है ।

24 आहार को जाते समय कुत्ता आदि कोई जीव काट लेवे तो वह **'दशन'** नामा अतराय

है ।

25 भोजन के प्रारभ मे सिद्ध भक्ति के बाद, साधु के हाथ से भूमि का स्पर्श हो जावे तो वह **'भूमि-स्पर्श'** नामा अतराय है ।

26 साधु के कफ या थूक आ जावे तो वह **'निष्ठीवन'** नामा अतराय है ।

27 भोजन के समय पेट से कृमि (पेट के कीड़े) निकल आवे तो वह **'कृमि'** नामा अतराय है ।

28 बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करने पर **'अदत्त'** नामा अतराय है ।

29 भोजन के समय साधु के ऊपर खड्गादि का प्रहार होने पर वह **'प्रहार'** नामा अन्तराय है ।

30 ग्राम मे अग्नि लग जावे तो वह **'अग्निदाह'** नामा अतराय है ।

31 साधु स्वय अपने पैरो से कोई वस्तु उठावे तो वह **'पादग्रहण'** नामा अतराय है ।

32 साधु स्वय अपने हाथो से कोई वस्तु उठावे तो वह **'हस्तग्रहण'** नामा अतराय है ।

इस प्रकार भोजन-त्याग करने के बत्तीस अतराय कहे गये है । साधु भोजन केवल एक बार जीवन बिताने एव शरीर की स्थिति बनाये रखने के लिये ग्रहण करते है और जीवन सरक्षण का उद्देश्य केवल धर्मसाधना है । हाथ मे भोजन करने से अतराय होने पर भोजन का अनर्थ नही होता ।

मुनि-आचार का पालन करने के लिए गुप्ति, समिति, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र का पालन करना भी आवश्यक है । योगो का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है । शारीरिक क्रिया का नियमन् मौन धारण और सकल्प विकल्प से जीवन का सरक्षण ही क्रमश काय, वचन और मनोगुप्ति है ।

जब तक शरीर का सयोग है, तब तक क्रिया का होना आवश्यक है । मुनि गमनागमन भी करते है, आचार्य, उपाध्याय, साधु एव अन्य जनो से सम्भाषण भी करते हैं, भोजन भी लेते हैं । सयम और ज्ञान के साधनभूत पिच्छिका, कमण्डलु, और शास्त्रो का भी व्यवहार करते है इन सबके लिये पाँच तरह की समीतियो का पालन करते है ।

मुनि कर्मों के उन्मूलन और आत्म-स्वभाव की प्राप्ति के हेतु उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिचन्य और ब्रह्मचर्य का पालने करते हैं ।

ससार एव ससार के कारणो के प्रति विरक्त मन से धर्म के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न करना अनुप्रेक्षा है या पुन पुन चितन करना भी अनुप्रेक्षा है । साधु, ससार और ससार की अनित्यता के विषय मे आत्मशुद्धि के कारणभूत भिन्न-भिन्न साधनो के विषय मे चितन करते है । जिससे ससार के प्रति विरक्ति और धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होती है । अनुप्रेक्षाये बारह है– अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधि-दुर्लभ और धर्म अनुप्रेक्षा ।

इन अनुप्रेक्षाओ के चितन से वैराग्य मे वृद्धि होती है । ये अनुप्रेक्षाये माता के समान हितकारिणी और आत्म-आस्था को उद्बद्ध करने वाली है ।

सयमी व्यक्ति की कर्मों के निवारणार्थ जो अतरग और बहिरग प्रवृत्ति होती है वह चारित्र है । परिणामो की विशुद्धि के तारतम्य की अपेक्षा और निमित्त भेद से चारित्र के पॉच भेद है। मुनि पाचो प्रकार के चारित्र का पालन करते है ।

विषयो से मन को दूर करने के हेतु एव राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने के हेतु जिन-जिन उपायो के द्वारा शरीर, इन्द्रिय और मन को तपाया जाता है अर्थात् इन पर विजय प्राप्त की जाती है, वे सभी उपाय तप है । इसके दो भेद है– बाह्य तप एव आभ्यन्तर तप ।

बाह्य तप –

1. **अनशन**– सयम की वृद्धि के लिए चार प्रकार के आहार का त्याग करना ।
2. **अवमौदर्य**– राग भाव दूर करने के लिये भूख से कम भोजन करना ।
3. **वृत्तिपरिसख्यान**– भिक्षा को जाते समय घर,गली आदि का नियम करना ।
4. **रसपरित्याग**– इन्द्रियो का दमन करने के लिए घृत, दुग्धादि रसो का त्याग करना ।
5. **विविक्त शय्याशन**– स्वाध्याय, ध्यान आदि की सिद्धि के लिए एकात तथा पवित्र स्थान मे सोना और बैठना ।

6. **कायक्लेश**– शरीर से ममत्व न रखकर आतापन योग आदि धारण करना ।

आभ्यन्तर तप–

1. **प्रायश्चित्त**– प्रमाद अथवा अज्ञान से लगे हुए दोषो की शुद्धि करना ।
2. **विनय**– पूज्य पुरुषो का आदर करना ।
3. **वैयावृत्य**– रोगी मुनियो या सहधर्मियो की सेवा करना ।
4. **स्वाध्याय**– ज्ञान की भावना मे आलस्य नही करना ।
5. **व्युत्सर्ग**– बाह्य और आभ्यान्तर परिग्रह का त्याग करना ।
6. **ध्यान**– चित्त की चचलता को रोककर उसे किसी एक पदार्थ के चितवन मे लगाना ।

इस प्रकार जैन साधु अपने उत्कृष्ट त्याग, तप एव साधना से स्वय आत्मकल्याण करते है और इस पृथ्वी पर रहने वाले समस्त जीवो को शुद्ध-चर्या के द्वारा मौन-उपदेश देते है । सारी वसुधरा पर पैदल विचरण करते हुए स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र-भगवान द्वारा प्रणीत धर्म का उपदेश करते हुए इस ससार रूपी सागर से तरने का उपाय बताते है । अत यह साधु प्रत्येक मानव के मार्ग प्रदर्शक, पथ-बोधक एव आत्म कल्याणक है । चूकि इस अवस्था को सीधे प्राप्त करना दुर्लभ है । अत इन्ही मुनियो का अनुसरण करते हुए एव मुनि–चर्या का अभ्यास करने वाले, इनके अनेक शिष्य होते है जो ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी एव आर्यिका, क्षुल्लिका और ब्रह्मचारिणी के नाम से जाने जाते है । ऐलक, क्षुल्लक आदि मुनि की क्रियाओ का अभ्यास रूप पालन करते हुए क्रमश. दो कोपीन और दो कोपीन तथा दुपट्टा को धारण करते है और आर्यिका आदि भी सोलह हाथ लम्बी दो साड़ी मात्र को रखते हुये व्रतो का पालन करती है ।

मानव जीवन के उत्थान के हेतु धर्म और मुनि के समान आचार, अनिवार्य तत्व है । आचार और विचार परस्पर मे सम्बद्ध है । विचारो तथा आदर्शों का व्यवहारिक रूप आचार है । धर्म और आचार की आधारशिला नैतिकता है । वैयक्तिक और सामाजिक जीवन मे धर्म की प्रतिष्ठा भी नैतिकता के आधार पर होती है । धर्म और आचार भौतिक और शारीरिक मूल्यो तक ही सीमित नही है, अपितु इनका क्षेत्र आध्यात्मिक और मानसिक मूल्य भी है । ये दोनो ही आध्यात्मिक अनुभूति उत्पन्न करते है । आचार वही ग्राह्य है जो धर्ममूलक है तथा आध्यात्मिकता का विकास करता है । दर्शन का सम्बन्ध आचार और व्यवहार के साथ है । धर्म श्रद्धा पर अवलम्बित है

और दर्शन हेतुवाद पर । श्रद्धाशील व्यक्ति, आचार और धर्म का अनुष्ठान करता हुआ आत्मा को उत्कृष्ट बनाता है । अतएव आत्मविकास की दृष्टि से धर्म और आचार का अध्ययन परमावश्यक है और आचार को धारण करने वाले, उसमे अनुरक्त रहने वाले श्रमणो की शरण, उनका सान्निध्य एव उनकी शिष्यता भी आवश्यक है ।

और अंत में ये निवेदन–

हे आध्यात्मिक योगी ! विचक्षण प्रतिभा के धनी ! आपने **"विद्याष्टकं"** मे अपने गुरु की स्तुति करते हुए, **"समन्तभद्र-आचार्य"** के समान अनुपम–चित्रालकार की अमिट क्षमता आप मे निहित होने का प्रमाण दिया है । **हे वात्सल्यमयी !** आपकी यह रचना ऐतिहासिक ही नही वर अपने आप मे एक इतिहास है । **हे ससार-सागर से तारने वाले तपस्वी ! हे नियम सागर गुरुव** ! तव चरण कमलो मे शत-शत नमन करते हुये, मै **'विवेक'** ऐसी भावना भाता हूँ कि जिस मुनिचर्या का वृतान्त देने का अवसर मुझे मिला, वह मेरे जीवन मे उतर जाये और आपके द्वारा पु. जीवित यह चित्रालकार की परम्परा आगामी काल के लिए वृद्धि करने का गुण मुझमे प्रवेश कर जावे ।